प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा की भूमिका

डॉ. तरकेलेंग कुल्लू



प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा की भूमिका

प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन
आदिवासी देशज भाषाओं में उत्कृष्ट प्रकाशन के 15 वर्ष

मूल्य : ₹ 250

प्रकाशक:
प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, चेशायर होम रोड, बरियातु, राँची-834009,
दूरभाष : 0651-2201261, ई-मेल : pkfranchi@gmail.com,
वेब पता .: www.kharia.in प्रथम संस्करण : जनवरी 2018
टाईपसेटिंग/आवरण : बिर बुरु ओम्पाय मीडिया 9234301671
मुद्रक : कैलाश पेपर कन्वर्सन प्रा. लि., रांची

PRARAMBHIK SHIKSHA ME MATRIBHASHA KI BHUMIKA
by **Dr. Tarkeleng Kullu**

ISBN : 978-93-81056-75-2

प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा की भूमिका

डॉ. तरकेलेंग कुल्लू

PYARA FOUNDATION

प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन
राँची (झारखंड)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

स्मृति शेष माँ
मर्था कुल्लू

और

स्मृति शेष पिता
जुसफ कुल्लू

को श्रद्धा सहित समर्पित.

सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान करने तथा समुचित मार्गदर्शन से मेरे शोध कार्य को सुगम बनाया। शहीद स्मृति केन्द्रीय पुस्तकालय (राँची विश्वविद्यालय, राँची), झारखंड जनजातीय शोध संस्थान पुस्तकालय (राँची), फा. कामिल बुल्के स्मृति पुस्तकालय सहित जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग के पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. राजाराम महतो का सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है। मैं सिमडेगा जिला के सर्व शिक्षा अभियान एवं झारखंड शिक्षा परियोजना परिषद्, राँची के अपने सभी अधिकारियों और सहकर्मियों की भी आभारी हूँ, जिनके अनुभवों से इस शोध-अध्ययन को परिपूर्णता मिली।

प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन और 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा' संगठन के सहयोग को मैं बहुत ही सम्मान के साथ याद करती हूँ। विशेषकर दीदी वंदना टेटे को जिन्होंने अपना पूरा स्नेह मुझ पर बनाये रखा।

मैं अपने पिता स्व. जुसफ कुल्लू और माँ स्व. मर्था कुल्लू का जिक्र करना चाहती हूँ जो अपने सभी बच्चों को शिक्षा देने के लिए आजीवन प्रयासरत रहे। उनके ही आशीर्वाद और पारिवारिक शिक्षा-संस्कार ने हम सभी भाई-बहनों को इस काबिल बनाया कि हम शिक्षित और स्वावलंबी रूप से इस दुनिया में अपना योगदान कर पा रहे हैं। माता-पिता के नहीं रहने पर दादा (बड़े भाई) श्री केलोम कुल्लू ने हमारा पूरा ख्याल रखा और हमें विकसित होने में किसी तरह की मदद से कभी पीछे नहीं हटे। भाभी श्रीमती लीली ग्रेस कुल्लू की कृपा भी हम भाई-बहनों पर बनी रही। बड़े भाई भाई ओसेंग कुल्लू, छोटी बहन निमंती कुल्लू और भतीजा रोहित कुल्लू के सहयोग को भी याद करती हूँ जिन्होंने मेरा मनोबल हमेशा ऊंचा किये रखा।

अपनी शोध-निर्देशिका और आदिवासी समाज की अगुआ नेत्री डॉ. रोज केरकेट्टा के प्रति मैं आभार प्रकट करने में खुद को असमर्थ पाती हूँ। उम्र की अस्वस्थता और सामाजिक-अकादमिक आंदोलनात्मक व्यस्तताओं के बावजूद वे हमेशा शोध-अध्ययन हेतु सदैव उपलब्ध रहीं। मुझे गर्व है कि वे मेरे शोध-कार्य की निर्देशिका हैं जिनके सहयोग एवं मार्गदर्शन में ही यह अध्ययन पूरा हुआ और अब प्रकाशित हो रहा है। मैं उनको श्रद्धा से नमन करती हूँ।

यह अध्ययन मैंने झारखंड के खड़िया बहुल जिला सिमडेगा को कार्यक्षेत्र बनाकर किया है। राष्ट्रीय बालिका शिक्षा और मातृभाषा के संदर्भ में किया गया यह अध्ययन आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ आदिवासी शिक्षण परंपरा के बौद्धिक अभिप्रायों को समझने में भी शैक्षिक नीति निर्माताओं, अध्येताओं, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए जरूर सहायक हो सकेगी।

- तरकेलेंग कुल्लू

आभार

कोई भी कार्य सामूहिक सहयोग के बिना संभव नहीं होता। मेरे इस अध्ययन एवं शोध कार्य में भी अनेक लोगों ने सहयोग किया है। व्यक्तिगत योग्यता और बौद्धिक संपदा का विकास समाज के आंगन में फलता-फूलता है। अकेला सखुआ का पेड़ तभी जंगल बनता है जब उसके साथ बहुत सारे सखुआ के पेड़ होते हैं। कोई एक पेड़ भी तभी विशाल हो पाता है जब उसे उचित मात्रा में आवश्यक धूप-पानी मिलता है। इसीलिए मेरा यह अध्ययन आज अगर परिपूर्ण हुआ है तो इस महत्वपूर्ण कार्य में मेरे परिजनों, मित्रों, सहेलियों, सहकर्मियों और गुरुजनों के साथ-साथ समूचे समाज का सहयोग रहा है। उन सबको याद करना और उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा फर्ज है। जैसे हम अपने इस जीवन के लिए ईश्वर, पृथ्वी और समस्त प्रकृति को सामाजिक-सांस्कृतिक एवं धार्मिक अवसरों पर धन्यवाद देते हैं, वैसे ही हम इस शोध-अध्ययन के पूरा होने तथा प्रकाशन के अवसर पर उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं। जंकोर, सरहुल, करमा, सोहराई उत्सव हो या खलिहान बोंगा की आराधना, हम व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों ही स्तरों पर खड़िया परंपरा के अनुसार पोनोमसोर (सृष्टिकर्ता) का उनके संरक्षण, सहयोग और मार्गदर्शन के लिए स्मरण करते हैं, कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं और उन्हें धन्यवाद देते हैं।

अपने 'जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग', राँची विश्वविद्यालय, राँची के सभी शिक्षकों, कर्मियों और छात्र-छात्राओं के प्रति बहुत कृतज्ञ हूँ जिनके सहयोग से मैं यह गंभीर अध्ययन दायित्व उठा सकी। राँची विश्वविद्यालय, राँची का जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग हम सभी आदिवासी समुदायों के अथक संघर्ष का परिणाम है। झारखंड के आदिवासी-मूलवासी समुदायों के भाषाई एवं सांस्कृतिक विकास में इसके योगदान को कोई नहीं भूल सकता। आदरणीय शिक्षक डॉ. रामदयाल मुण्डा, डॉ. विसेश्वर प्रसाद केसरी, (दोनों अब अदेह) डॉ. रोज केरकेट्टा, डॉ. कुमारी बासंती, डॉ. के. सी. टुडू, डॉ. हरि उरांव, डॉ. त्रिवेणी साहु (अब विभागाध्यक्ष), प्रो. मेरी एस. सोरेंग और हमारे विभागाध्यक्ष रहे डॉ. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज' सदैव मुझ जैसे छात्र-छात्राओं के बौद्धिक विकास के लिए अग्रणी भूमिका निभाते रहे हैं। मैं अपने इन सभी गुरुजनों का श्रद्धा से नमन करती हूँ।

मानविकी संकाय अध्यक्ष, राँची विश्वविद्यालय एवं मानविकी विभागों के सभी विभागाध्यक्षों के प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अपना बहुमूल्य

सिमडेगा जिला की स्थिति तो और भी खराब है। वैसे भी यह जिला शुरू से ही राजधानी से अत्यधिक दूर झारखंड-उड़ीसा सीमांत पर होने की वजह से उपेक्षित रहा है। विकासीय योजनाओं की धीमी गति और प्रकृति पर निर्भर खेती की अनिश्चिंतता ने जिले को अंतहीन गरीबी एवं अभाव का शिकार बना दिया है। परंपरागत आजीविका के साधनों का लगातार छीजते जाना तथा वनों के विनाश ने यहां की बालिकाओं और महिलाओं पर सबसे बुरा प्रभाव डाला है। आर्थिक अभावों के कारण बुनियादी शिक्षा के प्रति समाज एवं सरकार दोनों उदासीन हैं और सिमडेगा जिले में बालिका शिक्षा की स्थिति चिंताजनक है। इसी वजह से बालिका एवं किशोरी पलायन (मानव तस्करी) की दर राज्य में यहां सबसे ज्यादा है।

इस चिंताजनक हालात से निपटने के लिए सन् 2003 में संपूर्ण झारखंड में राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत की गयी। बालिका शिक्षा को अनिवार्य मानते हुए बालिकाओं के लिए शिक्षा का यह एक अलग कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत अलग है एवं विशेष जेंडर कम्पोनेंट योजना के रूप में चलाया जाता है। एक से आठ कक्षा तक की सुविधावंचित बालिकाओं की शिक्षा के लिए। बालिका शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने के लिए प्रारंभ की गई इस योजना को सर्वशिक्षा अभियान के एक प्रभाव के रूप में स्वीकृत किया गया है। झारखंड के सभी जिलों के वैसे प्रखंडों में, जो शैक्षिक रूप से पिछड़े हैं, जेंडर गैप को कम करने तथा वैसी बालिकाएं जो शिक्षा से वंचित हैं, उन्हें सपोर्ट करने के लिए इस कार्यक्रम को लागू किया गया था। इसमें उन प्रखण्डों को भी लिया गया था जहां दलित एवं आदिवासी की महिलाओं की साक्षरता दर 10 प्रतिशत से भी कम है। राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में बालिकाओं की अधिक से अधिक सहभागिता, पहुंच एवं ठहराव के लिए सुविधा का निर्माण करना है। शिक्षा में सुधार एवं सशक्तिकरण के लिए बालिकाओं की शिक्षा तथा गुणवत्ता पर जोर देना है।

मातृभाषा में शिक्षण इस कार्यक्रम के प्रमुख उपकरणों में एक है। राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए मातृभाषा की प्रभावी भूमिका का इसमें उपयोग एक अनोखी पहल है जिसके सार्थक परिणाम भी देखने को मिल रहे हैं। छीजन को रोकने तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, मातृभाषा के प्रयोग के पीछे ये दो मुख्य कारण हैं।

खड़िया आदिवासी बहुल सिमडेगा जिला में भी 2003 में ही राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत हुई थी। वर्ष 2010 में मैंने इस

प्रस्तावना

बालिका शिक्षा के क्षेत्र में नवनिर्मित राज्य झारखंड अपनी स्थापना के पूर्व यानी अविभाजित बिहार के समय से ही कमजोर रहा है और बहुत हद तक उपेक्षित भी। महिलाओं के अस्तित्व व अस्मिता के संदर्भ में आज झारखंड अत्यंत पिछड़े राज्यों में गिना जाता है। सामाजिक ढांचे का मूल्यांकन बताता है कि अभी भी यहाँ की अधिकतर आबादी गरीबी रेखा से नीचे है। गरीबी की वजह से शिक्षा से वंचित रह जाना एक आम परिघटना है। यहां 1000 पुरुषों पर मात्र 941 महिलाएं हैं तथा गांवों में 'बाहरी' संस्कृति के प्रभावों से बालिका मां बनने की घटना बिहार-बंगाल से जुड़े झारखंड के कुछ जिलों में भी देखी जाने लगी है। मातृत्व मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर में कमी नहीं आयी है। इस सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ेपन के लिए बहुत हद तक बालिका-शिक्षा का अभाव एक मुख्य कारण है। इसी के साथ यह भी स्वीकार करना होगा कि बालिका शिक्षा के पिछड़ेपन के लिए राज्य की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, लोगों की प्रवृत्तियां, उनके पुरुष मूल्य और संस्कृति में अवरोधक तत्व हैं।

आजादी के लगभग छह दशक बीत जाने के बाद भी झारखंड में महिला साक्षरता (मात्र 35.07 प्रतिशत) की निम्न दर लगातार बनी हुई है और 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं अभी भी निरक्षर हैं। इसमें भी अधिकांश सिर्फ साक्षर हैं। अर्थात वे केवल हस्ताक्षर कर सकती हैं, पढ़ना-लिखना नहीं जानती हैं। स्त्री साक्षरता की यह स्थिति परिवार और समाज के शैक्षणिक विकास में बाधा है।

प्राइमरी स्कूल के क्लास 1-5 तक के बच्चों के स्कूल छोड़ने की दर 65 फीसदी है। छोटे बच्चों में बड़े पैमाने पर जो पलायन की दर है, उसका असर नियमित रूप से स्कूल जाने वाले बच्चों पर पड़ा है। ऐसे बच्चों में सामान्यतः जिनकी उपस्थिति कम है, उसमें लड़कियां, पलायन करने वाले बच्चे और बाल श्रमिक हैं। स्कूल न जाने वाले बच्चों में सबसे खराब स्थिति दलित एवं आदिवासी बच्चों और बालिकाओं की है। ध्यातव्य है कि महिला साक्षरता और इसमें भी शिक्षा में बालिकाओं का पिछड़ापन उनके दोहरे पिछड़ेपन की ओर इशारा करता है। और यह आर्थिक पिछड़ेपन के साथ-साथ सामाजिक धरातल पर व्याप्त विभेद को भी अभिव्यक्त करता है।

कार्यक्र के विस्तार और प्रभाव को मातृभाषा के संदर्भ में समझने की कोशिश की थी। मैंने पाया कि 7 वर्षों के अंतराल में इसके अपेक्षित परिणाम हासिल हुए हैं। बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ने तथा उनके छीजत दर को रोकने के इस अभिनव प्रयास में मातृभाषा की भूमिका उत्साहजनक साबित हुई है।

चूंकि मैं स्वयं शैक्षणिक अभियानों से जुड़ी हूं और सिमडेगा जिला के सर्वशिक्षा अभियान में कार्यरत रही हूं, इसलिए स्वाभाविक रूप से इस विषय के साथ मेरा प्रत्यक्ष लगाव रहा है। भाषा और साहित्य की छात्रा होने के कारण इस तरह के शैक्षणिक अभियानों में मातृभाषा के प्रयोगों और भूमिका को लेकर मैं हमेशा सक्रिय रही हूं। सर्वशिक्षा अभियान के साथ शुरुआती दो वर्षों से के दौरान मैंने विशेषकर बालिका शिक्षा कार्यक्रम में मातृभाषा की भूमिका को नजदीक से देखा और अनुभव किया था। इन्हीं सब कारणों से इस विषय पर शोध कार्य करने के लिए मैं प्रेरित हुई और जब अपने सहकर्मियों एवं गुरुजनों से, खासतौर से परम आदरणीय डॉ. रोज केरकेट्टा से इस संबंध में विचार-विमर्श किया, तो उनके उत्साहजनक सुझावों एवं मार्गदर्शन ने मुझे दृढ़ बना दिया।

दूसरा प्रमुख कारण यह भी है कि अभी तक इस तरह के प्रयासों और विषय पर जिनमें कि मातृभाषाओं की भूमिका को नये ढंग से समाहित किया गया है, अध्ययन नहीं हुए हैं। सिमडेगा जो कि राज्य गठन के बाद नवीनतम जिलों में से एक है, आर्थिक विकास के मामले में झारखंड का अत्यंत पिछड़ा जिला माना जाता है। यहां सबसे ज्यादा बालिका छीजन दर है, गरीबी व अंधविश्वास के कारण सामाजिक कुरीतियां भयावह रूप से मौजूद हैं।

राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम में मातृभाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। बालिका शिक्षा के पिछड़ेपन के कारणों के संपूर्ण निराकरण की दिशा में राष्ट्रीय बालिका शिक्षा अभियान की सार्थकता असंदिग्ध है। इस कार्यक्रम के व्यवहारिक क्रियान्वयन में आने वाली कमजोरियों और इसकी उपलब्धियों को सामने लाना मेरा उद्देश्य रहा है। इसीलिए मैंने इस विषय को चुना ताकि राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम में मातृभाषा की भूमिका का सर्वेक्षण और अध्ययन कर इसकी उपलब्धियों और सकारात्मक प्रयासों को सामने ला सकूं। बालिका शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा के कारगर हस्तक्षेप पर व्यापक अकादमिक बहस जरूरी है। प्रस्तुत अध्ययन इस दिशा में कुछ योग दे सका तो यह मेरी उपलिब्ध होगी।

विषय सूची

प्रथम अध्याय

भारतीय समाज और शिक्षा

पूर्वोत्तर राज्यों में वे बहुसंख्यक हैं, जैसे मिजोरम। इसके अलावा झारखंड, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में इनकी घनी आबादी रहती है। अधिकांश आदिवासी समुदाय संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। वे सामान्यतः क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अपने आप में पूर्ण रहती है।

वर्ष 1983 में संयुक्त राष्ट्र संघ में 'मूलवासी' (इंडीजिनस) शब्द की व्याख्या करते हुए माना गया कि 'किसी भू-भाग पर प्राचीन काल से रहने वाले मानव समुदाय के वंशज हैं जो नस्ल एवं संस्कृति के स्तर पर विशिष्टता रखते हों । इनमें से काफी लोग राष्ट्र-समाज की मुख्य धारा से अलग-थलग अपने पुरखों की परम्परा एवं रीति रिवाजों को बचाते हुए जीवन जीते चले आ रहे हैं और विकसित राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को ये लोग बाहरी मानते हैं।' कुल मिलाकर 'किसी भू-भाग के ज्ञात प्राचीनतम निवासियों' को मूलवासी अथवा आदिवासी कहना उचित होगा।

'... भारत मानव जातियों का एक ऐसा विशाल संग्रहालय है जिसमें हम संस्कृति के निम्नतम चरण से उच्चतम चरणों तक पहुंचे हुए मनुष्य का अध्ययन कर सकते हैं। इसके नमूने जीवाश्म या शुष्क अस्थियां नहीं हैं, बल्कि जीते-जागते मानव समुदाय हैं। ...'[2]

'प्राचीन संस्कृत साहित्य में पूरी आग्नेय शाखा का नाम 'निषाद' मिलता है, कहीं-कहीं 'शबर' नाम भी आया है। इनकी विभिन्न शाखाओं के अलग-अलग भी नाम पुण्ड्र, कलिन्द आदि मिलते हैं। 'कोल' नाम बाद का है, वेदों में यह शब्द नहीं आया है। ... अधिकतर आग्नेय जातियों ने अपना नाम मनुष्य वाचक रखा है। मुंडा और संथाल अपने को 'होड़ो-को' कहते हैं - अर्थ है मनुष्य! 'हो' का भी वही अर्थ है।'[3] एक अन्य आदिम आदिवासी समुदाय 'बिरहोड़' का मतलब भी 'जंगल का आदमी' है।

इस तरह 'भारत अपार नृजातीय विविधताओं वाला देश है। ये मानव विविधताएं पृथकताएं नहीं हैं। साझेदारी और निजता के विविध रूपों को इनमें प्रकट होते देखा जा सकता है। इसे इस बात से ही समझा जा सकता है कि भारत में 4635 मानव समुदायों की पहचान की गई है, जिनके नाक-नक्श, भाषा, वेश-भूषा, उपासना की पद्धति, पेशे, खान-पान, आदतें और नाते-रिश्ते के रूप अलग-अलग हैं।'[4]

भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी भारत का विभाजन चार प्रमुख क्षेत्रों में किया जा सकता है : उत्तरपूर्वीय क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र।

प्रथम अध्याय

भारतीय समाज और शिक्षा

1. आदिम समाज और ज्ञान की परंपरा

दुनिया में लगभग 3 अरब 70 करोड़ आबादी आदिवासियों अथवा मूल निवासियों की है जो कि विश्व की कुल जनसंख्या (करीब 6 अरब) का 6% होता है। यह 21वीं सदी की शुरुआत का आंकड़ा है जिसके अनुसार दुनिया में 5000 से अधिक आदिम समुदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं के साथ निवास करते हैं।[1] अगर अफ्रीकी देशों को छोड़ दिया जाए तो विश्व के 72 देशों में से भारत एकमात्र ऐसा राष्ट्र है जहां देशज, आदिवासी अथवा मूल निवासियों की जनसंख्या सबसे अधिक है। भारत में मूलवासी एवं आदिवासी को एक ही माना गया है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार करीब आठ करोड़ चालीस लाख अर्थात् भारत की कुल जन संख्या का 1.2 % लोगों को मूलवासियों के रूप में चिन्हित किया गया है। इनके कुल 461 समूह माने गये हैं। स्वतन्त्र शोध निष्कर्षो के अनुसार ऐसे कुल 635 आदिवासी घटक हैं जिनमें प्रमुख गोंड, संताल, उरांव, भील व नागा आदि हैं। जनगणना के मुताबिक 461 चिन्हित आदिवासी घटकों में से 220 उत्तर-पूर्वी राज्यों में रहते हैं, जो कुल आदिवासियों का 12% जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैसे मध्य भारत में कुल आदिवासियों की करीब 50% जनसंख्या निवास करती है।

आदिवासी शब्द दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिल कर बना है जिसका अर्थ सबसे प्राचीन अर्थात् मूल निवासी होता है। सामान्यतः 'आदिवासी' (ऐबोरिजिनल, ट्राइबल, इंडीजिनस) शब्द का प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना सम्बन्ध रहा हो। भारत के प्राचीन वैदिक एवं ब्राह्मण साहित्य में जिनका उल्लेख दस्यु, निषाद, किरात, राक्षस, असुर आदि प्रजातियों के रूप में किया गया है, उनके ही वंशज वर्तमान में आदिवासी कहे जाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में आदिवासियों को 'अनुसूचित जनजाति' (शेड्यूल्ड ट्राइब) के रूप में दर्ज किया गया है। आदिवासी लोग मुख्य रूप से उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल में रहते हैं। भारतीय

व्यवस्था में जीने की प्रणाली विकसित की।

परंतु इसी के साथ एक और तथ्य है जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान बहुत कम गया है। विकसित और अविकसित समुदाय, समाज और राष्ट्र का विभाजन मुख्यतः कृषि के विकास, तकनीक की प्रगति, परिवर्तनशील उत्पादन संबंध और इससे भी बढ़कर मनुष्य की असीमित आकांक्षाओं के कारण संभव हुआ। एक जहां प्रकृति के साथ चला वहीं दूसरे ने उस पर विजय पाने की लालसा बढ़ायी। नागर समाज और वन्यजीवी समाज के बीच यह 'व्यक्तिगत' आकांक्षा अथवा लालसा ही मुख्य विभेद है। इसी विभेद के कारण विकास की आधुनिक सदी और पूरवर्ती सदियों में भी दोनों के बीच लगातार टकराव होता रहा है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 21वीं सदी की दुनिया विकास के दो छोरों पर अवस्थित है। एक छोर है विकसित समाजों का तो दूसरा छोर अविकसित और पिछड़े समाजों का। इन दोनों छोरों के बारे में भी दो तरह की अवधारणाएं प्रचलित हैं। पहली अवधारणा तथाकथित रूप से विकसित यूरोपीय देशों की है जबकि दूसरी अवधारणा भारत जैसे पिछड़े और अविकसित राष्ट्रों की है।

विकसित एवं सभ्य नागर समाजों ने, जिनके प्रतिनिधियों ने लंबे समय तक दुनिया के अधिकांश देशों को अपना उपनिवेश बनाए रखा, दोहन-शोषण के लिए आदिम समाजों द्वारा निर्मित एवं विकसित ज्ञान परंपरा को वैदिक समय की तरह ही अस्वीकार किया। शिक्षा की आधुनिक प्रणालियों के द्वारा उसे बहिष्कृत किया और आदिम ज्ञान परंपरा को मिटा डालने की हरसंभव कोशिश की। आदिम समाज को शिक्षित करने या ज्ञान बांटने की अपनी प्रणाली थी। इस संदर्भ में इतिहासकार रोमिला थापर कहती हैं, 'उन्नीसवीं शताब्दी में, जब यूरोप ने आधुनिक युग में प्रवेश किया तो यह रवैया बदलना शुरू हो गया, और कई क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति के प्रति उत्साह प्रायः उसी अनुपात में कम हो गया जितना पहले उत्साह का अतिरेक था। अब यह पाया गया कि भारत में कोई ऐसी विशेषता नहीं थी जिसकी नवीन यूरोप सराहना करता। विवेकयुक्त विचार और व्यक्तिवाद के मूल्यों पर स्पष्टतः यहां कोई बल नहीं था। भारत की संस्कृति गत्यवरुद्ध संस्कृति थी और इसे अतीव तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाने लगा। यह प्रवृत्ति भारतीय वस्तुओं के प्रति मैकाले के तिरस्कार में शायद सर्वोत्तम ढंग से मूर्तिमान हुई है।'[5]

मैकाले ने अपने वक्तव्यों में इस उपनिवेशवादी नजरिए को गर्वपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया है - ''मैंने भारत के ओर-छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया, जो चोर हो। इस देश में ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा

उत्तर पूर्वीय क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय अंचल के अतिरिक्त तिस्ता उपत्यका और ब्रह्मपुत्र की यमुना-पद्मा-शाखा के पूर्वी भाग का पहाड़ी प्रदेश आता है। इस भाग के आदिवासी समूहों में गुरूंग, लिंबू, लेपचा, आका, डाफला, अबोर, मिरी, मिशमी, सिंगपी, मिकिर, राम, कवारी, गारो, खासी, नाग, कुकी, लुशाई, चकमा आदि उल्लेखनीय हैं।

मध्यक्षेत्र का विस्तार उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के दक्षिणी ओर राजमहल पर्वतमाला के पश्चिमी भाग से लेकर दक्षिण की गोदावरी नदी तक है। संथाल, मुंडा, उरांव, हो, भूमिज, खड़िया, बिरहोर, जुआंग, खोंड, सवरा, गोंड, भील, बैगा, कोरकू, कमार आदि इस भाग के प्रमुख आदिवासी हैं।

पश्चिमी क्षेत्र में भील, ठाकुर, कटकरी आदि आदिवासी निवास करते हैं। मध्य पश्चिम राजस्थान से होकर दक्षिण में सह्याद्रि तक का पश्चिमी प्रदेश इस क्षेत्र में आता है। गोदावरी के दक्षिण से कन्याकुमारी तक दक्षिणी क्षेत्र का विस्तार है। इस भाग में जो आदिवासी समूह रहते हैं उनमें चेंचू, कोंडा, रेड्डी, राजगोंड, कोया, कोलाम, कोटा, कुरूंबा, बडागा, टोडा, काडर, मलायन, मुशुवन, उराली, कनिक्कर आदि उल्लेखनीय हैं।

नृतत्ववेत्ताओं ने इन समूहों में से अनेक का विस्तार से शारीरिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के आधार पर भौतिक संस्कृति तथा जीवनयापन के साधन सामाजिक संगठन, धर्म, बाह्य संस्कृति, प्रभाव आदि की दृष्टि से आदिवासी भारत के विभिन्न वर्गीकरण करने के अनेक वैज्ञानिक प्रयत्न किए गए हैं। इस परिचयात्मक रूपरेखा में इन सब का उल्लेख आवश्यक नहीं है।

अनेक इतिहासकारों, मानवशास्त्रियों, समाजविज्ञानियों, भाषाविदों और विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि आज जिन्हें आदिम, कबिलाई अथवा आदिवासी समाज के रूप में चिन्हित किया जाता है, उन्होंने ही अपने श्रम और मेधा से मानव सभ्यता के नये युग की सुदृढ़ नींव डाली थी। मोहनजोदाड़ो-हड़प्पा सभ्यता के बारे में तो यह स्पष्ट धारणा है कि इसके जनक मुंडा आदिवासी समूह के आग्नेय लोग थे। बाद में जिन्हें आर्यों ने पराजित किया और बार-बार के आक्रमणों से घने जंगलों में रहने के लिए विवश कर दिया। वैदिक साहित्य में आर्यों और अनार्यों (आदिवासियों) के संघर्ष की अनेक कथाएं हैं जिनसे यह बात प्रमाणित होती है। आर्यों से मिली पराजय ने ही उन्हें स्थायी रूप से पिछड़ेपन के गहन व स्थायी अंधकार में धकेल दिया। आदिम समाजों के पिछड़ेपन का एक कारण यह भी माना जाता है कि उन्होंने कृषि-कार्य की अपेक्षा आहार-संग्रह, घुमंतू और अर्द्ध-कृषि आधारित आर्थिक

हल और उसकी यह संक्षा उन्हीं की देन है।

पतित-पावनी 'गंगा' का यह पवित्र नाम उन्हीं के शब्द भंडार का है।

हिन्दू नारियों का सुहाग चिन्ह सिन्दूर उन्होंने ही सभ्यता को दिया है।

कहते हैं, इन्हीं आग्नेयों ने बीज और वृक्ष के संयोजन-वियोजन के क्रमों को देखकर पुनर्जन्म (पूर्व या पुरखा आत्माओं) की कल्पना की। आर्य मूलतः इससे अनभिज्ञ थे।

चन्द्रमा को देखकर तिथि-गणना का रिवाज आग्नेय सभ्यता की ही देन है। पूर्ण चन्द्र के लिए 'राका' और नये चन्द्र के लिए 'कुहू' शब्द आग्नेय भंडार से ही आये हैं।

मुर्दे की राख के जल-प्रवाह का प्रचलन, आरंभ में आग्नेय जातियों से ही लिया गया है।

वृक्षो और नदियों की पूजा, पत्थर के टुकड़ों की पूजा, ग्राम-देवता, डीह और वरम् आदि आदिमजातियों से लिये गये हैं।

टोटेम से बनी हुई गोत्र-प्रणाली का अविष्कार करने वाले आदिवासी ही हैं।

बीस-बीस करके (कोड़ी के अनुसार) गिनने की प्रणाली, मनुष्य की बीस उंगलियों के अनुसार आग्नेयो ने ही निकाली है।

भारतीय भाषाओं को अनेक संज्ञायें आग्नेय भाषाओं की देन है।

भाषाशास्त्रियों ने संस्कृत के साढ़े चार सौ के लगभग ऐसे शब्दों को खोज निकाला है, जिनका आर्येतर (आग्नेय) स्रोत हैं। [7]

यही नहीं, आर्यों ने वैदिक समय में जिस शिक्षण परंपरा के शुरुआत की सुदृढ़ नींव डाली, उसे भी आदिम समाजों से ही लिया गया है। 'नालंदा' और 'तक्षशिला' जैसे जिन विश्वविख्यात प्राचीन विश्वविद्यालयों का इतिहास हमें बताया जाता है, इसकी पूरी संकल्पना आदिवासियों के मौखिक विश्वविद्यालयों, यथा-गीतिओड़ा, धुमकुड़िया, जोंख एड़पा, घोटुल आदि के आधार पर की गई है। 'गुरु-शिष्य' की श्रुति परंपरा आदिवासियों के लोकशिक्षण की मौखिक परंपराओं का ही विस्तार है जहां एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को अपने अनुभवों व ज्ञान का हस्तांतरण करती थी। आदिवासियों से ली गई शिक्षण-प्रणाली के आधार पर

ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि हम इस देश को विजित कर लेंगे, जबतक कि हम इसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरूदंड को तोड़ न दें। इसलिए मैं यह प्रस्तावित करता हूं कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें। क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगेंगे कि जो विदेशी एवं अंग्रेजी है, वह उनके आचार-विचार से अच्छा व बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे और वे एक पराधीन कौम बन जाएंगे, जो हमारी चाहत है।' (लार्ड मैकाले का 2 फरवरी 1835 को ब्रिटेन की संसद में दिए गए वक्तव्य का अंश)

यह सही है कि विकसित समाजों अर्थात् लिखित नागर समाजों ने आदिम और पिछड़े समाजों के मौखिक ज्ञान परंपरा, इतिहास आदि का दस्तावेजीकरण किया। उन्हें लिखित रूप दिया और वे दुनिया के सामने आ सकीं।

आदिवासी लोक साहित्य के विद्वान भारतीय अध्येता जगदीश त्रिगुणायत ने अपनी पुस्तक 'मुंडा लोक कथाएं' में आदिम समाजों के ऐतिहासिक अवदानों पर संक्षेप में, किंतु सारगर्भित ढंग से यथेष्ट प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं - 'भारतीय महादेश में बहुत पहले आने वाली और द्रविड़-आर्यों के आगमन के पहले की लंबी अवधि में ही एक समृद्धशाली सभ्यता का निर्माण करनेवाली इस आग्नेय जाति ने स्वभावतः ही भारतीय सभ्यता को बहुत कुछ दिया है। अनेक वानस्पतिक पदार्थ, कृषि, अनेक अविष्कार, विविध वस्तुओं के नाम आदि के स्थूल क्षेत्रों, और विचारों, देव-कल्पनाओं और धार्मिक धारणाओं के अपेक्षया सूक्ष्मतर क्षेत्रों, दोनों में भारतीय संस्कृति में आदिमजातियों के प्रभाव की खोज हो चुकी है।...नये अनुसंधान इस बात की चुनौती दे रहे हैं कि अब आईने में नहीं, एक्स-रे में अपनी छवि देखो--तुम्हारे रक्त, मांस, मज्जा यहां तक कि विचार और भावना में भी आदिवासी मौजूद हैं।[6]

आगे जगदीश त्रिगुणायत अत्यंत प्रखर ढंग से आदिवासियों के महत्वपूर्ण अवदानों की चर्चा करते हैं -

> *'आग्नेय जातियों ने ही भारत में झूम-कृषि की प्रणाली चलाई। और पहले पहल धान की खेती शुरू की।*
>
> *केला और नारियल, पान और सुपारी, हल्दी और अदरख, लौकी, बैगन तथा काशीफल उन्होंने ही उपजाये।*
>
> *कपास का वस्त्र सबसे पहले उन्होंने ही बनाया।*
>
> *जंगलों से पकड़कर मुर्गी को उन्होंने ही पाली और विशाल जानवर हाथी को सबसे पहले उन्होंने ही पालतू बनाया।*

एवं विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान रखते हैं। कुमार सुरेश सिंह जो भारतीय नृतत्व (मानव-विज्ञान) के अंतरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान हैं, उन्होंने अपनी कालजयी पुस्तक 'पीपुल्स ऑफ इंडिया' में पारिस्थितिक-सांस्कृतिक लक्षणों के आधार पर भारत को 91 क्षेत्रों में विभाजित किया है। कुमार सुरेश सिंह के अपने शब्दों में कहें तो उनके सर्वेक्षण में, 'कुल मिला कर 91 पारिस्थितिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों की पहचान की गई है। एक-एक राज्य में लगभग तीन सांस्कृतिक क्षेत्र आते हैं। अधिकांश राज्यों में सांस्कृतिक क्षेत्र तीन से चार के बीच पड़ते हैं। उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में सांस्कृतिक क्षेत्रों की अधिकतम संख्या छह-छह है और तमिलनाडु में सात।'[9]

यह देखना दिलचस्प है कि सांस्कृतिक बहुलता होने के बावजूद जहां भिन्न-भिन्न समुदायों को जीवन के विभिन्न स्तरों पर एक किस्म की स्वायत्तता मिली हुई थी, सामाजिक नियंत्रण की मूल संरचना अथवा प्रणाली एक थी। सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विशिष्टताओं के कारण होने वाले भेदों को छोड़ दिया जाए तो समाज की प्रशासनिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में कोई अंतर नहीं था। इस व्यवस्था से बाहर यदि कोई दूसरी सामाजिक-राजनीतिक प्रणाली थी तो वह आदिवासियों की थी। गैर-आदिम समाज जहां मनु द्वारा सुव्यवस्थित और सूत्रबद्ध 'ब्राह्मणवादी सामंती' व्यवस्था से शासित हो रहा था, वहीं आदिम समाज सामूहिक सहभागिता वाली स्वशासन प्रणाली का वाहक था।

रोमिला थापर कहती हैं, 'आर्य, भारत में अर्ध-विचरणशील पशुचारिओं के रूप में आए थे। उनका निर्वाह मुख्यतः पशु-उत्पादनों से होता था और कुछ समय तक पशु-पालन ही उनका मुख्य व्यवसाय रहा। ... अधिक स्थायी रूप से बसने पर इनके पेशे में भी परिवर्तन हुआ। पशु-पालन के स्थान पर उन्होंने कृषि को अपनाया, क्योंकि लोहे के उपयोग के परिणामस्वरूप भूमि को साफ करना अब सरल हो गया था। इस प्रक्रिया में आग ने भी अपनी भूमिका निभाई और निस्संदेह कुछ वन जला डाले गए। किंतु आर्यों के जीवन में लकड़ी का विशेष महत्व था, इसलिए वनों को जलाने की अपेक्षा उन्हें काटना संभवतः भूमि साफ करने की अधिक सामान्य विधि ा थी। प्रारंभ में भूमि गांव की सांझी संपत्ति होती थी, परंतु जयों-ज्यों जन-इकाइयां समाप्त होती गईं, भूमि गांव के परिवारों में बंटती गई, और इस प्रकार निजी संपत्ति का जन्म हुआ, जिसके साथ-साथ स्वामित्व, भूमि के झगड़े, उत्तराधिकार का प्रश्न आदि समस्याएं भी सामने आईं। कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाने के फलस्वरूप, और बहुत-से व्यवसायों का सूत्रपात हुआ।[10]

गेय-श्रुति परंपरा का विकास हुआ और दुनिया के सबसे प्राचीनतम लिखित ग्रंथों -वेदों की रचना मूर्त रूप ले सकी।

स्पष्ट है कि आज जो भारतीय सभ्यता-संस्कृति की विशाल और समृद्धशाली ईमारत हमें हमें दिखाई पड़ती है, उसके मूल में आदिमजातियों का ज्ञान ही है जिसे आगे चलकर आर्यों ने और विकसित किया।

भारतीय सभ्यता हजारों साल की लंबी यात्रा करते हुए वहां तक पहुंची थी जिसे हम हड़प्पा सभ्यता के रूप में जानते हैं। इसका निर्माण किन तत्वों से हुआ था, इसके विकास में कितना लंबा समय लगा था, और इस क्रम में भारतीय समाज को किन अनुभवों से गुजरना पड़ा था, इसकी तलाश कभी गंभीरता से नहीं की गई। ... उस महायात्रा पर पुरातत्व से भी उतना स्वच्छ प्रकाश नहीं पड़ता जितना इन (भाषिक) स्रोतों से। पुरातत्व सहित इन सभी स्रोतों को जोड़ कर हड़प्पा का एक लम्बा विवरण तैयार किया जा सकता है। ... भारतीय सभ्यता का आरंभ हड़प्पा सभ्यता से नहीं होता। हड़प्पा सभ्यता विकासयात्रा में एक बीच का चरण है।[8]

ऐतिहासिक तथ्यों के अवलोकन एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे समाज एवं राजनीति में 'व्यक्ति आधारित स्वार्थ' बढ़ता गया और देशज ज्ञान परंपरा का निषेध किया जाने लगा जो उच्चतर मानवीय मूल्यों व जीवन-दर्शन के पक्षधर थीं। इसीलिए नगरों एवं राज्यों के उदय के बाद, वैदिक काल से लेकर अब तक न सिर्फ आदिम समाजों के ज्ञान परंपरा को विस्मृत करने का हरसंभव प्रयास हुआ, बल्कि एक ऐसी शिक्षण-प्रणाली भी विकसित की गई जो एकांगी थी। पाठ्यक्रमों में आदिम एवं पिछड़े समाजों के बारे में नस्लीय भेदभाव, हीनता व घृणा के बीज बोये गये थे। दुर्भाग्य का विषय है कि 21वीं सदी में प्रवेश कर चुकी दुनिया में भी आदिम एवं पिछड़े जनों के बारे में भी इस तरह की धारणा और दृष्टि बरकरार है।

सामाजिक संरचना और लोक शिक्षा

भारत की सामाजिक बहुलता और उसकी व्यवस्थाओं को विश्व के सबसे जटिल सामाजिक संरचनाओं में माना-समझा जाता है। इसमें आदिम जनों से लेकर गैर-आदिवासी समाज तक, सामाजिक प्रशासन, जाति एवं बिरादरी पंचायतों का लगभग मिलता-जुलता रूप देखने में आता है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि भारत में 4635 मानव समुदायों का वास है और ये सभी अपनी स्वतंत्र, स्वायत्त

क्योंकि इस क्षेत्र में पुरोहित के कर्तव्य बिलकुल स्पष्ट थे। परंतु धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन हुआ, और ऐसा विशेषकर इसलिए हुआ कि अब राजत्व में ईश्वरीय गुण होने का विचार उभरने लगा था। बाद की एक दंतकथा के अनुसार देवता अपनी विजय के लिए राजा को निर्वाचित ही नहीं करते थे बल्कि उसको कुछ विशेष गुण भी प्रदान करते थे। राजा को दैवी गुण प्रदान करने के लिए विशेष यज्ञ किये जाते थे, और यह कार्य पुरोहित करते थे, जो मनुष्यों और देवताओं के मध्यस्थ समझे जाते थे। इस विचार के स्वीकृत होने के साथ कि राजा में दैवी गुण हैं, पुरोहितों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ, और यहीं से राजाओं और पुरोहितों की पारस्परिक निर्भरता का श्रीगणेश हुआ। ... राजा को मुख्य आधार बना कर एक प्रारंभिक प्रशासकीय पद्धति का सूत्रपात हुआ। एक राज्य में जिसे 'राष्ट्र' कहते थे, 'जन', 'विश' और 'ग्राम' होते थे। 'कुल' उसका आधार होता था और परिवार का वृद्धतम पुरुष 'कुलप' कहलाता था।[11]

यह बात समझ में आता है कि अधिकांश जातियों से उनके पेशे से जुड़े रहे हैं। उनकी यह पेशागत विशेषता ही उनकी जाति का आधार रहा है। पुराने समय के पेशे या विशेषज्ञता के रूप कम जटिल नहीं थे। किसी एक ही काम के साथ उत्पादन से ले कर वितरण तक के इतने तामझाम थे कि उसकी एक अलग जाति बन जाती थी। ... इस जाति व्यवस्था का एक अन्य रोचक पहलू यह है कि यह केवल उन आदिम जनों में पैदा हुई जो सभ्य समाज या कहें स्थायी बस्ती बसा कर रहने वाले और कृत्रिम उत्पादन में लगे लोगों के संपर्क में आए। ... अपने नृत्य, अभिनय, या कलाबाजी आदि से मनोरंजन करते हुए जीविका कमाने वाले अपनी विशेषता या दक्षता से वन्य अवस्था में अपना निर्वाह नहीं कर सकते थे। इनके लिए अनाज उपजाने वाले लोगों का एक स्थायी समाज जरूरी था।[12]

जब आर्य लोग सबसे पहले भारत में आए, तो वे तीन सामाजिक वर्गों में विभाजित थे -- योद्धा अथवा कुलीन वर्ग, पुरोहित एवं सर्वसाधारण। वर्ण-चेतना उस समय बिलकुल नहीं थी, जैसाकि इस प्रकार के कथनों से सिद्ध होता है कि "मैं चारण हूं, मेरे पिता वैद्य हैं और मेरी मां अनाज पीसती है।" व्यवसाय पैतृक नहीं थे, और न ही कोई ऐसे नियम थे जो विवाह संबंधों को इन वर्गों के भीतर ही सीमित करते हों, अथवा यह बताते हों कि किसके साथ भोजन नहीं करना चाहिए। समाज का तीन वर्गों में विभाजन केवल सामाजिक एवं आर्थिक संगठन की सुविधा के लिए था। ... समाज को औपचारिक रूप से चार व्यापक समूहों में बांट देना ही वास्तविक वर्ण-व्यवस्था नहीं थी। प्रथम तीन वर्णों के रूप में संभवतः ब्राह्मणों ने एक सैद्धांतिक

गैर-आदिम अर्थात् आर्य समाज का यह विकासक्रम बताता है कि कैसे कृषि के विकास एवं स्थायी बस्तियों के उदय ने आगे चलकर वैदिक सभ्यता को सुदृढ़ बनाने की पृष्ठभूमि तैयार की। तेजी से पसरते और विकसित होते इस नागर समाज को एकसूत्र में बांधे रखने के लिए यह जरूरी था कि सामाजिक-प्रशासनिक व्यवस्था को स्थायित्व दिया जाए। यह एक ओर जहां समाज को नियंत्रित व व्यवस्थित करने की दृष्टि से आवश्यक था, वहीं आपसी एकता को बरकरार रखने के लिए भी निहायत जरूरी था। एक सुव्यवस्थित और मजबूत सामाजिक प्रणाली और एकता के अभाव में न तो उनका विकास एवं विस्तार संभव था, और न ही मूल आदिम जनों के प्रतिरोध आक्रमणों से रक्षा। मनुओं ने इसी को ध्यान में रखकर 'मनुस्मृति' की रचना की, जो आज भी आर्य जातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार का मार्गदर्शक ग्रंथ बना हुआ है।

ब्राह्मणवाद में गणव्यवस्था का रूप अधिक जटिल और ऊपरी सतह पर धुंधला हो गया है। अन्यथा यह ढांचा न केवल बुद्ध के समय तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले गणों में सुरक्षित था, अपितु लगातार दबाव में रहने के बाद भी ब्राह्मणवादी व्यवस्था में खप जाने वाले जनों में आज तक जीवित है। इसका सबसे सशक्त रूप है बिरादरी पंचायत, जिसमें पदक्रम गणराज्यों की ही अनुकृति पर होता है। विचार समानता के आधार पर किया जाता है। सामूहिक हित के प्रश्नों पर निर्भीकता से विचार होता है। विचार के बाद पक्ष और विपक्ष में पड़ने वाले मतों की गिनती के आधार पर फैसला लिया जाता है।

शासन की उत्पत्ति से संबंधित कुछ दंतकथाओं से आर्यों के उभरते हुए राजनैतिक संगठन की प्रक्रिया जानी जा सकती है। इनके अनुसार देवों और दानवों में युद्ध हुआ और इसमें देवों की पराजय होती दिखाई देने लगी। इसलिए वे सब एकत्र हुए और उन्होंने अपने नेतृत्व के लिए अपने में से एक राजा का चुनाव किया। अंत में उनकी विजय हुई। यह, और इस प्रकार की अनेक दंतकथाएं बताती हैं कि राजत्व का विचार किस प्रकार उत्पन्न हुआ। कुलों के समूहों के रूप में जनों का संगठन हुआ, और प्रारंभ में जन का प्रधान केवल जन का नेता ही होता था। ज्योंज्यों संरक्षण की आवश्यकता बढ़ती गई, सबसे अधिक समर्थ रक्षक ही प्रधान चुना जाने लगा, और शनैः-शनैः वह उन विशेषाधिकारों को ग्रहण करता गया जिनका संबंध साधारणतया राजत्व से होता है। ... प्रारंभ में वैदिक राजा मुख्यतः सैनिक नेता होता था, जिसे राजा बने रहने और जन की सुरक्षा के लिए युद्ध में कुशल होना अनिवार्य था। ... धार्मिक क्षेत्र में उसकी भूमिका प्रारंभ में नगण्य थी

'अखड़ा' में कलाकार और दर्शक का भेद नहीं रहता। अखड़ा में हर व्यक्ति कलाकार भी है और दर्शक भी। खेती-किसानी के कार्यों, वन उत्पादों एवं आहार संग्रह, शिकार आदि में भी उनका सहभागी क्रियाकलाप रहता है। इस संबंध में दिलचस्प तथ्य यह है कि आज जब जड़ और औपनिवेशिक स्कूली शिक्षा प्रणाली, उसकी व्यावहारिक उपयोगिता, गुणवत्ता पर सवाल उठाए जा रहे हैं, तो इसके जबाव में विश्व स्तर पर शिक्षा की नई प्रविधियों के अंतर्गत आदिम लोकशिक्षण परंपरा को ही अपनाया जा रहा है। और यह भी कि इसे भी पूर्व की तरह ही नागर समाज के शिक्षाविदों की व्यक्तिगत क्रांतिकारी देन बताया जा रहा है।

यहां एक और बात है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। आदिम जनों के द्वारा ज्ञान के हस्तांतरण हेतु विकसित लोकशिक्षण परंपरा सिर्फ शैक्षिक केन्द्रों और उसके परिसरों तक सिमटी हुई नहीं थी। उसका दायरा पूरे गांव-समाज को अपने भीतर समेटता था। क्योंकि आदिवासियों के शिक्षण संस्थान नागर सभ्यताओं की तरह नगर से बाहर वन-प्रांतर या पर्वतीय क्षेत्रों में नहीं होते थे। उनके शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र अनिवार्य रूप से गांव-समाज की परिधि में ही रहे हैं। चाहे वह शैक्षणिक स्थल धुमकुड़िया, गीतिओड़ा हो या सांस्कृतिक स्थल अखड़ा। यहां तक कि श्मशान भी गांव से बहुत दूरी पर नहीं मिलते हैं। इस तरह, जीवन से मृत्यु के बीच की पूरी यात्रा और उसके अनुभवों को, उसकी उपलब्धियों और उसकी कमियों को, आदिम समाज के हर आयु वर्ग का व्यक्ति एक साथ देखता-जानता था। लोकशिक्षण को निरंतर अपडेट करने और नई एवं पुरानी पीढ़ी के बीच के 'जेनरेशन गैप' को पाटने के लिए शैक्षणिक-सांस्कृतिक स्थलों का गांव में ही होना, आदिम समाज के उस उच्चतर मानवीय मूल्यों की ओर इंगित करता है, जहां ज्ञान किसी की व्यक्तिगत मेधा या संपत्ति नहीं होती, बल्कि वह सामूहिक रूप से अर्जित सामाजिक निधि है, और जिस पर सामान्य रूप से सभी का बराबर व सुनिश्चित अधिकार रहता है।

रूपरेखा तैयार कर दी थी जिसमें विविध व्यवसायों का सुंदर ढंग से नियोजन था। ... इसमें संदेह नहीं कि अन्य तत्वों से भी वर्ण-व्यवस्था को प्रोत्साहन मिला, और जिस प्रक्रिया से शूद्र किसान बने वह इन्हीं तत्वों में निहित है। ... इस प्रकार कृषकों -- जिन्होंने वनों को साफ करके बस्तियां बनाई थीं, और व्यापारियों -- जिन्होंने विभिन्न बस्तियों के बीच आर्थिक संबंध स्थापित किए थे -- के मध्य स्वाभाविक रूप से अलगाव आ गया। यहां यह बतला देना उचित होगा कि व्यापारी-वर्ग अधिक संपन्न जमींदारों के वर्ग से आए थे, क्योंकि वे ही आर्थिक नुकसान सह सकने की स्थिति में थे। पुरोहित अपने-आप में ही एक वर्ग थे। क्षत्रिय यह मानते थे कि उनका कार्य (राजा के नेतृत्व में) केवल समाज की रक्षा करना है, और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनके इस कार्य पर प्रत्येक वर्ग की भलाई निर्भर करती थी। राजा का उदय एक शक्तिशाली सत्ता के रूप में हुआ, और इसलिए क्षत्रियों को वर्ण-व्यवस्था में प्रथम स्थान मिला। ब्राह्मणों का स्थान उनके पश्चात् आया, और फिर अधिक समृद्ध जमींदार तथा वैश्य आए तथा अंत में शूद्र। समाज के ऐसे विभाजन के महत्व और उच्चतम वर्ण को प्राप्त होने वाले विस्तृत अधिकारों को समझने में ब्राह्मणों को देर नहीं लगी। यह दावा करके कि केवल वे ही राजा को देवत्व प्रदान कर सकते हैं (जिसे पाना राजा के लिए अनिवार्य बन चुका था), उन्होंने प्रथम स्थान ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि वर्ण-विभाजन को धार्मिक स्वीकृति भी प्रदान कर दी।[13]

इस तरह से प्राचीन भारत में दो तरह के सामाजिक संरचनाओं का क्रमिक ढंग से विकास हुआ। आदिम जनों ने अपनी सामाजिक संरचना को अविच्छिन्न रूप से जारी रखने के लिए परंपरा की रक्षा पर विशेष बल दिया, और इसी के अनुरूप लोकशिक्षण की मौखिक पद्धति का सूत्रपात किया तथा उसे स्थायित्व प्रदान किया। आदिम समाजों के लोकशिक्षण की इस परंपरा में सामूहिक रूप से समूचा समाज 'गुरु' होता था, जो सहभागी शिक्षण की विधि से एक ही समय में स्वयं को भी, और अपनी नई पीढ़ी को भी, एक साथ शिक्षित-प्रशिक्षित करता था। सीखने-सिखाने की यह अद्‌भुत, अनूठी और प्रभावी शिक्षण प्रणाली थी जिसमें पुराना नये को ज्ञान तो सौंपता ही था, वह नये से भी सीखता था। आदिम शिक्षण विधि आज की स्कूली 'कान्वेंट' शिक्षा या 'गुरु-शिष्य' परंपरा की तरह 'वनवे' नहीं थी। यह दोतरफा प्रक्रिया थी जिसमें सीखने और सिखाने वाले के बीच किसी भी किस्म का ब्राह्मणवादी विभाजन नहीं था। यह नजरिया हम आदिवासियों के दूसरे सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवहारों में भी देख सकते हैं। जैसे उनके सांस्कृतिक स्थल

नकार दिया गया। क्योंकि शिक्षा वह प्रक्रिया है जो किसी देश की संपदा को संगठित करने की समूची प्रणाली के अधीन हम जो कुछ भी करते हैं उसके साथ हमारा तादात्मय स्थापित करती है। अर्थात् शिक्षा मनुष्य की संस्कृति से सीधे जुड़ी होती है। वह संस्कृति का उत्पाद भी है और उसके निर्माण का प्रमुख कारक भी।

सुप्रसिद्ध अफ्रीकी चिंतक न्गूगी वा थ्योंगो इसे इस तरह से स्पष्ट करते हैं - "लोगों का विश्वदृष्टिकोण उनके नैतिक, सौंदर्यपरक और आचरण संबंधी मूल्यों में समाहित है, जो खुद उनकी संस्कृति में समाहित है। उनकी संस्कृति अपने आप में उस इतिहास की अभिव्यक्ति और उत्पाद है, जिसका निर्माण प्रकृति और अन्य लोगों के संथ संबंधों पर निर्मित है। इस प्रकाश शिक्षा संस्कृति का अंग है और संस्कृति शिक्षा का अंग है। दोनों का एक-दूसरे में गहरा प्रवेश है और शिक्षा को देखने का एक तरीका यह है कि इसे आम जनता को समुदाय विशेष की प्रभुत्वकारी संस्कृति के साथ जोड़ने की प्रक्रिया के रूप में देखा जाए।'[14]

यह विश्लेषण हमें बताता है कि कैसे औद्योगिक युग की शुरुआत के साथ ही औपनिवेशिक शासकों ने शिक्षा के व्यापक अर्थ को संकुचित कर दिया तथा उसे वर्चस्व की राजनीति को टिकाए रखने का प्रमुख हथियार बना लिया। इस प्रकार जिस ज्ञान के बारे में स्कूलों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे इसे आम लोगों के बीच ले जाएंगे, वह ज्ञान और कौशल के उन रूपों से बिलकुल अलग हो गया जो भारत में पहले से मौजूद थे।

औद्योगिक युग के 'शिक्षा की व्यापकतर प्रणाली ने लोगों के ज्ञान और चिंतन तथा कर्म कर्म की उन पद्धतियों को मान्यता देने से इंकार कर दिया जो यहां के सांस्कृतिक ढांचे के तहत सम्माननीय मानी जाती थीं। औपनिवेशिक शासन ने सामान्य स्कूलों की पाठ्यचर्चा में देशज ज्ञान और सांस्कृतिक रूपों को शामिल करने की किसी भी संभावना की जगह नहीं छोड़ी। उपनिवेशवाद की सांस्कृतिक भूमिका, जिसका विकास 19वीं सदी के प्रारंभ से होना शुरू हुआ, इस नजरिए पर टिकी हुई थी कि देसी ज्ञान और संस्कृति में 'खामियां' हैं। भारत की भौतिक कंगाली को उन ढेरों कमजोरियों के प्रमाण के रूप में देखा गया, जिनसे भारतीय संस्कृति पीड़ित समझी जाती थी। नैतिक और भौतिक सुधार के एक साधन के रूप में शिक्षा संभवतः खामियों भरी एक संस्कृति को अपने ज्ञानमीमांसीय आधार के रूप में इस्तेमाल नहीं कर सकती थी; उसकी जड़ें उस ज्ञान और संस्कृति में ही धंसी रहनी थीं जो उपनिवेश की प्रतिनिधि थीं।'[15]

भारत में इस शिक्षा पद्धति अर्थात् आधुनिक शिक्षा की शुरुआत औपनिवेशिक

2. औद्योगिक युग और आधुनिक शिक्षा

औद्योगिक क्रांति यूरोप के नवजागरण काल में उस विचार मंथन का परिणाम है, जो पूर्वी देशों के साहित्य के साथ संपर्क के बाद बुद्धिजीवी वर्ग में चला। औद्योगिक क्रांति से पहले ही मानव जीवन के अंतिम लक्ष्यों के संबंध में काफी सोच-विचार हो चुका था, जिसका सर फ्रांस के इंसाइक्लोपीडिया लेखकों (वाल्टेयर, दिदिरा, डेलम्बर्ट आदि) ने प्रस्तुत किया था। इससे दुनिया सामाजिक ढांचे में मूलभूत परिवर्तन आया और उसने सामंती युग के मूल्यों को चुनौती दी। पुराने सामंती मूल्यों के स्थान पर नये औद्योगिक मूल्यों का सृजन हुआ। प्राचीन मूल्यों की तुलना में उसने अपने मूल्यों को आधुनिक बताया और अपने द्वारा स्थापित सभ्यता को 'आधुनिक सभ्यता' का नाम दिया। इस प्रकार इस सभ्यता के मूल्य या सर्वोच्च लक्ष्य (आदर्श) तो समता और बंधुता बने, किंतु इसका ढांचा (यथार्थ) बना वैज्ञानिक अविष्कारों के आधार पर, जिसका प्रतीक मशीन या प्रोद्योगिकी थी। न्यूटन की भौतिक विज्ञान के खोजों ने मशीन का रूप स्थिर किया और उसके अनुरूप ही मानव और समाज की कल्पना की गई। राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं का निर्माण एक जटिल मशीन के रूप में किया गया और मानव शरीर की कल्पना भी मशीन के रूप में ही हुई। इतना ही नहीं, मानव मन को भी मशीन का एक हिस्सा मन कर उसे नियंत्रणीय मान लिया गया और प्रौद्योगिकी इस लक्ष्य को प्राप्त करने में जुट गई। इस यंत्रवाद ने शिक्षा का स्वरूप भी निश्चित किया। स्कूल कारखानों की तरह चारदीवारी में बंद घंटे की आवाज पर खुलने और बंद होने वाले बने। स्कूल के बच्चों के लिए कारखाना मजदूरों की तरह वर्दी तय की गई। मशीन की एक ही क्रिया के अनुरूप स्कूलों के लिए एक-से पाठ्यक्रम को पढ़ाने-रटाने की प्रथा चली।

इस तरह से वैदिक काल से औद्योगिक युग के आते-आते और औपनिवेशिक शासन के विस्तार के साथ ही शिक्षा राजनीतिक एवं सांस्कृतिक नियंत्रण का प्रमुख औजार बन गई। अब शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति की जगह जनता के भावजगत पर वर्चस्व कायम करना हो गया ताकि वे शोषण और लूट का प्रतिकार नहीं कर सकें। उन्हें उतना ही पढ़ाया जाए जिससे वे औपनिवेशिक शासकों के हितों में सहायक हों और अपने मालिकों की सेवा करने लायक 'योग्य' बन सकें। इसलिए शिक्षण की उन तमाम प्रणालियों को जिसे जनता ने अपने अनुभव और ज्ञान से सिंचित और पल्लवित किया था, जो सामूहिक और सुलभ थी, और जिसका मुख्य जोर यांत्रिकता की बजाए मनुष्य की चेतना का उत्तरोतर विकास था, एक सिरे से

हूं कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें। क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगेंगे कि जो विदेशी एवं अंग्रेजी है, वह उनके आचार-विचार से अच्छा व बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे और वे एक पराधीन कौम बन जाएंगे, जो हमारी चाहत है।" (लार्ड मैकाले का 2 फरवरी 1835 को ब्रिटेन की संसद में दिए गए वक्तव्य का अंश)

ब्रिटिशकालीन भारतीय शिक्षा

सर थामस मुनरो ने 2 जुलाई 1822 को भारतीय शिक्षा पर गहन सर्वेक्षण के आदेश दिये थे। आदेश के साथ जिलाधिकारियों को एक फार्म/प्रपत्र/ भी भेजा गया था। प्रपत्र के जरिए तब पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों के नाम, स्कूलों में शिक्षा का समय, मासिक या वार्षिक शुल्क के विवरण और विद्यालयों को मिलने वाली आर्थिक सहायता के स्रोतों की जानकारी मांगी गयी थी। पूछा यह भी गया था कि क्या विद्यालयों में धर्मशास्त्र, कानून और ज्योतिष जैसे विषय भी पढ़ाए जाते हैं? दरअसल, अंग्रेजी सत्ता भारत पर मजबूत शासन चाहती थी। इसके लिए शिक्षा तंत्र पर वास्तविक नियंत्रण की जरूरत थी। इसके लिए पहले से जारी शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा तंत्र के अध्ययन की आवश्यकता थी। अंग्रेजी राज ने इसीलिए सर्वेक्षण करवाया था। सर्वेक्षण से चौंकाने वाले नतीजे आये। सर्वे का कार्य बाम्बे प्रेसीडेंसी में 1830 तक व मद्रास प्रेसीडेन्सी में 1826 तक हुआ। बंगाल और पंजाब में भी सर्वे का काम हुआ। मद्रास प्रेसीडेंसी के 21 जिलों के सर्वेक्षण में 1094 शिक्षण संस्थांए 'कालेज' की हैसियत में थीं। वेद, विधिशास्त्र, तर्कशास्त्र और ज्योतिष अध्ययन के भी आँकड़े उत्साहवर्द्धक थे। सर्वे के अनुसार सभी वर्गो, जातियों, उपजातियों के हजारों छात्र अध्ययनरत थे। ईसाई मिशनरी (डब्लू एडम) का बंगाल सर्वेक्षण 'ए रिपोर्ट ऑन दि स्टेट आफ एजुकेशन इन बंगाल' चर्चा का विषय बना। बंगाल पर एडम की रिपोर्ट कई दफा छपी। 1883 में प्रति विद्यालय एक अध्यापक नाम से इसकी भारी चर्चा हुई। अनेक सर्वेक्षणों के बाद विलियम एडम का निष्कर्ष था कि बंगाल और बिहार के प्रत्येक गाँव में कम से कम एक स्कूल था। बंगाल और बिहार के 150748 गाँव में 1 लाख स्कूल थे। बंगाल के प्रत्येक जिलों में कम से कम 100 शिक्षण संस्थाएँ थी। मुम्बई प्रेसीडेन्सी और पंजाब के भी निष्कर्ष ऐसे ही थे। देश में लाखों स्कूल थे। वे प्राचीन भारत (सामंती व्यवस्था) की शिक्षा प्रणाली का विस्तार थे। अंग्रेजी राज ने ये स्कूल नहीं चलवाये थे। शिक्षा भारत में धर्म तत्व थी।

शासन से आरंभ होती है। सामंती शिक्षा प्रणाली के स्थान पर आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की संकल्पना और उसकी स्थापना अंग्रेजों ने ही की। उनकी शिक्षा प्रणाली सामंती समाज में प्रचलित शिक्षा से भिन्न और एक प्रकार से उन्नत भी थी, जिसके कारण आगे चल कर शिक्षा पर अभी तक जाति विशेष का जो एकाधिकार था, वह टूटा; परंतु जहां तक अंतर्वस्तु या उसके उद्देश्य की बात है तो उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि वह और मजबूत ही हुई। निश्चित रूप से यह उद्देश्य था जनता को शासित बनाए रखने के लिए ऐतिहासिक चेतना से निर्मित उसकी संस्कृति को औपनिवेशिक शासन के प्रति अनुकूल बनाना।

'इस प्रकार वर्गों के अस्तित्व वाले समाज में अथवा ऐसी स्थिति में जहां एक राष्ट्र या नस्ल या वर्ग पर दूसरे राष्ट्र या नस्ल या वर्ग का प्रभुत्व है, वहां कोई ऐसी शिक्षा नहीं हो सकती जो किसी निष्पक्ष संस्कृति का प्रसार करे। किसी उत्पीड़क वर्ग अथवा राष्ट्र अथवा नस्ल के लिए शिक्षा उत्पीड़न का उपकरण होती है अर्थात वह मौजूदा समाज व्यवस्था को बनाए रखने का उपकरण होती है, जबकि संघर्षशील वर्ग, नस्ल अथवा राष्ट्र के लिए मुक्ति का उपकरण बन जाती है अर्थात यथास्थिति के सामाजिक रूपांतरण का हथियार बन जाती है। इस तरह के वर्गीय समाजों में दरअसल दो तरह की शिक्षा के बीच भीषण संघर्ष चलता है जो दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों का प्रसार करती है और दो परस्पर विरोधी चेतना अथवा विश्वदृष्टि अथवा विचारधाराओं की वाहक हैं।[16]

जब हम औपनिवेशिक काल के शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टि डालते हैं तो इसे हम और बेहतर ढंग से जान पाते हैं। हम देखते हैं कि कैसे शिक्षा धीरे-धीरे औद्योगिक जरूरतों एवं अंग्रेजी राज के अनुरूप बनती चली जाती है और अंततः उत्पीड़न एवं मुक्ति दोनों का ही एक प्रमुख औजार बन जाती है। अंग्रेजी राज की आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार से एक ओर जहां पिछले ढाई हजार सालों से गुलाम बना समाज जागृत होता है, तो वहीं उस जागृत समाज को कैसे दबाया जाए, ऐतिहासिक ज्ञान परंपरा पर आधारित नवीन सांस्कृतिक चेतना को फिर से अंकुरित होने से पहले ही उसे कैसे उखाड़ दिया जाए, यह औपनिवेशिक विचार जड़ जमाने लगा। इसी विचार की अभिव्यक्ति हमें मैकाले के इस कथन में दिखाई पड़ती है -

"मैंने भारत के ओर-छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया, जो चोर हो। इस देश में ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि हम इस देश को विजित कर लेंगे, जबतक कि हम इसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरूदंड को तोड़ न दें। इसलिए मैं यह प्रस्तावित करता

करते हैं। वे सामन्यतः क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयंपूर्ण रहती है। भारत के आदिवासी समुदायों का निवास क्षेत्र मुख्य रूप से उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर राज्यों में है। भारतीय संविधान की पांचवी अनुसूची में आदिवासियों को 'अनुसूचित जनजातियों' के रूप में मान्यता दी गई है।

इन आदिवासियों ने ही अपने श्रम और मेधा से मानव सभ्यता के नये युग की सुदृढ़ नींव डाली थी। मोहनजोदाड़ो-हड़प्पा सभ्यता के बारे में तो यह स्पष्ट ध ारणा है कि इसके जनक मुंडा आदिवासी समूह के आग्नेय लोग थे। बाद में जिन्हें आर्यों ने पराजित किया और बार-बार के आक्रमणों से सघन वन-प्रांतरों में रहने के लिए विवश कर दिया। वैदिक साहित्य में आर्यों और अनार्यों (आदिवासियों) के संघर्ष की अनेक कथाएं हैं जिनसे यह बात प्रमाणित होती है। विकसित राष्ट्रों ने, जिन्होंने लंबे समय तक दुनिया के अधिकांश हिस्सों को अपना गुलाम और उपनिवेश बनाए रखा, मानते हैं कि भारत आदि देशों में ज्ञान-विज्ञान की कोई सुदीर्घ परंपरा नहीं रही है। उनकी नजरों में पिछड़ी दुनिया के देश-समाज आज भी भौतिक प्रगति के मामले में काफी पीछे हैं और रूढ़िवादी परंपराओं में जी रहे हैं। एक ओर उन्होंने जहां अपने गुलाम राष्ट्रों को काहिल, गंवार और असभ्य माना, वहीं आदिवासी समुदायों को बर्बर, जंगली के रूप में चित्रित किया।

भारत के ब्राह्मणवादी समाज की सोच भी आदिवासियों के संबध में यूरोपीय अवधारणा से भिन्न नहीं है। मुख्यधारा के भारतीय नागर समाज ने अपने मालिकों का ही अनुसरण करते हुए आदिवासियों को असभ्य, गंवार, अशिक्षित, बर्बर और जंगली मानते हैं। इसीलिए औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति मिलने के बाद भी नये 'देशी' मालिकों ने गुलामी के दौर में बनाए गए अनेक कानूनों को जस का तस स्वीकार कर लिया। नतीजतन, आज भी भारत आदि दुनिया के कई पिछड़े देशों की आदिम एवं वंचित जनता को ऐसे कानूनों को रद्द कराने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है, जो उनकी अस्मिता, स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्णय के अधिकारों का हनन करते हैं।

जबकि अनेक अनुसंधानों से यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि भारत में आर्यों के आने से पहले की लंबी अवधि में ही एक समृद्धशाली सभ्यता का निर्माण करनेवाली यहां की आदिवासी जातियां ही थीं। अनेक वानस्पतिक पदार्थ, कृषि, अनेक अविष्कार, विविध वस्तुओं के नाम आदि के स्थूल क्षेत्रों, और विचारों, देव-कल्पनाओं और धार्मिक धारणाओं के अपेक्षया सूक्ष्मतर क्षेत्रों, दोनों में भारतीय

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का साधन थी। भारत का धर्म अंध आस्था नहीं है। इसका विकास वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही हुआ। गाँधीजी ने भी धर्म की शिक्षा को नीति की शिक्षा बताया है। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए।[17] यहाँ धर्म का मतलब नीति है। समाज को ठीक दिशा में ले जाने वाली आचार सारिणी का नाम 'नीति' है, इसी की परम्परा का नाम रीति है। रीति वैदिक कालीन 'ऋत' का ही देशज रूप है।

इसके पश्चात् 1813 ई. के आज्ञा-पत्र के अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय शिक्षा का आंशिक दायित्व प्राप्त किया। इसके अनुसार कम-से-कम एक लाख की धन-राशि प्रतिवर्ष इस मद में खर्च करनी थी। लेकिन आज्ञा-पत्र में यह स्पष्ट नहीं किया गया। कि यह धन-राशि देशी शिक्षा के विकास में खर्च की जाएगी या कि विदेशी शिक्षा के विकास में। फलस्वरूप विवाद उत्पन्न हुआ और 1883 के बाद भी इस विवाद का अंत नहीं हुआ, क्योंकि शिक्षा के उद्देश्य, माध्यम तथा साधन मे निश्चिंतता नहीं बरती गई थी।

निष्कर्ष

समूची दुनिया में आदिवासियों अथवा मूल निवासियों की जनसंख्या लगभग 3 अरब 70 करोड़ आबादी है जो कि विश्व की कुल जनसंख्या (करीब 6 अरब) का 6% होता है। आदिवासी शब्द दो शब्दों आदि और वासी से मिल कर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है। सामान्यतः 'आदिवासी' (ऐबोरिजिनल) शब्द का प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना सम्बन्ध रहा हो। परंतु संसार के विभिन्न भूभागों में जहाँ अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रें से आकर लोग बसे हों उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है। पूरे विश्व में 5000 से अधिक आदिवासी समुदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं के साथ निवास करते हैं। इनमें भारत एक ऐसा देश हैं जहां निवास करने वाले आदिवासी समुदायों की संख्या अफ्रीकी देशों के बाद सर्वाधिक है। भारत में मूलवासी एवं आदिवासी को एक ही माना गया है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार करीब आठ करोड़ चालीस लाख अर्थात् भारत की कुल जन संख्या का 1.2 % लोग आदिवासी समुदाय से आते हैं।

अधिकांश आदिवासी समुदाय संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन

क्योंकि शिक्षा वह प्रक्रिया है जो किसी देश की संपदा को संगठित करने की समूची प्रणाली के अधीन हम जो कुछ भी करते हैं उसके साथ हमारा तादात्मय स्थापित करती है। अर्थात् शिक्षा मनुष्य की संस्कृति से सीधे जुड़ी होती है। वह संस्कृति का उत्पाद भी है और उसके निर्मार्ण का प्रमुख कारक भी।

संस्कृति में आदिम जातियों के प्रभाव की खोज हो चुकी है।

यही नहीं, आर्यों ने वैदिक समय में जिस शिक्षण परंपरा के शुरुआत की सुदृढ़ नींव डाली, उसे भी आदिम समाजों से ही लिया गया है। 'नालंदा' और 'तक्षशिला' जैसे विश्वविख्यात प्राचीन विश्वविद्यालयों की पूरी संकल्पना आदिवासियों के मौखिक विश्वविद्यालयों, यथा- गीतिओड़ा, धुमकुड़िया, जोंख एड़पा, घोटुल आदि के आधार पर की गई है। 'गुरु-शिष्य' की श्रुति परंपरा आदिवासियों के लोकशिक्षण की मौखिक परंपराओं का ही विस्तार है जहां एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को अपने अनुभवों व ज्ञान का हस्तांतरण करती थी। आदिवासियों से ली गई शिक्षण-प्रणाली के आधार पर गेय-श्रुति परंपरा का विकास हुआ और दुनिया के सबसे प्राचीनतम लिखित ग्रंथों -- वेदों की रचना मूर्त हो पायी।

इस तरह से प्राचीन भारत में दो तरह के सामाजिक संरचनाओं का क्रमिक ढंग से विकास हुआ। आदिम समाजों के लोकशिक्षण की परंपरा में सामूहिक रूप से समूचा समाज 'गुरु' होता था, जो सहभागी शिक्षण की विधि से एक ही समय में स्वयं को भी, और अपनी नई पीढ़ी को भी, एक साथ शिक्षित-प्रशिक्षित करता था। जबकि ब्राह्मणवादी मुख्यधारा के समाज में शिक्षा एवं ज्ञान पर 'गुरु' का एकाधिकार होता था। आदिम शिक्षण विधि आज की स्कूली 'कान्वेंट' शिक्षा या 'गुरु-शिष्य' परंपरा की तरह 'वनवे' नहीं थी। यह दोतरफा प्रक्रिया थी जिसमें सीखने और सिखाने वाले के बीच किसी भी किस्म का ब्राह्मणवादी विभाजन नहीं था। आधुनिक सभ्यता के निर्माताओं ने अपने राजनीतिक वर्चस्व को कायम रखने और सांस्कृतिक व नस्लीय श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए न सिर्फ आदिम समाजों के सामाजिक संरचना को छिन्न-भिन्न किया, बल्कि उनके ज्ञान के शैक्षिक और सांस्कृतिक केन्द्रों को भी नष्ट कर डाला।

वैदिक काल से औद्योगिक युग के आते-आते और औपनिवेशिक शासन के विस्तार के साथ ही शिक्षा राजनीतिक एवं सांस्कृतिक नियंत्रण का प्रमुख औजार बन गई। अब शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति की जगह जनता के भावजगत पर वर्चस्व कायम करना हो गया ताकि वे शोषण और लूट का प्रतिकार नहीं कर सकें। उन्हें उतना ही पढ़ाया जाए जिससे वे औपनिवेशिक शासकों के हितों में सहायक हों और अपने मालिकों की सेवा करने लायक 'योग्य' बन सकें। इसलिए शिक्षण की उन तमाम प्रणालियों को जिसे जनता ने अपने अनुभव और ज्ञान से सिंचित और पल्लवित किया था, जो सामूहिक और सुलभ थी, और जिसका मुख्य जोर यांत्रिकता की बजाए मनुष्य की चेतना का उत्तरोतर विकास था, एक सिरे से नकार दिया गया।

संदर्भ एवं स्रोत :

1. http://hi.wikipedia.org/wiki/आदिवासी
2. इंपीरियल गजैटियर ऑफ इंडिया, 1981, वोल्यूम 4, पृष्ठ-174
3. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएं, पृष्ठ-45
4. People of India: An Introduction by K. S. Singh, Seagull Books, 26 Circus Avenue, Calcutta पर आधारित
5. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृष्ठ-11-12
6. जगदीश त्रिगुणायत, मुण्डा लोक कथाएं, पृष्ठ-33
7. वही, पृष्ठ-34-36
8. भगवान सिंह, भारतीय सभ्यता की निर्मिति, पृष्ठ-24-25
9. People of India: An Introduction by K. S. Singh, 1992, पृष्ठ-34
10. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृष्ठ-29
11. वही, पृष्ठ-30-31
12. भगवान सिंह, भारतीय सभ्यता की निर्मिति, पृष्ठ-45
13. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृष्ठ-32-33
14. न्गूगी वा थ्योंगो, औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति, पृष्ठ-123
15. कृष्ण कुमार, गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद, पृष्ठ-13
16. न्गूगी वा थ्योंगो, औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति, पृष्ठ-127
17. मोहनदास करमचंद गांधी, हिन्द स्वराज, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2010, पृष्ठ-92

द्वितीय अध्याय

भारत में आधुनिक शिक्षा का इतिहास

की है जो झारखंड में किसी भी जिले से ज्यादा है। जिले में दलित आबादी 7.99 प्रतिशत है। 0-6 आयु को छोड़कर जिले में साक्षरता दर 67.59 प्रतिशत (343737) है। इसमें पुरुष साक्षरता दर 75.84 प्रतिशत (192394) और महिला साक्षरता दर 59.38 प्रतिशत (151333) है। साक्षरता के तमाम प्रयासों के बाद भी अभी तक जिले में 343,706 लोग निरक्षर हैं।[2]

जिले की 93 प्रतिशत (556880) आबादी ग्रामीण है जो गांवों में रहती है और मात्र 7 प्रतिशत आबादी (42933) ही शहरी है। जिले का एकमात्र शहरी क्षेत्र सिमडेगा है जहां जिला मुख्यालय एवं अन्य शासकीय कार्यालय अवस्थित हैं।[3]

सिमडेगा जिले में कुल 94 पंचायत और 450 राजस्व ग्राम हैं।

भाषा-संस्कृति

सिमडेगा की संस्कृति झारखंड राज्य के अन्य इलाके की तरह ही आदिवासी संस्कृति से पल्लवित-पुष्पित है। यहां मुख्य रूप से खड़िया आदिवासी समुदाय का वास है लेकिन उरांव और मुंडा आदिवासी समाजों की अच्छी उपस्थिति है। यहां के आदिवासी संस्कृति की दृष्टि से परंपरागत संस्कृति के अनुयायी हैं तो ईसाई बने आदिवासियों ने ईसाई संस्कृति को अपना लिया है। वहीं सदान जातियां हिंदू संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। बहुत कम संख्या में वर्तमान में मुस्लिम समुदाय हैं जो इस्लाम संस्कृति एवं धर्म को मानते हैं।

भाषा की दृष्टि से यहां खड़िया लोग खड़िया, मुंडा लोग मुंडारी और उरांव लोग कुडुख बोलते हैं। सदान वर्ग के सदस्यों के बीच नागपुरी या सादरी का प्रचलन है। बाहर से आ कर बस गए लोगों के बीच हिंदी मुख्य भाषा है। राजकाज की भाषा हिंदी के प्रचलन से पहले सदान और आदिवासी समुदायों के संपर्क भाषा के रूप में भी नागपुरी का व्यापक प्रचलन रहा है जिसके प्रभाव में आदिवासी समुदायों की भाषा के क्षरण की प्रवृति बढ़ी है। लेकिन अब भी आदिवासी समुदायों के बीच अपनी-अपनी भाषा के प्रति लगाव है और नागपुरी व हिंदी के व्यापक प्रचलन के बावजूद उनकी भाषाओं का अस्तित्व सुरक्षित है।

जिले में सर्वाधिक आबादी खड़िया समुदाय की है जो कि 'मुख्यतः एक ग्रामीण खेतीहर समुदाय है। इसका एक हिस्सा आहार संग्रह अवस्था में है।'[4]

द्वितीय अध्याय

भारत में आधुनिक शिक्षा का इतिहास

घने जंगलों और पहाड़ियों से घिरा सिमडेगा भारत में झारखंड प्रांत का एक आदिवासी बहुल जिला है। सिमडेगा जिला अपने अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य और यहां के मुख्य आदिवासी समुदाय खड़िया, जो कि एक शांतिप्रिय खेतीहर समुदाय है के नैसर्गिक बसाहट के कारण विशिष्ट पहचान रखता है। शंख नदी के किनारे बसा यह झारखंड राज्य के 24 जिलों में से एक है जिसका गठन राज्य बनने के एक वर्ष बाद 30 अप्रैल 2001 को हुआ है। एक जिला के रूप में अस्तित्व में आने से पहले यह गुमला जिले का हिस्सा हुआ करता था। वर्तमान में सिमडेगा जिला दक्षिण छोटानागपुर प्रमंडल के अंतर्गत आता है और इस जिले का एकमात्र अनुमंडल सिमडेगा है। झारखंड के इस नये जिले का गठन कुल 7 प्रखंडों को लेकर किया था था, परंतु बाद में 3 और नये प्रखंड सृजित होने से अब इसके कुल प्रखंडों की संख्या 10 हो गई है। ये प्रखंड हैं - सिमडेगा, कुरडेग, बोलबा, ठेठई टांगर, कोईलबेड़ा, बानो, जलडेगा, पाकरटांड़, बांसजोर एवं केरसई।

2011 की जनगणना के अनुसार सिमडेगा जिले की कुल जनसंख्या 599,813 है जो राज्य की कुल आबादी में 1.82 प्रतिशत का योगदान करता है। इसके अनुसार सिमडेगा जिला में पुरुषों की जनसंख्या 299,905 है जबकि महिलाओं की कुल आबादी 299,908 है। 2001 की जनसंख्या (514,320) के मुकाबले 2011 में यहां की जनसंख्या में 16.62 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। वर्तमान में यहां जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किमी 160 है जो कि 2001 में 137 थी। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले में महिला और पुरुषों का अनुपात बराबर है। 2001 में यह अनुपात प्रति हजार पुरुष पर 1001 महिला का था। 0-6 आयु वर्ग में प्रति 1000 लड़कों पर 975 लड़कियां हैं, जो पुरुषों के मुकाबले घटते अनुपात को दर्शाता है। वैसे जिले में 0-6 आयु के बच्चों की कुल जनसंख्या 91,297 है जो कुल जनसंख्या का 15.22 प्रतिशत होता है। इसमें लड़कों की 46230 और लड़कियों की कुल जनसंख्या 45067 है।[1]

यहाँ 72.45 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जनजातियों अर्थात् आदिवासियों

1. भारत में शिक्षा नीति

ब्रिटिश कालीन एवं स्वतंत्र भारत में शिक्षा-संबंधी विविध समस्याओं को सुलझाने के लिए अनेक आयोग की नियुक्ति हुई। स्वतंत्र भारत में 4 नवंबर, 1948 को विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन् कमीशन) की नियुक्ति की गई। फिर, सितंबर 1952 मं डॉ लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक-शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन) का गठन हुआ। मुदालियर आयोग ने शिक्षा संबंधी समस्याओं का अध्ययन कर अपनी अनुशंसाएं सरकार को सौंपी। इस तरह स्वतंत्र भारत में शिक्षा को लेकर सरकारी विमर्श की शुरुआत हुई।

मुदालियर कमीशन (1952)

मुदालियर आयोग की नियुक्ति 23 सितंबर, 1952 मं हुई। इसके अध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर थे। अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को मुदालियर शिक्षा आयोग कहा जाता है। आयोग की नियुक्ति के लिम्नलिखित उद्देश्य थे -

(क) भारत की तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करके उस पर प्रकाश डालना।

(ख) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संगठन एवं विषय-वस्तु।

(ग) माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक, बेसिक तथा उच्च शिक्षा के संबंध।

(घ) विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों का पारस्परिक संबंध।

(च) माध्यमिक शिक्षा से संबंधित अन्य समस्याएँ।[5]

आयोग के विचार एवं सुझाव

माध्यमिक शिक्षा से संबंधित समस्याओं के विषय में आयोग द्वारा जो विचार व्यक्त किए गए और जो सुझाव दिए गए, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(क) माध्यमिक शिक्षा के दोष -

1. माध्यमिक शिक्षा का जीवन से कोई संबंध नहीं है।

2. माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थियों के संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रशिक्षित एवं विकसित करने में विफल रही है।

शिक्षा

शैक्षणिक दृष्टि से सिमडेगा जिला पिछड़ा हुआ है और इसकी वर्तमान शैक्षणिक दशा भारत की शिक्षा नीति एवं कार्यक्रमों पर एक सटीक टिप्पणी है। आजादी के बाद भारत में जिस शिक्षा नीति को लागू किया गया उसकी कमजोरियों और खूबियों को सिमडेगा जिला पूरी तरह से हमारे सामने रखता है और प्राथमिक स्तर से मातृभाषा में शिक्षण व्यवस्था को लागू करने की पुरजोर वकालत करता है। सिमडेगा जिला के शिक्षा का इतिहास हमारा ध्यान इस बात की ओर खींचता है कि यदि शुरू से ही हमारे नीति-नियंताओं ने यदि मातृभाषा में शिक्षा को बढ़ावा दिया होता तो आज सिमडेगा जैसे आदिवासी बहुल जिले को बदहाली से नहीं गुजरना पड़ता।

पिछले सत्तर सालों में भारत की शिक्षा नीति कैसी रही है और उसका प्रभाव सिमडेगा जैसे आदिवासी जिले पर किस तरह से पड़ा है, इसे जानने के लिए यह जरूरी है कि सबसे पहले भारत की शिक्षा नीतियों और कार्यक्रमों पर एक नजर डाल लिया जाए।

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को अनुशासन के साथ-साथ नेतृत्व की भी शिक्षा देनी है। [7]

(ग) माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठन -

'मुदालियर आयोग' के अनुसार माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन किया जाना चाहिए और इस विषय में उसके निम्नांकित सुझाव हैं-

1. माध्यमिक शिक्षा की अवधि 7 वर्ष होनी चाहिए।

2. यह शिक्षा 11-17 वर्ष तक की आयु के बालकों तथा बालिकाओं के लिए होनी चाहिए।

3. शिक्षा की अवधि दो भागों में विभाजित की जाए - (क) 3 वर्ष की जूनियर माध्यमिक शिक्षा और (ख) 4 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा।

4. वर्त्तमान इंटरमिडिएट कक्षा समाप्त की जाए।

5. डिग्री कोर्स 3 वर्ष का कर दिया जाए।

6. बहुद्देशीय स्कूलों की स्थापना की जाए।

7. ग्रामीण विद्यालयों में कृषि की शिक्षा का विशेष रूप से प्रबंध किया जाए।

8. बहुत बड़ी संख्या में प्राविधिक स्कूलों की स्थापना की जाए।

9. उद्योगों पर उद्योग-कर लगाया जाए और इससे प्राप्त धन को प्राविधिक शिक्षा के विस्तार में व्यय किया जाए।

10. बालिकाओं को 'गृह-विज्ञान' के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जाए।

(घ) भाषाओं का अध्ययन -

1. माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा होना चाहिए।

2. हायर सेकेंडरी स्तर पर कम-से-कम दो भाषाओं की शिक्षा दी जाए। इनमें से एक मातृभाषा और दूसरी क्षेत्रीय भाषा।

3. माध्यमिक शिक्षा एकपक्षीय एवं संकीर्ण है और छात्रों की रुचि के अनुकूल नहीं है।

4. इस शिक्षा से व्यवहारिक जगत का किंचित-मात्र भी ज्ञान नहीं प्राप्त होता है।

5. अंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम एवं अध्ययन का अनिवार्य विषय है।

6. अध्ययन की रीतियाँ परंपरागत हैं और वे छात्रों को प्रभावित करने में असमर्थ हैं।

7. शिक्षण-विधियाँ इतनी दोषपूर्ण हैं कि वे छात्रों में विचार की स्वतंत्रता अथवा क्रिया की रुचि का विकास करने मे विफल रहती है।

8. कक्षाओं में छात्रों की संख्या इतनी अधिक होती है कि अध्यापकों एवं छात्रों में यक्तिगत संपर्क स्थापित नहीं हो पाता है।

9. वर्त्तमान शिक्षा में छात्रों के चरित्र-निर्माण की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता है।

10. परीक्षा-प्रणाली अत्यधिक दोषपूर्ण है। [6]

(ख) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य -

1. लोकतंत्रात्मक नागरिकता का विकास - भारत एक स्वतंत्र राज्य है और इसका उद्देश्य धर्म-निरपेक्ष गणतंत्र की स्थापना करना है। अतः शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिकों को निर्माण किया जाना चाहिए जो भारत के नवीन वातावरण के अनुकूल हों।

2. व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि - शिक्षा का एक उद्देश्य नागरिकों में व्यावसायिक कुशलता की वृद्धि करना है। अतः छात्रों को औद्योगिक शिक्षा दी जानी आवश्यक है।

3. व्यक्तित्व का विकास - शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों का सर्वांगीण विकास करना है। अतः शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए जिससे छात्रों का साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास हो सके।

4. नेतृत्व का विकास - प्रजातंत्र की सफलता के लिए प्रत्येक नागरिक को अनुशासन एवं नेतृत्व की शिक्षा प्रदान करना होगा। अतः

(ग) प्राविधिक शिक्षा के लिए इंजीनियरिंग कालेजों तथा प्रतिधि विद्यालयों का निर्माण।

(घ) माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य रूप से तीन भाषाओं का अध्ययन।

(ड.) विज्ञान आदि विषयों के अध्यापन में सुधार।

(च) छात्रों के शारीरिक कल्याण के लिए अखिल भारतीय क्रीड़ा परिषद् की स्थापना।

(छ) माध्यमिक शिक्षा के संबंध में केंद्रीय तथा राज्य सरकारों को परामर्श देने के लिए अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद् की स्थापना। [8]

कोठारी कमीशन

माध्यमिक-शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन) के गठन के बावजूद अन्य आयोग की नियुक्ति की आवश्यकता पड़ी। कारण कि सन् 1952 तक जितने भी आयोग नियुक्त किए गए, किसी भी आयोग में शिक्षा के समस्त स्तरों पर विचार नहीं किया गया था। अतः इस कमी को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने 14 जुलाई 1964 को एक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की जिसके अध्यक्ष श्री डी. एस. कोठारी हुए। अतः कोठारी महोदय के नाम पर ही इस आयोग का नाम 'कोठारी कमीशन' पड़ा।

आयोग ने 29 जून, 1966 को 1500 पृष्ठ की रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट के अधिकांश अंश प्रकाशित हो चुके हैं। आयोग के सुझावों का उल्लेख अनेक समाचार-पत्रों में किया गया है। आयोग की सिफारिशें संक्षेप में निम्नलिखित हैं-

1. विभिन्न भारतीय भाषाओं का स्थान - आयोग के मुताबिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं, जिनका मुख्य कारण लिपियों का अंतर है। अतः भाषा- संबंधी निम्न सुधार आवश्यक हैं।

क) भारतीय भाषाओं कें प्रमुख साहित्य को देवनागरी लिपि और रोमन लिपि में प्रकाशित किया जाना चाहिए।

ख) प्रादेशिक भाषाओं को प्रादेशिक प्रशासन की भाषा का स्थान दिया जाए।

ग) विद्यालय, कॉलज और उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(च) माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम -

1. पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिससे छात्रों की विभिनन योग्यताओं एंव क्षमताओं का विकास किया जा सके।

2. पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन से घनिष्ठ संबंध होना चाहिए।

3. पाठ्यक्रम में विविधता तथा लचीलापन होना चाहिए, जिससे उसे छात्रों की आवश्यकताओं एंव अभिरुचियों के अनुकूल बनाया जा सके।

4. पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिससे छात्रों को अवकाश का सदुपयोग करने के लिए शिक्षित किया जा सके।

5. पाठ्यक्रम के समस्त विषय में अंतःसंबंध होना आवश्यक है।

(छ) पाठ्यक्रम के विषय -

1. मिडिल अथवा जूनियर हाईस्कूल - (क) भाषाएँ (ख) समाज विज्ञान, (ग) सामान्य विज्ञान, (घ) गणित, (च) कला एंव संगीत, (छ) शिल्प और शारीरिक शिक्षा।

2. हायर सेकेंडरी स्कूल - इन स्कूलों के पाठ्यक्रम मे विविधता की आवश्यकता है, जिससे छात्रों की अभिरूचियों तथा योग्यताओं का विकास किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम मे निम्नलिखित 7 समूह होने चाहिए-

(क) मानविकी (ख) विज्ञान, (ग) टेकनिकल विषय, (घ) वाणिज्य विषय, (च) कृषि-विज्ञान, (छ) ललित कलाएँ और गृह विज्ञान।

अनिवार्य विषय- (1) भाषा, (2) सामान्य विज्ञान, (3) समाज विज्ञान और शिल्प।

आयोग के सुझावों का कार्यान्वयन

आयोग के अधिकांश सुझावों को केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकार करके कार्यान्वित कर दिया गया है। इसका विवरण यहां दिया जा रहा है-

(क) वर्त्तमान स्कूलों को बहुउद्देशीय स्कूलों में बदल कर नया रूप दिया जाना।

(ख) कृषि-शिक्षा के विस्तार के लिए ग्रामीण उच्च शिक्षा समिति की स्थापना।

विद्यालय के रूप में उन्हीं विद्यालयों को बदला जाए जिनका स्तर उठा हुआ हो।

8. राष्ट्रीय एकता - आयोग ने राष्ट्रीय एकता के लिए निम्न सुझाव दिए-

क) पाठ्यक्रम में वस्तु-शिल्प तथा संगीत जैसे विषयों को स्थान दिया जाए।

ख) विचारों के आदान-प्रदान के लिए प्रदेश के अध्यापक एवं विद्यार्थी दूसरे प्रदेश में आवागमन करें।

9. संस्कृत एवं अरबी भाषा का निरादर - आयोग ने संस्कृत और अरबी भाषा संबंधी निम्न सुझाव देकर उनकी अवहेलना की-

क) संस्कृत और अरबी जैसी प्राच्य भाषाओं का शिक्षण सिर्फ 8 वें वर्ग तक वैकल्पिक विषय के रूप में हो।

ख) नवीन संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना न की जाए।

ग) कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयों में ही संस्कृत-अध्ययन के केंद्र खोले जाएँ।

10. शिक्षकों का वेतन - शिक्षकों के वेतन के संबंध में आयोग ने निम्न सुझाव दिए-

क) समाज के नैतिक एवं बौद्धिक विकास के लिए शिक्षकों के वेतन में वृद्धि की जाए।

ख) देश के किसी भी शिक्षक को 150 रुपए से कम वेतन न मिले।

ग) सरकारी एवं गैरसरकारी स्कूलों के शिक्षकों के असमान वेतन में समानता लाई जाए।

घ) प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक का प्रशिक्षण काल 2 वर्ष से कम न हो।

ङ) 200 से अधिक छात्र संख्या वाले विद्याालयों के प्रधानाध्यापक प्रशिक्षित स्नातक हों।

च) वेतन की दर को लागू करने के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर 80 प्रतिशत खर्च केंद्र तथा शेष 20 प्रतिशत खर्च राज्य दे।

छ) प्राइवेट कॉलेज के लिए केंद्रीय सहायता 100 प्रतिशत मिले।

ज) शिक्षकों के वेतन की जाँच-पड़ताल प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद होनी चाहिए।

2. हिंदी का स्थान - अंग्रेजी सर्वसाधारण की भाषा नहीं है। यह सिर्फ उच्च शिक्षा एवं बौद्धिक आदान-प्रदान के लिए महत्वपूर्ण है। अतः हिंदी सर्वसाधारण की भाषा है। यह संपूर्ण देश में विचार-विनिमय का साधन बन सकती है। इसलिए हिंदी को अहिंदी प्रदेशों में प्रसारित करने का प्रयास किया जाए।

3. अंग्रेजी का स्थान - आयोग ने अंग्रेजी भाषा पर सबसे अधिक बल देते हुए अंग्रेजी भाषा संबंधी निम्न सुझाव दिए -

क) विश्वविद्यालय स्तर की भाषा अंग्रेजी हो।

ख) देश में उच्च स्तर के अध्ययन तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खोज करने के लिए 6 महाविद्यालय विकसित किए जाएं, जिनका माध्यम अंग्रेजी ही हो।

ग) उपर्युक्त छह महाविद्यालयों में एक प्राधौगिकी विज्ञान से संबंधित हो तथा दूसरा कृषि से संबंधित।

घ) सार्वदेशिक संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो। हिंदी माध्यम पर कालांतर में विचार होगा।

4. भारतीय भाषाओं के विकास की सुव्यवस्था - हिंदी के अलावे अन्य भारतीय भाषाओं के विकास पर भी आयोग ने जोर दिया। आंयोग के अनुसार विद्यालयों में अन्य भारतीय भाषाओं की पढ़ाई होनी चाहिए। प्रत्येक विश्वविद्यालय में बी.ए. और एम.ए. तक एक साथ दो भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जानी चाहिए।

5. त्रिभाषी फार्मूले के संशोधन - आयोग ने त्रिभाषी फार्मूले में भी संशोधन का सुझाब दिया। इसके अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी को तीन भाषाएँ पढ़नी चाहिए-

क) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा,

ख) राजभाषा या संघीय भाषा,

ग) एक आधुनिक भारतीय भाषा या यूरोपीय भाषा जो क) और ख) से अलग हों।

6. विद्यालयी अवकाश - आयोग ने सुझाव दिया की विद्याालयों की छुट्टियाँ कम कर दी जाएँ तथा अवकाश में विकास कार्यक्रम लागू किए जाएँ।

7. माध्यमिक विद्यालय - आयोग ने सिफारिश की कि प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय को अब उच्च माध्यमिक विद्यालय में न बदला जाए। उच्च माध्यमिक

साक्षरता व्यक्ति को इस काबिल बना दे कि वह चाहे तो स्वयं या अन्य औपचारिक शिक्षा अवसरों के माध्यम से अपना कौशल व शिक्षा बढ़ा सके।[10]

आयोग ने यह भी विचार किया कि जो देश पारंपरिक समाज के दायरे से बाहर निकलकर आधुनिक समाज बनने का प्रयास कर रहा हो, तब विज्ञान को शिक्षा व संस्कृति की बुनियाद का अहम हिस्सा बनना पड़ेगा। इसलिए उद्देश्यपूर्ण शिक्षा के चार बुनियादी तत्त्व होने चाहिए- साक्षरता, गणना (अंकगणित व प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन), कार्यानुभव और सामाजिक सेवा। सरकार ने शिक्षा आयोग की ज्यादातर सिफारिशों को मान लिया, और 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति वजूद में आई। इसी के अनुरूप स्कूली पाठ्यक्रमों में लड़कों व लड़कियों के लिए साझा योजना के साथ-साथ विज्ञान व गणित को अनिवार्य विषयों में शामिल कर लिया गया। इसके अलावा कार्यानुभव को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। वैज्ञानिक साक्षरता का प्रमुख उद्देश्य था कि बच्चों को इस काबिल बना दिया जाए कि वे स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग और रोजमर्रा की जिंदगी के अन्य पहलुओं के साथ विज्ञान के संबंध को जान सकें। इसका उद्देश्य यह था कि बच्चों में सुपरिभाषित योग्यताओं व मूल्यों को विकसित किया जाए ताकि उनमें सृजनात्मकता, वस्तुनिष्ठता, प्रश्नवाचकता पैदा हो। उनमें सवाल पूछने का साहस और सौंदर्यबोध का विकास हो। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक साक्षरता का मतलब है व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा किया जाए।

24 जुलाई, 1968 की इस घोषणा में भारत सरकार ने शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए सरकार ने यह माना कि शिक्षा राष्ट्रीय विकास और सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में राष्ट्रीय शिक्षा की रूपरेखा, सामान्य सिद्धांत और नीतियों पर जो सिफाारिश दी थी, उस पर विचार करने के बाद भारत सरकार ने यह अनुभव किया कि देश के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए तथा समाज के समाजवादी ढाँचे के प्राप्ति के लिए शिक्षा का एक नया रूप निर्धारित करना आवश्यक है। हमारी शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो चरित्रवान नागरिकों का निर्माण कर सके तथा उनमें राष्ट्रीय सेवा और विकास की भावना भरे।

झ) सरकारी एवं गैरसरकारी विद्यालयों के शिक्षकों के महँगाई भत्ता में समानता हो। [9]

1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति

संगठित स्कूल प्रणाली में हालात कुछ इस तरह के थे कि जो लोग देश की श्रमशक्ति में शामिल हो चुके थे यानी 15-35 आयु वर्ग के बीच के लोग जो मेहनत मजूरी करते थे, उन्हें साक्षर बनने का अवसर ही नहीं मिला क्योंकि उस समय अनौपचारिक शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा उपलब्ध ही नहीं थी। शिक्षा के प्रति यह आम उदासीनता, सीखने वाले के मुताबिक पाठ्यक्रम का न होना और संसाधनों के अभाव ने सरकार को यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि आम तौर पर शिक्षा और खास तौर पर साक्षरता के प्रति नई समझ की आवश्यकता है। इसी बीच यूनेस्को ने 1965 में ईरान की राजधानी तेहरान में निरक्षरता उन्मूलन के लिए पूरी दुनिया के शिक्षा मंत्रियों का विश्व सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में यह बात सामने आई कि साक्षरता को इस तरह होना चाहिए जिससे मनुष्य सामाजिक, नागरिक व आर्थिक भूमिका निभाने लायक बने। इसका उद्देश्य केवल पढ़ना-लिखना सिखाना ही नहीं होना चाहिए। इस परिभाषा से पूरी तरह सहमत होते हुए शिक्षा आयोग का गठन किया गया जिसके तत्कालीन अध्यक्ष (1964-66) डा. डी.एस. कोठारी ने कहा, हम यह नहीं मानते कि साक्षरता का मतलब पढ़ने व लिखने लायक बनाना होता है, इसलिए साक्षरता को कारगर बनाना होगा। एक कारगर साक्षर व्यक्ति का मतलब ऐसे व्यक्ति से है जो अपना जीवन खुद निर्वाह करने के लिए साक्षरता के सभी औजारों का इस्तेमाल जानता हो और जिसने समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया हो। इसे और विस्तार देते हुए कहा जा सकता है कि साक्षरता कार्यक्रम के तीन बिंदु हैं जिनसे व्यक्ति तीन तरह से योग्य बनता है :

व्यक्ति को जो काम दिया जाए उसे वह खुद कर सके यानी साक्षरता कार्याधारित हो जिसके तहत व्यक्ति में दिलचस्पी पैदा की जाए, उसे कुशल बनाया जाए और उसे कार्य संबंधी सूचना मुहैया कराई जाए ताकि वह अपने कार्य को पूरी कुशलता से करने के योग्य बने।

व्यक्ति एक नागरिक के तौर पर अपनी भूमिका निभा सके यानी साक्षरता व्यक्ति को इस काबिल बनाए कि वह महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं को समझ सके और राष्ट्र के सामाजिक व राजनैतिक जीवन में हिस्सा ले सके।

4. शैक्षिक अवसरों की समानता -

(क) शैक्षिक सुविधाओं की क्षेत्रीय असमानताओं को दूर किया जाए।

(ख) सामान्य विद्यालयों का शैक्षिक स्तर ऊँचा किया जाए।

(ग) लड़कियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाए।

(घ) पिछड़े वर्ग की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए।

(ङ) शारीरिक और मानसिक दृष्टि से लोगों की शैक्षिक सुविधाएँ बढ़ाई जाएँ।

5. मेधावी छात्रों की पहचान -

मेधावी छात्रों का चुनाव कम-से-कम उम्र पर किया जाए तथा उनके विकास के लिए हर संभव उपाय किया जाए।

6. कार्य-अनुभव और राष्ट्रीय सेवा -

पारस्परिक सेवा और सहयोग द्वारा एक दूसरे के नजदीक लाया जाए। शिक्षा में कार्य अनुभव, राष्ट्रीय सेवा, समाज सेवा तथा राष्ट्रीय पुनर्निमार्ण के कार्यक्रमों का समावेश होना चाहिए। इन कार्यक्रमों में आत्मनिर्भरता, चरित्र-निमार्ण तथा समाज के प्रति दायित्व की अनुभूति का विकास होना चाहिए।

7. विज्ञान शिक्षा तथा शोध -

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को तीव्र करने के लिए विज्ञान शिक्षा तथा शोध को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। विज्ञान और गणित विद्यालय शिक्षा के अभिन्न अंग रहने चाहिए।

8. कृषि और उद्योग के लिए शिक्षा -

(क) प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना की जाए।

(ख) तकनीकी शिक्षा में व्यवहारिक प्रशिक्षण को महत्व दिया जाए। तकनीकी शिक्षा और शोध का सीधा संबंध उद्योग से स्थापित किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सामान्य सिद्धांत [11]

1. निःशुल्क और अनिवार्य सिद्धांत -

इस बात का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए कि देश के प्रत्येक बालक को 14 वर्ष की उम्र तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाए। विद्यालयों में अपव्यय तथा अवरोधन को कम-से-कम किया जाए।

2. शिक्षकों का वेतन तथा उनकी शिक्षा -

(क) शिक्षा का सफल होना सबसे अधिक योग्य शिक्षक पर निर्भर है। अतः समाज में शिक्षक को आदर मिलना चाहिए। उनका वेतन तथा सेवा नियम, उनकी योग्यता एवं उत्तरदायित्व को देखते हुए होने चाहिए।

(ख) शिक्षकों की शैक्षिक स्वतंत्रता बनी रहनी चाहिए।

(ग) शिक्षकों की शिक्षा पर विशेष बल देना चाहिए।

3. भाषाओं का विकास -

(क) क्षेत्रीय भाषा- शैक्षिक और सांस्कृतिक विकास के लिए भारतीय भाषाओं का विकास आवश्यक है। क्षेत्रीय भाषाएँ जिस प्रकार प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम है उसी पर विश्वविद्यालय स्तर पर उनको अपनाया जाए।

(ख) त्रिभाषा सूत्र- माध्यमिक स्तर पर तीन भाषा पढ़ाई जाएँ। हिंदी क्षेत्रों में हिंदी और अंग्रेजी के अतिरिक्त कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा और अहिंदी क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी पढ़ाई जाए।

(ग) हिंदी- हिंदी के विकास के लिए हर संभव प्रयास किया जाए जिससे कि निकट भविष्य में यह भारत की व्यवहार की भाषा हो सके।

(घ) संस्कृत - राष्ट्रीय एकता में संस्कृत का विशेष योग है अतः इसके अध्यापन की विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाए।

(च) अंतराष्ट्रीय भाषाएँ - अंग्रेजी तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं के शिक्षण पर विशेष बल दिया जाए।

13. अंशकालीन शिक्षा तथा पत्राचार शिक्षा -

विश्वविद्यालयों के स्तर पर अंशकालीन शिक्षा और पत्राचार द्वारा शिक्षाण वृहत् स्तर पर होना चाहिए और इसकी मान्यता पूर्णकालिक शिक्षा के समान ही होना चाहिए।

14. साक्षरता का प्रसार और प्रौढ़ शिक्षा -

(क) राष्ट्रीय विकास तथा जनतांत्रिक संस्थाओं के विकास के लिए निरक्षरता का समूल विनाश अत्यावश्यक है। सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा के अंतर्गत शिक्षकों और विद्यार्थियों की सहायता के किसानों और मजदूरों की निरक्षरता दूर की जा सकती है।

(ख) युवक, किसानों और देश के नौजवानों को रोजगार खोजने तथा पाने योग्य शिक्षा दी जानी चाहिए।

15. खेल-कूद -

सामान्य विद्यार्थियों की शारीरिक क्षमता तथा विशिष्ट योग्यता एवं सामान्य विद्यार्थियों में खिलाड़ीपन के विकास को दृष्टि में रखकर खेलों का आयोजन होना चाहिए।

16. अल्पसंख्यकों की शिक्षा -

अल्पसंख्यकों की शैक्षिक रुचि का ध्यान रखा जाना चाहिए।

17. शैक्षिक ढाँचा -

राष्ट्रीय आधार पर एक सामान्य शैक्षिक ढाँचा अपनाया जाना चाहिए। परिवर्तन के बार 10. 2. 3 का गठन सर्वमान्य होना चाहिए। 2 वर्षों का उच्चत्तर माध्यमिक कोर्स विद्यालयों में या महाविद्यालयों में दोनों में चलाया जा सकता है।

राष्ट्रीय नीति की उद्घोषणा में सरकार ने यह स्वीकार किया है कि शिक्षा के पुनर्निर्माण का कार्य सरल नहीं है। जहाँ तक धन का प्रश्न है, सरकार यह स्वीकार करती है कि शिक्षा पर कुल राष्ट्रीय आय का 6% व्यय किया जाना चाहिए।

इस राष्ट्रीय नीति को देखने से स्पष्ट होता है कि भारत में पहली बार शिक्षा के महत्वपूर्ण प्रश्न को राष्ट्रीय स्तर पर समझने एवं हल करने का प्रयास किया

(ग) कृषि और अन्य तकनीकी व्यक्तियों तथा उद्योगों में नौकरी के अवसरों में संतुलन रखा जाए।

9. पुस्तकों का उत्पादन -

अच्छे-अच्छे लेखकों को उचित पारिश्रमिक देकर विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के लिए उत्तम पुस्तकें लिखवाई जाएँ।

10. परीक्षाएँ -

परीक्षाओं के स्तर में सुधार किया जाए। पीरक्षाओं का उद्देश्य विद्यार्थियों में उन्न्त स्तर प्राप्त करने की इच्छा का विकास होना चाहिए।

11. माध्यमिक शिक्षा -

(क) माध्यमिक शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का मुख्य माध्यम है अतः इसका प्रचार और प्रसार शीघ्रता से किया जाए।

(ख) माध्यमिक स्तर पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ दी जाएँ जिससे देश की आर्थिक अवस्था की प्रगति हो सके तथा लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके।

12. विश्वविद्यालयीय शिक्षा -

(क) महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में उतने छात्र लिए जाएँ जिनके शिक्षण की उचित व्यवस्था की जा सकती है।

(ख) नए विश्वविद्यालयों की स्थापना तभी की जाए जब पर्याप्त धन की व्यवस्था हो।

(ग) स्नातकोत्तर शिक्षा के स्तर को उन्नत किया जाए।

(घ) उच्च अध्ययन के केंद्रों का स्तर उन्नत किया जए और शोध तथा प्रशिक्षण का स्तर उच्चतम हो।

(च) विश्वविद्यालयों में शोध की सुविधाएँ अधिकतम उपलब्ध की जाएँ।

प्रकार की जानकारी देने और अंतर अनुशासनिक अनुसंधान करने, राज्यों में नए मुक्त विश्ध्वविद्यालयों की स्थापना करने, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषदको सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल हैं। इसके अलावा शिक्षा में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु एक विकेंद्रीकृत प्रबंधन ढांचे का भी सुझाव दिया गया है। इन कार्यक्रमों के कार्यान्वियन में लगी एजेंसियों के लिए विभिन्न नीतिगत मानकों को तैयार करने हेतु एक विस्तृत रणनीति का भी पीओए में प्रावधान किया गया है।

एनपीई द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक ऐसे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचे पर आधारित है, जिसमें अन्य लचीले एवं क्षेत्र विशेष के लिए तैयार घटकों के साथ ही एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान है। जहां एक ओर शिक्षा नीति लोगों के लिए अधिक अवसर उपलब्ध्ध कराए जाने पर जोर देती है, वहीं वह उच्च्य एवं तकनीकी शिक्षा की वर्तमान प्रणाली को मजबूत बनाने का आह्वान भी करती है। शिक्षा नीति शिक्षा के क्षेत्र में कुल राष्ट्रीय आय का कम से कम 6 प्रतिशत धन लगाने पर भी जोर देती है।[12]

केंद्रीय शिक्षा परामर्शदाता बोर्ड (सीएबीई) शिक्षा के क्षेत्र में केंद्रीय और राज्य सरकारों को परामर्श देने के लिए गठित सर्वोच्च्य संस्थ्या है। इसका गठन 1920 में किया गया था और 1923 में व्यय में कमी लाने के लिए इसे भंग कर दिया गया। 1935 में इसे पुनः गठित किया गया और यह बोर्ड 1994 तक अस्तित्व में रहा। इस तथ्य के बावजूद कि विगत में सीएबीई के परामर्श पर महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए हैं और शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर व्यापक विचार-विमर्श एवं परीक्षण हेतु इसने एक मंच उपलब्ध कराया है, दुर्भाग्यवश मार्च, 1994 में बोर्ड के बढ़े हुए कार्यकाल की समाप्ति के बाद इसका पुनर्गठन नहीं किया गया। देश में हो रहे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों एवं राष्ट्रीय नीति की समीक्षा की वर्तमान जरूरतों को देखते हुए सीएबीई की भूमिका और भी बढ़ जाती है। अतः यह महत्व का विषय है कि केंद्र और राज्य्य सरकारें, शिक्षाविद एवं समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधि आपसी विचार-विमर्श बढ़ाएं और शिक्षा के क्षेत्र में निर्णय लेने की ऐसी सहभागी प्रक्रिया (प्रणाली) तैयार करें, जिससे संघीय ढ़ांचे की हमारी नीति को मजबूती मिले। राष्ट्रीय नीति 1986 (जैसा कि 1992 में संशोधित किया गया) में भी यह प्रावधान है कि शैक्षिक विकास की समीक्षा करने तथा व्यवस्था एवं कार्यक्रमों पर नजर रखने के लिए आवश्यक परिवर्तनों को निर्धारण करने में भी सीएबीई की महत्वपूर्ण

गया है। सरकार ने प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक एक सुसंगठित नीति अपनाई है। वैसे कार्य अनुभव, राष्ट्रीय सेवा, सामाजिक सेवा इत्यादि शब्द बहुत स्पष्ट नहीं किए जा सके हैं। दूसरी बात शिक्षा को राज्य सरकारों के अधीन विषय बना रहने दिया गया जो राष्ट्रीय नीति के पालन में एक आधारभूत बनी। बहरहाल 1968 की नीति के जो आम तौर तरीके थे उन्हें विभिन्न कारणों के तहत कार्यान्वयन संबंधी विस्तृत रणनीति में नहीं बदला जा सका। इसका नतीजा यह हुआ कि अपव्यय, जड़ता, पहुंच, गुणवत्ता व वित्त संबंधी जिन समस्याओं का पहले जिक्र किया गया था वे धीरे-धीरे इतनी भारी मात्रा में जमा होती गईं कि उनका हल फौरन निकाला जाना जरूरी हो गया।

यह ध्यान देने योग्य है कि सन् 1976 से पूर्व शिक्षा पूर्ण रूप से राज्यों का उत्तरदायित्व था। संविधान द्वारा 1976 में किए गए जिस संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया, उस के दूरगामी परिणाम हुए। आधारभूत, वित्तीय एवं प्रशासनिक उपायों के द्वारा राज्यों एवं केन्द्र सरकार के बीच नई जिम्मेदारियों को बांटने की आवश्यकता महसूस की गई। जहां एक ओर शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों की भूमिका एवं उनके उत्तरदायित्व में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ, वहीं केन्द्र सरकार ने शिक्षा के राष्ट्रीय एवं एकीकृत स्वरूप को सुदृढ़ करने का गुरुतर भार भी स्वीकार किया। इसके अंतर्गत सभी स्तरों पर शिक्षकों की योग्यता एवं स्तर को बनाए रखने एवं देश की शैक्षिक जरूरतों का आकलन एवं रखरखाव शामिल है।

1986 की नई शिक्षा नीति

केंद्र सरकार ने अपनी अगुवाई में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रम बनाने और उनके क्रियान्वयन पर नजर रखने के कार्य को जारी रखा। इन नीतियों में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा-नीति (एनपीई) तथा वह कार्यवाही कार्यक्रम (पीओए) शामिल है, जिसे सन् 1992 में अद्यतन किया गया। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बुनियादी (प्राथमिक) शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध

बच्चे की शिक्षा, बाल विकास, पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न योजनाओं को ध्यान में रखते हुए बाल विकास प्रयासों के समन्वयन और एकीकरण मामलों के लिए एक स्थायी समिति। [14]

सीएबीई की 6-7 सितंबर 2005 को हुई बैठक की सिफारिश के आधार पर एनसीईआरटी द्वारा पाठ्य पुस्तकों के पाठ्यक्रम तैयार करने के प्रक्रिया पर नजर रखने के लिए एक निगरानी समिति गठित की गई। प्रत्यापित और संबद्ध करने वाली संस्थाओं में नेट लाइन के माध्यम से आवेदन स्वीकार कर उस पर कार्यवाही करने और अन्य मामलों में पारदर्शिता लाने के उद्देश्य से इनकी कार्यप्रणाली में सुधार के लिए कदम उठाए गए हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नए विचारों के समावेश और सुधार प्रक्रिया पर निगरानी के लिए राष्ट्रीय उच्च शिक्षा आयोग के गठन पर विचार-विमर्श शुरू हुआ।

शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी विभिन्न परियोजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु भारत एवं विदेशों से प्राप्त होने वाली छोटी से छोटी सहायता (दान) राशि की सुगमता से प्राप्ति के लिए सरकार ने समिति पंजीयन अधिनियम, 1860 के अंतर्गत एक पंजीकृत सोसायटी के तौर पर 'भारत सहायता कोष' का गठन किया। 09 जनवरी, 2003 को 'प्रवासी भारतीय दिवस' के अवसर पर आयोजित समारोह में विधिवत प्रारंभ किया गया। यह कोष शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित सभी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों के लिए निजी संगठनों, व्यक्तियों, कार्पोरेट (उद्योग) जगत, केंद्र एवं राज्य सरकारों, प्रवासी भारतीयों एवं भारतीय मूल के लोगों से दान/अंशदान तथा सहायता राशि प्राप्त कर सकेगा।

अल्पसंख्यक शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 में संशोधित) में समानता और सामाजिक न्याय के हित में शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर विशेष बात कही गई है। संशोधित कार्ययोजना, 1992 के आधार पर केंद्र द्वारा प्रायोजित दो नई योजनाएं (1) शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिए गहन क्षेत्रीय कार्यक्रम, तथा (2) मदरसा शिक्षा आधुनिकीकरण वित्तीय सहायता योजना 1993-94 के दौरान प्रारंभ की गई।[15]

समय के साथ यह अनुभव किया गया कि इन सभी योजनाओं को

भूमिका होगी। यह मानव संसाधन विकास के विभिन्न क्षेत्रों में आपसी तालमेल एवं परस्पर संपर्क सुनिश्चित करने के लिए तैयार की गई उपयुक्त प्रणाली के माध्यम से अपना कार्य करेगा। तदनुसार ही सरकार ने जुलाई, 2004 में सीएबीई का पुनर्गठन किया और पुनर्गठित सीएबीई की पहली बैठक 10 एवं 11 अगस्त, 2004 को आयोजित की गई। विभिन्न विषयों के विद्वानों के अलावा लोकसभा एवं राज्यसभा के सदस्यगण, केंद्र, राज्य्य एवं केंद्रशासित प्रदेशों के प्रशासनों के प्रतिनिधि इस बोर्ड के सदस्य होते हैं।

पुनर्गठित सीएबीई की 10 एवं 11 अगस्त, 2004 को हुई बैठक में कुछ ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर विशेष विचार-विमर्श करने की आवश्यकता महसूस की गई। तदनुसार निम्नलिखित विषयों के लिए सीएबीई की 7 समितियां बनाई गई -

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक तथा प्राथमिक शिक्षा से जुड़े अन्य मामले

बालिका शिक्षा तथा एक समान स्कूल प्रणाली

एक समान माध्यमिक शिक्षा

उच्च शिक्षा संस्थानों को स्वायत्तता

स्कूल पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक शिक्षा का एकीकरण

सरकार-संचालित प्रणाली के बाहर चल रहे स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकों एवं समानांतर पाठ्य पुस्तकों के लिए नियामक व्यवस्था

उच्च एवं तकनीकी शिक्षा को वित्तीय सहायता देना। [13]

उपर्युक्त हेतु समितियों का गठन सितंबर, 2004 में किया गया। इनसे मिली रिपोर्टों पर 14-15 जुलाई, 2005 को नई दिल्ली में हुई सीएबीई की 53वीं बैठक में विचार-विमर्श किया गया। इन सभी प्राप्त रिपोर्टों से उभरे कार्य-बिंदुओं की पहचान करने तथा उन पर एक निश्चित कार्यावधि में अमल करने के लिए कार्य-योजना तैयार करने के आवश्यक उपाया किए जा रहे हैं। इसके साथ ही सीएबीई की तीन स्थायी समितियां बनाए जाने का निर्णय किया गया -

नई शिक्षा नीति को लागू कराने को विशेष आवश्यकता सहित बच्चों एवं युवाओं के लिए सन्निहित शिक्षा हेतु स्थायी समिति,

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को निर्देश देने के लिए साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा पर स्थायी समिति,

करने का भी प्रस्ताव किया गया है जो 400 से अधिक विश्वविद्यालयों के समकक्ष संस्थानों और 20,000 से अधिक डिग्री कॉलेजों को ब्राडबैण्ड संपर्कता उपलब्ध करायेगा। 11वीं योजना में उच्च शिक्षा स्तर पर श्रेष्ठ अनुसंधान को बढ़ावा देने, नियमित जीवन वृत में सुधार एवं नियमित मूल्यांकन पर जोर देने, प्रत्यायित व्यवस्था का विस्तार करने और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् जैसी उच्च संस्थाओं में सुधार के लिए प्राथमिकता देने की बात कही गई है ताकि इन्हें वर्तमान तथा आने वाली चुनौतियों तथा आवश्यकताओं के प्रति और अधिक जवाबदेह बनाया जा सके।

वास्तव में भारत जैसे तीसरे विश्व की यह विडंबना रही है कि यहां के शासक वर्ग ने हमेशा शिक्षा के सवाल पर सतही एवं स्थूल दृष्टि से सोचा है शिक्षा के मसले का इस हद तक सामान्यीकरण किया गया है कि वह केवल साक्षरों की संख्या में वृद्धि के लक्ष्य तक सीमित हो गया है संक्षेप में अब तक 'लक्ष्य प्रणाली' की नीति अपनाई गई है। यदि कुछ आगे बढ़े तो सामुदायिक विकास योजनाएं उन्नत कृषि शिक्षा तक प्रयास सीमित रह गया। स्पष्ट शब्दो में शिक्षा के सवाल को जान-बूझकर समूची समाज व्यवस्था से काटकर देखा गया। इसलिए आज से कई दशक पूर्व गाांधी जी का यह स्पष्ट मत था कि शिक्षा के मसले को एकांगी दृष्टिकोण से नहीं दखा जा सकता, उसमें राजनीतिक चेतना के तत्व अवश्य होने चाहिए।

एकीकृत रूप में क्रियांन्वित करने की आवश्यकता है, जिससे इनका क्षेत्र व्यापक बन सके तथा अल्पसंख्यक शिक्षा कार्यक्रम अधिक प्रभावी एंव स्पष्ट रूप से लागू हो सके। दसवीं पंचवर्षीय योजना में इन दोनों योजनाओं को मिलाकर गहन क्षेत्रीय एंव मदरसा आधुनिकीकरण कार्यक्रम बना दिया गया।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था आयोग 2004 का गठन संसद के एक अधिनियम द्वारा किया गया और जिसके तहत अल्पसंख्यक संस्थाएं अनुसूचित विद्यालय से स्वयं को सबंद्ध कर सकती हैं। वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, असम विश्वविद्यालय, नागालैंड विश्वविद्यालय एंव मिजोरम विश्वविधालय इस सूची में आते हैं।

11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान माध्यमिक शिक्षा

11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान माध्यमिक शिक्षा के लिए नई पहल की जा रही हैं जिनमें स्कूलों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी भी शामिल है। राज्य सरकार तथा निजी भागीदारी के साथ स्कूलों में एक संशोधित सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी योजना को लागू किया जाएगा। यह योजना एक लाख स्कूलों से भी ज्यादा सरकारी, स्थानीय निकायों तथा सरकारी सहायता प्राप्त माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में ब्रॉडबैण्ड संपर्कता के साथ सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी साक्षरता एवं कम्प्यूटरीकृत शिक्षा मुहैया करायेगी। प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर भी कम्प्यूटरीकृत शिक्षा आरंभ करने के भी प्रयास किये जा रहे हैं।[16]

11वीं योजना में उच्चतर शिक्षा के लिए कुछ प्राथमिकताएं है जो इस प्रकार है : सुविधा का विस्तार, (जैसे संस्थागत बुनियादी ढांचा), समानता (जैसे पिछड़े समूहों की भागीदारी को सुनिश्चित करने और क्षेत्रीय असमानता को दूर करने), गुणवत्ता में सुधार और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का बेहतर उपयोग करना आदि ताकि इन लक्ष्यों की प्राप्ति को बढ़ावा दिया जाए। 11वीं योजना के अंत तक 18-24 वर्ष के आयु वर्ग के लिए सकल नामांकन अनुपात को बढ़कर कम से कम 15 प्रतिशत करना है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए योजना में लगभग 85,000 करोड़ रुपये का प्रावधान है जो 10वीं योजना से 9 गुणा अधिक है। इस अभियान के तहत संपर्कता के जरिए उच्च गुणवत्ता की ई-सामग्री को उपलब्ध कराने के अलावा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के जरिए राष्ट्रीय शिक्षा अभियान आरंभ

अद्भुत छलांग लगाई है। इस बात की पुष्टि वर्ष 2001 की जनगणना से भी होती है। वर्ष 1951 में साक्षरता दर 18.33% थी जो वर्ष 2001 में बढ़कर 64.84% हो गई है। यह बढ़ोत्तरी इस सच्चाई के बावजूद है कि पिछले छह दशकों के दौरान जनसंख्या में 2% प्रतिवर्ष की दर से तीव्र वृद्धि हुई है।[18]

वर्ष 2011 की जनगणना के प्रोविजनल आंकड़ों के अनुसार देश की साक्षरता दर में कुल मिलाकर 38.82% की वृद्धि हुई है और यह 74.04% पर जा पहुंची है जो अब तक की सबसे तेज वृद्धि है। स्वतंत्रता के बाद यह सबसे उच्च दर है। 2001 के साक्षरता दर 64.83% के मुकाबले यह 9.21% की वृद्धि है। इसमें महिलाओं की साक्षरता वृद्धि 49.10% और पुरुषों की साक्षरता में वृद्धि 31.98% रही। साक्षरों की कुल संख्या देश में सात वर्ष से ऊपर की आयु की कुल आबादी का 74% है इस आबादी के 26% के बराबर लोग निरक्षर हैं।[19]

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार, शहरी इलाकों में 7 से ज्यादा आयु वाले बच्चों में साक्षरता दर 79.92% और ग्रामीण इलाकों में 58.74% थी। देश में शहरी और ग्रामीण साक्षरता दरों में 21.18% का अंतर था। साक्षरता पर यूनेस्को की वैश्विक निगरानी रिपोर्ट 2010 के अनुसार 15 साल और उससे ज्यादा के आयुवर्ग में 66% साक्षरता दर के साथ अपने पड़ोसी देशों के बीच भारत दूसरे स्थान पर है। श्रीलंका 91% साक्षरता दर के साथ प्रथम स्थान पर है।

साक्षरता की दृष्टि से भारत निरंतर प्रगति कर रहा है और आंकड़े संतोषजनक तस्वीर पेश करते हैं। 2001 की जनगणना में महिला साक्षरता दर में 14.38 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई थी और वह 53.67 प्रतिशत के स्तर पर पंहुच गई थी। देश में स्त्री-पुरुष के बीच जो साक्षरता का अंतर वर्ष 1951 में 24.84 प्रतिशत था वह घटकर वर्ष 2001 में 21.59 प्रतिशत रह गया है। मिजोरम में यह अंतर 3.79 प्रतिशत, केरल में 6.52 प्रतिशत और मेघालय में 5.82 प्रतिशत है। सभी राज्यों तथा केंद्र शासित क्षेत्रों ने बिना किसी अपवाद के साक्षरता दर में वृद्धि का प्रदर्शन किया है। 2011 के प्रारंभिक जनगणना आंकड़ों से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। पर यह भी सच है कि पिछले दशकों के दौरान साक्षरता में बढ़ोत्तरी के बावजूद निरक्षरता में कुल मिलाकर वृद्धि ही होती रही थी। लेकिन पहली बार निरक्षरों की संख्या में 2 करोड़ 47 लाख 70 हजार की कमी आई है। वर्ष 2001 में 20 करोड़ 14 लाख लोगों को साक्षर बनाया गया और अब यह संख्या कुल मिलाकर 56 करोड़ 8 लाख 8 हजार हो गई है।[20]

2. भारत में प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता एवं सर्वशिक्षा अभियान

पिछले कुछ वर्षों से देश की नीति-निर्माता तथा गैर-नीति-निर्माता क्षेत्रों मे जिन मुद्दों पर तीखी बहस चल रही है उनमें 'राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम' तथा 'समन्वित ग्रामीण विकास योजना' वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में विशेष महत्वपूर्ण हैं। दोनों कार्यक्रमों का रिश्ता देश की लगभग 80 प्रतिशत जिंदगियों की 'बेहतरी' से जुड़ा है। दोनों में यही 'बुनियादी' अंतर-संबंधता' है। एक की कार्यधर्मिता दूसरे के परिप्रेक्ष्य को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती। अतः दोनों की संयुक्त कार्यध र्मिता वर्तमान सत्ता प्रतिष्ठान और उसकी नींव को, जो कि 'यथास्थितिवादी उत्पादन संबंधों' पर टिकी हुई है, अपरिहार्य रूप से प्रभावित करेगी।

हालांकि, ये दोनों ही कार्यक्रम भारत की जनता के लिए पुराने है, सन् 1967 के बाद के राजनीतिक और प्रशासनिक नीति निर्माताओं द्वारा विभिन्न ढंग (भूदान, ग्रामदान, सामुदायिक विकास योजना, सहकारिता आंदोलन, हरित -क्रांति, बंधक-श्रमिक प्रथा उन्मूलन, कृषक-श्रमिक साक्षरता अभियान, बुनियादी शिक्षा आदि) से इन कार्यक्रमों की धुनाई की जा चुकी है, परंतु जैसे नतीजे सामने आए, कुछ बात बनी नहीं। सब बेअसर रहा। अतः आजादी के बाद के राजनीतिक नेतृत्व-वर्ग ने इन कार्यक्रमों में से 'कुछ-बात-बने' जैसी एक नई आजमाइश शुरू की। जिसमें प्रौढ़ शिक्षा, साक्षरता एवं सर्वशिक्षा जैसे अभियानों की शृंखला शामिल है।[17]

भारत में प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़ शिक्षा का आधारभूत कार्यक्षेत्र ग्रामीण भारत है, उसे ग्रामीण विकास का वाहक स्वीकार किया गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 2 अक्टूबर 1978 को राष्ट्रीय स्तर पर प्रौढ़ शिक्षा अभियान शुरू किया गया, जिसके अंतर्गत 1984 तक लगभग ढाई अरब रु. की लागत से 10 करोड़ व्यक्यिों के लिए 30 हजार प्रौढ़ शिक्षा केंद्र खोलने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

इस संदर्भ में जब हम साक्षरता के भारतीय आंकड़ों पर दृष्टिपात करते हें, तो पाते हैं स्वतंत्रता के बाद से भारत ने साक्षरता के क्षेत्र में निश्चित रूप से

महिला साक्षरता

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में 1901 में भारत में साक्षरता दर मात्र 5.35% थी, जो आजादी के समय बढ़कर 18.33% हो गई और आज यह काफी बढ़कर 74. 04% तक पहुँच गई है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत ने वर्ष 1991 के बाद साक्षरता के क्षेत्र में काफी प्रगति की है।[23] वर्ष 2011 की जनगणना के प्रोविजनल आंकड़ों के अनुसार देश की साक्षरता दर 74.04% है जबकि वर्ष 2001 में यह आंकड़ा 64.84% और 1991 में मात्र 52.21% ही था। इसी तरह महिलाओं की साक्षरता दर भी बढ़ी है। वर्ष 1991 में यह 39.3% और वर्ष 2001 में 53.70% थी जो 2011 में बढ़ कर 49.10% प्रतिशत हो गई है।[24]

2001 की जनगणना के मुताबिक सात वर्ष से अधिक की आयु वर्ग की 85 करोड़ 47 लाख 90 हजार जनसंख्या में से 56 करोड़ 6 लाख 8 हजार लोग साक्षर हैं। इनमें महिलाओं की संख्या 22 करोड़ 41 लाख 5 हजार है।[25] पुरुषों की कुल आबादी में से तीन चौथाई पुरुष साक्षर हैं और महिलाओं की कुल आबादी में आधे से भी अधिक महिलाएं साक्षर हैं। परंतु चिन्ता की बात यह है कि महिला और पुरुष साक्षरता दर में काफी अंतर है और ग्रामीण इलाकों में तो यह अंतर और भी ज्यादा है। अगर किसी महिला को साक्षर बनाते हैं, तो इससे न केवल वह आत्मनिर्भर होती है, बल्कि समाज पर भी इसका कई मायनों में बहुत फायदेमंद प्रभाव पड़ता है। यह देखा गया है कि जहाँ महिलाएँ साक्षर हैं, वहाँ शिशु मृत्यु दर कम है और जीवन आयु भी अधिक है।

राष्ट्रीय साक्षरता अभियान

राष्ट्रीय साक्षरता अभियान को 5 मई, 1988 में तकनीकी अभियान के रूप में 15-35 वर्ष की आयु वर्ग के लोगों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करने के लिए आरंभ किया गया था। इस आयु वर्ग पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया क्योंकि यह वर्ग इस समय अपने जीवन के उत्पादन एवं प्रजनन के दौर से गुजर रहा है। राष्ट्रीय साक्षरता नीति 1986 को वर्ष 1992 में संशोधित किया गया था और राष्ट्रीय साक्षरता अभियान को देश से निरक्षरता समाप्त करने के तीन हथियारों में से एक हथियार के रूप में मान्यता दी गई। अन्य दो हथियार प्राथमिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण तथा अनौपचारिक शिक्षा है। इस अभियान का उद्देश्य 15-35 वर्ष

साक्षर भारत

साक्षर भारत, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का नया घटक है जिसे सितम्बर 2009 में शुरू किया गया। इस मिशन को तीन करोड़ प्रौढ़ों विशेष तौर पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यकों और अन्य कमजोर वर्गों को लक्ष्य करते हुए 167 जिलों में शुरू किया गया। इसका उद्देश्य साक्षरता, बुनियादी शिक्षा, कौशल विकास और प्रौढ़ों के लिए एवं विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में, साक्षर भारत का लक्ष्य 5,257 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत पर सात करोड़ निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर बनाना है। इसे 11वीं योजना के आखिर तक 80 प्रतिशत साक्षरता हासिल करने के लक्ष्य के साथ प्राथमिक तौर पर लैंगिक भेद मिटाने के लिए लागू किया गया है। प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम के अधीन अब तक देश भर के कुल 597 जिलों को शामिल किया जा चुका है।[21]

निरक्षरता के संदर्भ में देखें तो आठ राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार ,मध्य प्रदेश, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और महाराष्ट्र में से प्रत्येक राज्य में डेढ़ करोड़ से भी ज्यादा निरक्षर आबादी रहती है जो देश की कुल निरक्षर आबादी का 69.70 प्रतिशत है। चार राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार-झारखंड, मध्य प्रदेश और राजस्थान में ही लगभग 42.76 प्रतिशत लोग निरक्षर है तथा ये चारों ही राज्य हिन्दी भाषी क्षेत्र में पड़ते हैं। इन सभी राज्यों में निरक्षर आबादी इस प्रकार है -

उत्तर प्रदेश में 5 करोड़ 88 लाख 50 हजार,
बिहार-झारखंड में 3 करोड़ 50 लाख 8 हजार,
मध्य प्रदेश में 1 करोड़ 79 लाख 7 हजार, और
राजस्थान में 1 करोड़ 81 लाख 5 हजार।

वर्ष 1991 में बिहार-झारखंड में निरक्षर आबादी 3 करोड़ 19 लाख 8 हजार थी जो वर्ष 2001 में बढ़कर 3 करोड़ 50 लाख 8 हजार हो गई है। वहीं, साक्षरता संबंधी आंकड़ों के अनुसार झारखंड में 1 करोड़ दो लाख एक हजार और छत्तीसगढ़ में 61 लाख लोग निरक्षर हैं। इसका मतलब यह हुआ कि इन छह हिन्दी भाषी राज्यों में 46.12 प्रतिशत जनता निरक्षर है। अन्य राज्यों में, जो गैर-हिन्दी भाषी प्रदेश हैं, इनमें उड़ीसा में 1 करोड़ 16 लाख 1 हजार, गुजरात में 1 करोड़ 33 लाख 1 हजार और तमिलनाडु में 1 करोड़ 46 लाख 5 हजार आबादी साक्षरता से वंचित है।[22]

संपूर्ण साक्षरता अभियान

देश से निरक्षरता को समाप्त करने के लिए संपूर्ण साक्षरता अभियान राष्ट्रीय साक्षरता अभियान की एक प्रमुख रणनीति है। इस कार्यक्रम में कुछ सकारात्मक गुण भी है जैसे, क्षेत्र विशेष पर आधारित, समयबद्धता, सहभागिता, लागत में सस्ता और परिणाम देने वाला। यह अभियान पूर्व निर्धारित साक्षरता को प्राप्त करने पर जोर देता हैं। इस अभियान को सभी के लिए नामांकन तथा विद्यालय में उपस्थिति, प्रतिरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और महिला सशक्तीकरण आदि जैसी अन्य गतिविधियों से जोड़ा गया है। संपूर्ण साक्षरतां अभियान की अवधि 12 से 18 महीने मानी गई है जिसमें से आधी अवधि तैयारी के लिए और बाकी की आधी वास्तविक अध्यापन एवं पढ़ाई के लिए है। जो क्षेत्र अत्यंत दुर्गम है वहां पर उचित रूप से इस अवधि का विस्तार किया जा सकता है। इस अभियान की पूरी अवधि के दौरान दो कार्यक्रमों पर्यावरण निर्माण तथा निगरानी के साथ-साथ आतंरिक मूल्यांकन को जारी रखा जाएगा। पर्यावरण निर्माण कार्यक्रम की आरंभिक गतिविधियों को प्रत्येक घर के सर्वेक्षण के आधार पर चलाया जाएगा ताकि पढ़ने वालों की क्षमताओं की पहचान की जा सके। वयस्क शिक्षा के लिए राज्य संसाधन केंद्रों के जरिए तीन चरणों में उचित सर्वश्रेष्ठों का विकास किया जाएगा। इसमें सुधरी हुई गति एवं अध्ययन के तत्वों की नई तकनीकों की सहायता ली जाएगी। संपूर्ण साक्षरता अभियान की तीन चरण वाली प्रबंधन संरचना में जिलों से लेकर ग्रामीण स्तर तक की लोकप्रिय समितियां हैं। इनमें जिला साक्षरता समितियां, जिनको उप-समितियों के द्वारा समर्थन दिया जा रहा है, जिला एवं ब्लॉक स्तरीय प्रशासन के अधिकारी शामिल है।साक्षरता अभियानों को जिला साक्षरता समितियों के द्वारा लागू किया जा रहा है। इनकी अध्यक्षता सामान्यतः जिला कलेक्टरों के द्वारा की जा रही है। सामान्य जिलों में केंद्र तथा राज्य सरकार के अधिकारियों का अनुपात 2 : 1 है और जनजातीय क्षेत्रों में यह अनुपात 4 : 1 है। इस कार्यक्रम के तहत अध्यापन पर 90-180 रुपये का खर्चा आता है।[27]

साक्षरता उपरांत कार्यक्रम

संपूर्ण साक्षरता अभियान के समापन पर जिला साक्षरता समितियों के द्वारा साक्षरता उपरांत कार्यक्रमों को एक साल के लिए लागू किया जा रहा है। इस

की आयु वर्ग के आठ करोड़ निरक्षर लोगों को साक्षर बनाना था। वर्ष 1991 तक 3 करोड़ तथा वर्ष 2001 तक 5 करोड़ लोगों को साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया था। हालांकि वर्ष 2001 तक अभियान के द्वारा 75 प्रतिशत लोगों का साक्षर बनाया गया है और 2011 के प्रोविजनल जनगणना आंकड़ों से भी इसमें बढ़ोतरी के प्रमाण मिलते हैं। अभियान में 9-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को भी शामिल किया गया है। ये उस क्षेत्र में आते है जहां पर अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम नहीं चलाये जाते तथा इसके द्वारा विद्यालय न जाने वाले छात्रों को भी लाभ पंहुचाना है। इन कार्यक्रमों का मुख्य जोर महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों में साक्षरता को बढ़ावा देना है। राष्ट्रीय साक्षरता अभियान का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सतत शिक्षा को संपूर्ण साक्षरता अभियान और उसके बाद साक्षरता उपरांत कार्यक्रमों के जरिये जारी रखा जाए, जो लंबे समय तक शिक्षा मुहैया कराये तथा शिक्षित समाज के निर्माण में अपनी जिम्मेदारी निभाये।[26]

कार्यात्मक शिक्षा

वयस्क साक्षरता कार्यक्रम, साक्षरता को पढ़ने, लिखने और संख्यात्मक कौशल को प्राप्त करने के रूप में परिभाषित करता है। हर व्यक्ति में कुछ न कुछ सीखने की क्षमता रहती है। कार्यात्मक शिक्षा, साक्षरता तथा संख्यात्मक ज्ञान की आत्मविश्वास प्राप्ति की वह क्षमता है जिससे वह अपने पतन के कारणों को जान पाता है और संगठन तथा विकास की प्रक्रिया में सहभागिता, आर्थिक दशा सुधारने के लिए कौशल, राष्ट्रीय एकता के तत्वों को आत्मसात् करने, पर्यावरण संरक्षण, महिला समानता इत्यादि के जरिए अपनी दशा में सुधार करने के लिए आगे बढ़ता है। कार्यात्मक शिक्षा प्राप्त करने के परिणामस्वरूप सशक्तीकरण, जीवन में निश्चित सुधार और सहायता इस बात को सुनिश्चित करती है कि इससे भारत की अधिकतर जनता सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में सहभागी बन सकती हैं। राष्ट्रीय साक्षरता अभियान ने 12 करोड़ 46 लाख 4 हजार लोगों को साक्षर बनाने में सफलता प्राप्त की है। इनमें से 60% महिलाएँ हैं। यह बड़ी सफलता है कि इन साक्षर लोगों में से 23% अनुसूचित जाति के तथा 12% अनुसूचित जनजाति से हैं। साक्षरता कार्यक्रमों के तहत 597 जिलों को शामिल किया गया है! तथा 95 जिलों को संपूर्ण साक्षरता कार्यक्रमों के तहत शामिल किया गया है और 174 जिलों को साक्षरता उपरांत कार्यक्रम में तथा 328 जिलों को सतत शिक्षा कार्यक्रम में शामिल किया गया है।

की भागीदारी को सुनिश्चित करना है। गैर सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता मुहैया कराने के दृष्टिकोण तथा प्रक्रिया राष्ट्रीय साक्षरता अभियान रणनीति के उद्देश्यों तथा लक्षणों पर आधारित हैं।

राज्य संसाधन केंद्र

साक्षरता तथा वयस्क शिक्षा के लिए अकादमी सहायता उपलब्ध कराने के लिए देशभर में राज्य संसाधन केंद्रों की स्थापना की गई है। वर्ष 1988 में जब से राष्ट्रीय साक्षरता अभियान को लागू किया गया है तब से 26 राज्य संसाधन केंद्रों को स्थापित किया गया है। इनमें से अधिकतर राज्य संसाधन केंद्रों को स्वयंसेवी एंजंसियों के द्वारा और कुछ को विश्वविद्यालयों के जरिए चलाया जा रहा है। प्रशासनिक कार्यों के लिए राज्य संसाधन केंद्रों को वर्गों 'ए' तथा 'बी' में बांटा गया है। 'ए' वर्ग में राज्य संसाधन केंद्रों को अधिकतम 60 लाख रु. प्रतिवर्ष का अनुदान तथा 'बी' वर्ग में अधिकतम 40 लाख रु. प्रतिवर्ष का अनुदान दिया जाता है। राज्य संसाधन केंद्रों को वर्ष भर के दौरान उनके कार्यभार तथा कार्यशील वर्षों की संख्या के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। बड़े राज्यों जैसे, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में साक्षरता तथा वयस्क शिक्षा के लिए सुविधा प्रदान करने के वास्ते एक से अधिक राज्य संसाधन केंद्रों की स्थापना की गई है। धीरे-धीरे संपूर्ण साक्षरता, उपरांत साक्षरता एवं सतत शिक्षा कार्यक्रम के विस्तार के साथ-साथ फील्ड कार्यक्रमों के लिए अच्छी तथा पर्याप्त तकनीकी संसाधन सहायता उपलब्ध कराने की जरूरत देखते हुए नये संसाधन केंद्र खोले जा रहे हैं। ये नये संसाधन केंद्र गैर सरकारी संगठनों के अधीन हैं। ये सभी राज्य संसाधन केंद्र अपने नियमों, शर्तों तथा संविधान के साथ समिति पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत संस्थाएं रहेंगी।

जन शिक्षण संस्थान

जन शिक्षण संस्थान योजना जिससे पहले श्रमिक विद्यापीठ के नाम से जाना जाता था, को शुरू में बहुपक्षीय वयस्क शिक्षा कार्यक्रम के तौर पर आरंभ किया गया था। इसका उद्देश्य श्रमिकों तथा उनके परिवार के सदस्यों की कुशलता तथा जीवन स्तर में सुधार करना है। इस कार्यक्रम को शहरी एवं औद्योगिक क्षेत्रों में रहने वाले तथा जो लोग ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में चले गये हैं, उन युवा

कार्यक्रम के बड़े उद्देश्यों में से एक उद्देश्य साक्षर लोगों को यह सिखाना है कि वे अपनी साक्षरता का प्रयोग समस्याओं को हल करने के लिए कैसे एक उपकरण के रूप में कर सकते हैं ताकि उनकी पढ़ाई जीवन एवं कार्य के लिए उपयोगी बन सके। संपूर्ण साक्षरता अभियान के दौरान कम समय के कारण यह संभव नही है कि कार्यक्रम के तत्वों कार्यात्मकता एवं जागरूकता के लिए एक ही लक्ष्य पर स्थिरता रखी जाए। इसलिए संपूर्ण साक्षरता अभियान के चरणों में इन उद्देश्यों को केंद्रीय स्थान दिया गया। इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि आधारभूत साक्षरता चरण तथा साक्षरता उपरांत कार्यक्रमों के आरंभ के बीच समय नष्ट न हो, इसलिए संपूर्ण साक्षरता अभियान ने योजना बनाने पर जोर दिया तथा समय पर साक्षरता उपरांत कार्यक्रमों को आरंभ किया। अगर ऐसा न होता तो नये साक्षरों में खिन्नता एवं निराशा व्याप्त हो जाती। उपरांत साक्षरता कार्यक्रम का प्रथम चरण में मुख्यतः उद्देश्य निर्देशित अध्ययन के जरिए साक्षरता कौशल का उपाय, प्रतिधारण एवं सुदृढ़ीकरण था। दूसरे चरण में विभिन्न प्रकार की अनुपूरक अध्ययन सामग्री तथा पुस्तकालय की सुविधा मुहैया कराना था ताकि ये लोग स्वयं ही अपनी पढ़ाई को जारी रख सके।

गैर-सरकारी संगठनों की सहायता के लिए योजना

वयस्क शिक्षा के क्षेत्र में स्वयंसेवी संगठनों तथा एजेंसियों को सहायता पाँचवी पंचवर्षीय योजना से आरंभ की गई थी जो बाद की योजनाओं में भी जारी रही। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में प्रावधान किया गया है, कि गैर सरकारी एवं स्वयंसेवी संगठनों सहित सामाजिक कार्यकर्ता समूहों को प्रोत्साहित किया जाएगा तथा उनकी वित्तीय सहायता की जाएगी ताकि वे ठीक प्रकार से अपना प्रबंधन कर सकें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के कार्यान्वयन के लिए कार्यवाही कार्यक्रम आरंभ किया गया जो सरकार तथा गैर सरकारी संगठनों के बीच वास्तविक भागीदारी पर बल देता है। साथ ही यह भी प्रावधान करता है कि सरकार उनके वृहत कार्य क्षेत्र के लिए उन्हें आर्थिक सुविधाएं मुहैया करा कर सकारात्मक कदम उठाएगी। वयस्क साक्षरता कार्यक्रम के साथ गैर सरकारी संगठनों के विस्तारित होते सहयोग को देखते हुए इस योजना का नाम बदल कर 'गैर सरकारी संगठनों या संस्थानों के लिए सहायता योजना, वयस्क के लिए शिक्षा राज्य संसाधन केंद्र एवं कौशल विकास' रख दिया है। इस योजना का उद्देश्य राष्ट्रीय साक्षरता अभियान में गैर सरकारी संगठनों

वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराता है।

सरकार के स्तर पर इन सभी गंभीर प्रयासों के साथ-साथ 11वीं पंचवर्षीय योजना में 80 प्रतिशत साक्षरता दर, स्त्री-पुरुष साक्षरता अंतर को 10 प्रतिशत तक कम करने तथा क्षेत्रीय एवं सामाजिक असमानता को दूर करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पहले ही ऊँची छलांग लगा दी है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के दो प्रमुख कार्यकर्मों सर्वशिक्षा अभियान तथा मध्याह्न भोजन योजना के कारण क्रमशः स्कूलों में छात्रों की उपस्थिति बढ़ी है साथ ही साथ उनके पोषण स्तर में भी सुधार हुआ है। इन कार्यक्रमों को लागू करने के बाद प्राथमिक स्तर पर छात्रों के द्वारा शिक्षा पूरी करने के कारण माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए मांग में भी वृद्धि हुई है। समाज के कमजोर वर्गों, शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों, बालिकाओं, शिक्षकों, ग्रामीण बच्चों तथा अन्य सीमान्त वर्गों जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। न केवल सभी के लिए नामांकन बल्कि सभी के लिए स्थायी एवं संतोषजनक शिक्षा प्रदान करने को भी प्राथमिकता दी जा रही है।

सर्व साक्षरता अभियान (एसएसए)

अभी तक का विशालतम शैक्षिक कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) प्रारंभिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लक्ष्य को पूरा करने के लिए वर्ष 2000 में शुरू किया गया था। यह कार्यक्रम केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से कार्यान्वित किया जा रहा है और इसका उद्देश्य उत्तम शिक्षा उपलब्ध कराने पर विशिष्ट बल देते हुए सामुदायिक स्वामित्व के दृष्टिकोण के माध्यम से स्कूल प्रणाली के निष्पादन में सुधार लाना है। यह कार्यक्रम प्रारंभिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लक्ष्य की पूर्ति सुनिश्चित करने तथा 2015 तक लैंगिक और सामाजिक अंतरालों को पाटने के लिए एक समयबृद्ध कार्यक्रम है। एडसिल (एजूकेशनल कंसल्टेंट्स इंडिया लिमिटेड) इस लब्धप्रतिष्ठ कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रलय (एमएचआरडी), प्रारंभिक शिक्षा ब्यूरो को तकनीकी और संभारतंत्रीय सहायता प्रदान कर रहा है।

सर्व शिक्षा अभियान सरकार का राष्ट्रीय फ्लैगशिप कार्यक्रम है जिसके कार्यान्वयन के लिए विश्व बैंक क्षेत्रवार वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता है। विश्व बैंक ने पिछले तीन वर्षों में 2736 करोड़ रुपये की राशि का पुनर्भुगतान किया है।

एवं वयस्क लोगों के बड़ी संख्या में समूहों को व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार किया गया था। लाखों की संख्या में नये साक्षर लोगों के उभर कर सामने आने के लिए देशभर में चले संपूर्ण साक्षरता अभियान को धन्यवाद देना चाहिए। इसके कारण वर्षों के आर्थिक एवं सामाजिक ढांचे में अनेक परिवर्तन हुए है। इन बहुपक्षीय शिक्षण संस्थानों की भूमिकाओं तथा कार्यक्षेत्र में कई गुणा वृद्धि हुई है। बदलते हुए परिदृश्य में जन शिक्षण संस्थानों का ध्यान शहरी क्षेत्रों से हटकर अब पूरे देश पर केंद्रित हो गया है। अब ये संस्थान जिला स्तरीय संसाधन सहायता एजेंसियों के तरह कार्य कर रहे हैं, विशेष रूप से सतत शिक्षा योजना के अन्य लक्षित समूहों और नये साक्षर लोगों के लिए कौशल विकास कार्यक्रम एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण संगठनों के साथ। पहले जन शिक्षण संस्थान शहरी या उपशहरी औद्योगिक क्षेत्रों तक ही सीमित थे। परंतु अब यह ग्रामीण क्षेत्रों तक फैल गये हैं। जन शिक्षण संस्थानों के लाभार्थी कम से कम 75% नये साक्षर लोग होने चाहिए। 10वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 90 और जनशिक्षण संस्थानों को मंजूरी प्रदान की गई थी जिससे इनकी संख्या 198 हो गई। वर्ष 2007-08 के दौरान 23 और नये जन शिक्षण संस्थानों को मंजूरी प्रदान की गई और अब इनकी कुल संख्या 221 हो गई है। जन शिक्षण संस्थानों के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन प्रतिवर्ष राष्ट्रीय साक्षरता अभियान के पैनल में शामिल एजेंसियों के द्वारा किया जाता है। अब तक 116 जन शिक्षण संस्थानों का मूल्यांकन किया जा चुका है।

वयस्क शिक्षा निदेशालय

वयस्क शिक्षा निदेशालय, मानव संसाधन मंत्रलय के उच्चत्तर शिक्षा विभाग के तहत एक अधीनस्थ कार्यालय है जो देश में वयस्क शिक्षा एवं साक्षरता कार्यक्रमों के लिए राष्ट्रीय संसाधन केंद्र के रूप में कार्य कर रहा है। यह राष्ट्रीय साक्षरता अभियान का एक कार्यशील हाथ है जो निगरानी एवं अभियान के तहत आरंभ की गई विभिन्न योजनाओं के मूल्यांकन के लिए उत्तरदायी है। निदेशालय को अध्ययन करने वालो तथा नये साक्षर लोगों के अध्ययन सामग्री तैयार करने तथा राष्ट्रीय साक्षरता अभियान के उद्देश्यों के बारे में मीडिया को जानकारी देने का भी दायित्व सौंपा गया है। यह जन शिक्षण संस्थानों के कुशल संचालन के लिए व्यावसायिक, शैक्षिक एवं तकनीकी सहायता मुहैया कराता है। कुछ चुनिंदा जन शिक्षण संस्थानों को जनसंख्या एवं शिक्षा विकास कार्यों को लागू करने के लिए

प्रारंभिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लक्ष्य की पूर्ति करने के लिए भारत सरकार की प्रमुख पहलों में से एक है। इस स्कीम के अधीन मानीटरन, पर्यवेक्षण, मूल्यांकन, प्रभाव अध्ययनों, आयोजना, प्रलेखन, पोषण, बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा (आईईसी), मीडिया, सभी के लिए शिक्षा (ईएफए), वित्त और लेखा आदि में विशेषज्ञों की सलाह के आधार पर सभी स्तरों पर विभिन्न क्रियाकलापों पर निकट निगाह, मार्गदर्शन और एकीकरण किए जाने की जरूरत रहती है। नितांततः इस स्कीम को सहायता प्रदान करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तत्वावधान में एडसिल द्वारा राष्ट्रीय अनुसमर्थन समूह स्थापित किया गया ताकि इन महत्वपूर्ण कार्यों को कार्यान्वित किया जा सके।[28]

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009

यह अधिनियम पहली अप्रैल 2010 से लागू हुआ। इसे 6 से 14 साल तक की आयु वर्ग वाले सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए लागू किया गया है। इस अधिनियम के प्रावधानों में तीन साल से ज्यादा उम्र के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के लिए तैयार करने और बाल्यावस्था की शुरुआती देखभाल तथा सभी बच्चों के पूरे छह बरस का हो जाने पर उन्हें शिक्षा मुहैया कराने पर बल दिया गया है। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा बच्चों का अधिकार, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009, में यह प्रावधान है कि छह से चौदह वर्ष के प्रत्येक बच्चों को अपने पड़ोस के विद्यालय में प्रारंभिक शिक्षा समाप्त होने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। इसी के साथ समन्वित बाल विकास सेवा योजना (आईसीडीएसएस) के तहत 3 से 6 साल के आयुवर्ग वाले 3.5 करोड़ से ज्यादा बच्चों को आंगनवाड़ी केंद्रों में स्कूल-पूर्व शिक्षा उपलब्ध कराई जा रही है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के अनुसार कोई भी बच्चा किसी भी प्रकार का शुल्क या प्रभार या व्यय नहीं करेगा जिसके कारण प्रारंभिक शिक्षा को पूरी करने में बाधा पहुँचे। इस योजना के तहत आधारभूत संरचना के लिए कसौटी तथा मानदंड, प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए प्राथमिक शिक्षकों का संसाधन तथ शिक्षकों का अकादमी दायित्व। इसमें पढ़ाने सिखाने के प्रक्रम के नियम भी है - पढ़ाई गतिविधि पर आधारित हो तथा बच्चा उसका केन्द्र हो, स्वभाव संबंधी मूल्यों परआधारित हो तथा कक्षा के संचालन से बच्चों में डर,

11वीं योजना के दौरान पहुंच, गुणवत्ता, इक्विटी और योग्यता बढ़ाने के लिए वर्तमान उच्च शिक्षण संस्थानों को सशक्त बनाने के वास्ते कई योजनाएं लागू की गई हैं। सरकार द्वारा नियुक्त प्रमुख विशेषज्ञों के कार्यबल ने एक अति महत्वपूर्ण प्रोत्साहक एवं विनियामक प्राधिकरण के लिए एक विधेयक का मसौदा प्रसारित किया है। भारत के उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए उत्कृष्टता का मानदंड तय करने, शिक्षण और अनुसंधान में भागीदारी के लिए सरकार का 11वीं और 12वीं पंचवर्षीय योजना में नवीनता के लिए 14 विश्वविद्यालय खोलने का प्रस्ताव है।

राष्ट्रीय परियोजना कार्यान्यवन यूनिट

एजुकेशनल कंसल्टेंट्स इंडिया लिमिटेड (एडसिल) में राष्ट्रीय परियोजना कार्यान्वियन यूनिट (एनपीआईयू) 1990 में स्थापित किया गया था। इसे देश के भीतर तकनीशियन शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने तथा तकनीशियन परियोजना आदि के कार्यान्वियन के लिए तकनीकी सहायता प्रदान करने के प्रयोजन से बनाया गया है। इसके अलावा एडसिल को देश में तकनीकी शिक्षा के स्तर में सुधार लाने के लिए विश्व बैंक द्वारा 1550 करोड़ रुपये के वित्तपोषण सहित भारत सरकार के तकनीकी शिक्षा गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम (टीईक्यूआईपी) कार्यान्वित करने के लिए तकनीकी सहायता प्रदान करने का काम सौंपा गया है।

राष्ट्रीय सलाहकार परिषद

सरकार ने शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम के कार्यान्वियन की निगरानी के लिए 8 जुलाई 2010 को राष्ट्रीय सलाहकार परिषद (एनएसी) का गठन किया। आरटीई अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वियन के प्रमुख माध्यम सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) के लिए 2010-11 के वास्ते 15,000 करोड़ रुपये का केंद्रीय बजट आबंटित किया गया है। प्राथमिक शिक्षा के लिए 13वें वित्त आयोग ने 2010-11 से 2014-15 की अवधि के लिए 24,068 करोड़ रुपए की राशि दी है।

प्राथमिक शिक्षा को पोषणिक सहायता का राष्ट्रीय कार्यक्रम

प्राथमिक शिक्षा को पोषणिक सहायता का राष्ट्रीय कार्यक्रम एनपी-एनएसपीई, (जिसे आमतौर पर मध्याह्न भोजन योजना के रूप में जाना जाता है) देश के भीतर

3. भारत में बालिका शिक्षा : कार्यक्रम एवं उपलब्धियां

वैदिक काल में महिला शिक्षा की स्थिति कैसी थी, इस पर पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ता है, परंतु ईसा से 500 वर्ष पूर्व पाणिनि ने महिलाओं के द्वारा वेद अध्ययन की चर्चा की है। बौद्ध काल में जरूर स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी जिनमें रोमशा, लोपामुद्रा, घोषा, इंद्राणी, गार्गी आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। यद्यपि नारियों के लिए संघ के नियम कठोर थे, फिर भी ज्ञान प्राप्ति के लिए अनेक नारियाँ संघ की शरण जाती थीं। वैसे, यह माना जाता है पूर्व काल में महिलाओं को विशेषकर ललितकला, संगीत, नृत्य आदि की शिक्षा ही दी जाती थी। धार्मिक रूप से देखा जाए तो कुरान ने बिना किसी भेदभाव के स्त्री-पुरुष को ज्ञानप्राप्ति का समानाधिकारी माना है। ईसाई धर्म भी आध्यात्मिक स्तर पर स्त्री-पुरुष को समान देखता है।

भारतीय महिलाओं की स्थिति में मध्ययुगीन काल के दौरान और अधिक गिरावट आई, जब भारत के कुछ समुदायों में सती प्रथा, जौहर, बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह पर रोक, सामाजिक जिंदगी का एक हिस्सा बन गई थी। मुसलमानों के आगमन से भारतीय समाज में परदा प्रथा का अविर्भाव हुआ। भारत के कुछ हिस्सों में देवदासियां या मंदिर की महिलाओं को यौन शोषण का शिकार होना पड़ा था। बहुविवाह की प्रथा हिन्दू क्षत्रिय शासकों में व्यापक रूप से प्रचलित थी। कई मुस्लिम परिवारों में महिलाओं को जनाना क्षेत्रों तक ही सीमित रखा गया था।

19वीं सदी में अंग्रेजी शासन के दौरान राम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, आदि जैसे कई सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिये लड़ाइयाँ लड़ीं। इन्हीं संघर्षों के फलस्वरूप 1929 में सती प्रथा उन्मूलन कानून बना और 1956 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम सामने आया। कई महिला सुधारकों जैसे कि पंडिता रमाबाई ने भी महिला सशक्तीकरण के उद्देश्य को हासिल करने में मदद की।

1917 में महिलाओं के पहले प्रतिनिधिमंडल ने महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की माँग के लिये विदेश सचिव से मुलाकात की जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन हासिल था। 1927 में अखिल भारतीय महिला शिक्षा सम्मेलन का आयोजन पुणे में किया गया था। 1929 में मोहम्मद अली जिन्ना के प्रयासों से

भय तथा आकुलता न हो। इस योजना/अधिनियम के तहत इसके प्रबंधन का विकेन्द्रीकरण, और बच्चों की आवश्यकता के अनुरूप इसे सुग्राही बनाना, विशेषकर उन समूहों के लिए जिसे इसका लाभ न मिल रहा है के साथ-साथ वर्तमान प्रारंभिक शिक्षा के निष्पादन में सुधार लाना है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान

माध्यमिक शिक्षा को सार्वजनीकरण करने के उद्देश्य से मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा 'राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (आरएमएसए)' का गठन किया गया है, जिसे पहले से ही कई विकसित देश तथा कुछ विकासशील देश प्राप्त कर चुके है। इस योजना को पूर्ण करने का कार्य तकनीकी अनुसमर्थन समूह (टीएसजी), एडसिल को सौंपा गया है। इस योजना का उद्देश्य है कि 15-16 वर्ष के सभी युवाओं को अच्छी माध्यमिक शिक्षा आसानी से प्राप्त हो सके।

उद्देश्य : इस योजना का उद्देश्य निम्न हैं -

सभी माध्यमिक विद्यालय निर्धारित मानदंडों के अनुरूप माध्यमिक स्तर पर दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाएंगे।

लिंग, सामाजिक-आर्थिक और निर्योग्यता की सीमा को समाप्त करना।

माध्यमिक स्तर की शिक्षा को 2017 तक अर्थात 12वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक सार्वजनीकरण करना है।

2020 तक सार्वजनीकरण बरकरारी। [29]

एडसिल ने टीएसजी की स्थापना की है जो इस योजना के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संभारतंत्र तथा अन्य सहायक उपकरण मुहैया कराएगा।

गांधी जिन्होंने कुल मिलाकर पंद्रह वर्षों तक भारत के प्रधानमंत्री के रूप में सेवा की, दुनिया की सबसे लंबे समय तक सेवारत महिला प्रधानमंत्री हैं। इसी तरह प्रतिभा देवी पाटिल भारत की पहली महिला हैं जो राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर हैं।

भारत का संविधान सभी भारतीय महिलाओं को सामान अधिकार (अनुच्छेद 14), राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं करने (अनुच्छेद 15 (1)), अवसर की समानता (अनुच्छेद 16), समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 39 (घ)) की गारंटी देता है। इसके अलावा यह महिलाओं और बच्चों के पक्ष में राज्य द्वारा विशेष प्रावधान बनाए जाने की अनुमति देता है (अनुच्छेद 15(3)), महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग करने (अनुच्छेद 51(ए)(ई)) और साथ ही काम की उचित एवं मानवीय परिस्थितियाँ सुरक्षित करने और प्रसूति सहायता के लिए राज्य द्वारा प्रावधानों को तैयार करने की अनुमति देता है (अनुच्छेद 42)।

महिलाओं में बढ़ती जागरुकता और उनके संघर्षों के परिणामस्वरूप ही भारत सरकार ने 2001 को महिलाओं के सशक्तीकरण (स्वशक्ति) वर्ष के रूप में घोषित किया और इसी वर्ष महिलाओं के सशक्तीकरण की राष्ट्रीय नीति पारित की तथा पंचायती राज में दो तिहाई महिला आरक्षण के बाद, 9 मार्च 2010 (अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के दूसरे दिन) को राज्यसभा ने महिला आरक्षण बिल को पारित कर दिया जिसमें संसद और राज्य की विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण की व्यवस्था है।

कहा जा सकता है कि पिछले छह दशकों के दौरान समाज और महिलाओं की राजनीतिक चेतना उनके जुझारू आंदोलनों के कारण काफी उन्नत हुई है, जिससे महिला शिक्षा एवं साक्षरता के प्रति समाज एवं सरकार दोनों पर ही दबाव बढ़ा है।

20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भारत में इस बात पर ध्यान दिया गया कि नारीशिक्षा उनके सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी होनी चाहिए क्योंकि उस समय तक जहाँ तक लिखने पढ़ने का संबंध था, लड़कों और लड़कियों की शिक्षा में कोई अंतर न था। उच्च शिक्षा की दृष्टि से सन् 1916 महत्वपूर्ण है। इस समय दिल्ली में लेडी हार्डिंग कालेज की स्थापना हुई तथा डी. के. कर्वे ने भारतीय नारियों के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जिसमें सब से अधिक धन बंबई प्रांत के एक व्यापारी से मिलने के कारण उसकी माँ के नाम से विश्वविद्यालय का नाम श्रीमती नाथी बाई थैकरसी वीमेन्स यूनिवर्सिटी हुआ। इसी समय से मुसलमान नारियों ने भी उच्च शिक्षा में पदार्पण किया। नारी की प्राविधिक शिक्षा में कला, कृषि, वाणिज्य आदि का भी समावेश हुआ और नारी की उच्च शिक्षा में प्रगति हुई।

बाल विवाह निषेध अधिनियम को पारित किया गया जिसके अनुसार एक लड़की के लिये शादी की न्यूनतम उम्र चौदह वर्ष निर्धारित की गयी थी।[30]

भारत की आजादी के संघर्ष में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भिकाजी कामा, डॉ. एनी बेसेंट, प्रीतिलता वाडेकर, विजयलक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृत कौर, अरुना आसफ़ अली, सुचेता कृपलानी और कस्तूरबा गाँधी कुछ प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानियों में शामिल हैं। अन्य उल्लेखनीय नाम हैं मुथुलक्ष्मी रेड्डी, दुर्गाबाई देशमुख आदि। सुभाष चंद्र बोस की इंडियन नेशनल आर्मी की झाँसी की रानी रेजीमेंट कैप्टेन लक्ष्मी सहगल सहित पूरी तरह से महिलाओं की सेना थी। एक कवियित्री और स्वतंत्रा सेनानी सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनने वाली पहली भारतीय महिला और भारत के किसी राज्य की पहली महिला राज्यपाल थीं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बीसवीं सदी के दौरान कई पहल हुए। 1967 में संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा महिलाओं के प्रति भेदभाव समाप्त करने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किया गया। इस के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि महिलाओं को चाहे वे विवाहित हो या अविवाहित, पुरुषों के साथ आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सभी समान अधिकार प्रदत्त किये जाने के लिए समुचित व्यवस्था की जाएगी और किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा। महिलाओं के उत्थान के संदर्भ में सम्पूर्ण विश्व में महिला उत्थान व विकास के प्रति चेतना जगाने के लिए संयुक्त राष्ट्र की महासभा में 1975 को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित करने का निर्णय लिया। इसी वर्ष हुए प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिला कल्याण हेतु 1975 से 1984 दशक को महिला दशक घोषित किया जिसमें महिला शिक्षा, रोजगार, लिंग भेदभाव मिटाने, नीति निर्धारण में महिलाओं को सम्मिलित करने एवं समान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नागरिक अधिकार देने आदि की घोषणा की गई। 1978 में महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने के लिए समिति के गठन का प्रस्ताव किया गया एवं हिंसा को समाप्त करने के आशय से नवीन घोषणा जारी की गई। दिसम्बर 1993 को संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा के भीतर महिलाओं के प्रति हिंसा निष्कासन की घोषणा को स्वीकार किया गया एवं महिला हिंसा के रूपों को वर्गीकृत करते हुए उसके उन्मूलन का संकल्प लिया गया।[31]

इन्हीं राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए प्रयासों के चलते भारत में महिलाएँ अब सभी तरह की गतिविधियों जैसे कि शिक्षा, राजनीति, मीडिया, कला और संस्कृति, सेवा क्षेत्र, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि में हिस्सा ले रही हैं। इंदिरा

क्रियाशील साक्षरता प्रदान करने का मिशन है। महिला प्रौढ़ शिक्षा और युवतियों की शिक्षा के लिए भी देश में कई कार्यक्रम संचालित हैं। राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत 31 हजार आदर्श विद्यालय विकसित किए गए और दो लाख अध्यापकों को लैंगिक संवेदनशीलता में भी प्रशिक्षित किया गया। लेकिन इसके बावजूद सवाल यह है कि वे कौन से कारण हैं जो महिलाओं की कम साक्षरता के लिए जिम्मेदार हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि सामाजिक भेदभाव और आर्थिक शोषण इसमें प्रमुख भूमिका निभाते हैं।[34]

महिला समाख्या योजना

महिला समाख्या योजना ग्रामीण क्षेत्रों खासकर सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों की महिलाओं की शिक्षा तथा उनके सशक्तिकरण के लिए 1989 में शुरू की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के उद्देश्यों के अनुरूप लक्ष्य हासिल करने के लिए एक ठोस कार्यक्रम के रूप में इसकी शुरुआत हुई। समानता हासिल करने में महिलाओं को शिक्षित बनाने में एमएस योजना को पहचाना जाता है। महिला संघ गांव स्तर पर महिलाओं को मिलने, सवाल करने और अपने विचार रखने तथा अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करने के अलावा अपनी इच्छाओं को जाहिर करने का स्थान मुहैया कराते हैं।[35]

महिला संघों ने ग्रामीण महिलाओं के दृष्टिकोण में विभिन्न कार्यक्रमों और जागरुकता अभियानों के माध्यम से बदलाव ला दिया है जिसका प्रभाव अब घर, परिवार में, सामुदायिक तथा ब्लॉक और पंचायत स्तर पर देखा जा सकता है। कार्यक्रम में बच्चों खासकर लड़कियों की शिक्षा की आवश्यकता पर जागरुकता पैदा करने पर भी केंद्रित होता है। ताकि लड़कियों को भी बराबर का दर्जा और अवसर मिल सके। इसके परिणाम स्कूलों में लड़कियों के नामांकन में वृद्धि और स्कूल न छोड़ने के रूप में सामने आए हैं।

उपलब्धियां :

महिला समाख्या योजना वर्तमान में नौ राज्यों के 89 जिलों में 28,480 गांवों में चलाई जा रही है। ये नौ राज्य हैं : आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, झारखंड, कर्नाटक, केरल, गुजरात, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड। वित्त वर्ष 2007-08 से इस योजना को दो और राज्यों मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में बढ़ाया गया है।[36]

स्वतंत्रता एवं अन्य राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने से नारी सहशिक्षा की ओर अग्रसर हुई। सन् 1926 में एक अखिल भारतीय नारी सम्मेलन के द्वारा यह निर्णीत हुआ कि लड़कियों के लिए एक ऐसा विद्यालय खोला जाए जो पूर्ण रूप से भारतीय जीवन के आदर्शों के अनुकूल हो तथा उसका समस्त प्रबंध स्त्रियाँ स्वयं करें। अतः दिल्ली में ही लेडी इर्विन कालेज की स्थापना हुई जिसमें गृहविज्ञान तथा शिक्षिका प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दिया गया।

सन् 1946-47 में प्राइमरी कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालय तक की कक्षाओं में अध्ययन करनेवाली छात्राओं की कुल संख्या 41, 56, 742 हो गई।[32] इनमें प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करनेवाली छात्राएँ भी थीं। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् यद्यपि नारी शिक्षा में पहले की अपेक्षा बहुत प्रगति हुई तथापि अन्य पाश्चात्य देशों की समानता वह न कर सकीं। इस समय से नारीशिक्षा में संगीत एवं नृत्य की विशेष प्रगति हुई। सन् 1948-49 के विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने नारीशिक्षा के संबंध में मत प्रकट करते हुए कहा कि नारी विचार तथा कार्यक्षेत्र में समानता प्रदर्शित कर चुकी है, अब उसे नारी आदर्शों के अनुकूल पृथक रूप से शिक्षा पर विचार करना चाहिए। उच्च स्तर की शिक्षा में गृहविज्ञान, गृह अर्थ शास्त्र, नर्सिंग तथा ललित कलाओं का प्रशिक्षण अवश्यक है। इसके बाद आगे चलकर हाई स्कूल की कक्षाओं में गृहविज्ञान को अनिवार्य बना दिया गया तथा पृथक रूप से भी अनेक कला केंद्र लड़कियों की शिक्षा के लिए खोले गए।

स्वतंत्रता के 10 वर्ष पश्चात् छात्राओं की कुल संख्या 87,67,912 हो गई तथा नारी का प्रवेश शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में होने लगा। 19 मई सन् 1958 को नारीशिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए एक राष्ट्रीय समिति नियुक्त हुई जिसने इनकी समस्याओं पर बहुत गंभीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात् नारी के लिए उपयुक्त व्यवसायों की सूची सरकार के सम्मुख रखी है। यद्यपि इन सभी व्यवस्सायों में जाने योग्य वातावरण अभी नहीं बन सका है। उच्च शिक्षा पाने के पश्चात् स्त्रियाँ अध्यापन, चिकित्सा कार्य (डाक्टरी) अथवा कार्यालयों में ही अधिकतर काम करती हैं। यह स्थिति बताती है कि 21वीं सदी में भी स्त्री शिक्षा अपने वास्तविक लक्ष्य से कोसों दूर है और अभी भी इसे 'आदर्श हिंदू नारी' के दायरे में ही देखा जाता है। स्त्रियों की शिक्षा को लेकर सामंती और पितृप्रधान मानसिकता में बहुत बदलाव नहीं आया है।[33]

1988 में शुरू हुआ राष्ट्रीय साक्षरता मिशन बताता है कि कुल अशिक्षित आबादी में महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या है। यह मिशन वास्तव में महिलाओं को

एन.पी.ई.जी.एल. का फोकस -

(क) प्रारंभिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा की योजना का निर्माण प्रबंधन एवं मूल्यांकन तथा एक प्रभावकारी प्रबंधन ढाँचे को तैयार करने के राज्य एवं जिले स्तर की संस्थाओं को सशक्त करना।

(ख) शिक्षकों एवं प्रशासकों के लिए संबंधित संस्थाओं एवं महिला समूहों की सहायता से नवाचारी जेंडर संवेदनशील प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्माण एवं एक ऐसे वातावरण का निर्माण जहाँ लिंग-भेद मिटाने के लिए शिक्षा के महत्त्व के प्रति शिक्षा-क्षेत्र के सभी प्रयोग जीवन्त एवं संवेदनशील हो जाएँ।

(ग) खास तौर क्षेत्रीय भाषाओं एवं विकेन्द्रीकृत क्षेत्र-विशेष हस्तक्षेपों के मॉडल में लिंग-भेद प्रभावी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण को बढ़ाने हेतु शोध, प्रसार एवं सूचना विस्तार के लिए विभिन्न संस्थाओं में तारतम्य को प्रारंभ करना।

(घ) महिलाओं एंव बलिकाओं के आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए सारे शिक्षा के तंत्र को एक सकारात्मक रूप से हस्तक्षेप करनेवाली भूमिका के लिए तैयार करना, समाज, राजनीति एवं अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान को स्वीकार करते हुए महिलाओं के एक सकारात्मक रूप का निर्माण करना।

(ड़) इस बात को स्वीकार करते हुए कि शिक्षा का सार एवं तरीके लिंग भेद के प्रति संवेदनशील नहीं है, लिंग विभेद के प्रति रूढ़ियों को तोड़ना।

(च) प्रारंभिक शिक्षा में बालिकाओं की सहभागिता एवं प्रदर्शन के लिए आवश्यक सहायक सेवाओं को सुनिश्चित करने हुतु समेकित प्रयास करना।

(छ) बालिका-शिक्षा के लिए सामुदायिक सहायता का निर्माण करना एवं घर, समुदाय एवं विद्यालयों में बालिका-शिक्षा के लिए एक सहयोगी वातावरण तैयार करना, एवं

(ज) बलिकाएँ प्रारंभिक स्तर पर गुणतत्तापूर्ण शिक्षा पा सकें, इसे सुनिश्चित करना।

बालिकाओं की प्रारंभिक स्तर पर शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम [37]

वर्तमान भारत में बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए जो मुख्य योजना चलाई जा रही है, वह है - बालिकाओं की प्रारंभिक स्तर पर शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (National Programme for Education of Girls at Elementary Level)। इसकी शुरुआत जुलाई 2003 में सर्व शिक्षा अभियान के एक प्रभाग के रूप में की गई है। एन.पी.ई.जी.एल. सर्व शिक्षा अभियान के अलग एवं विशेष जेन्डर कम्पोनेन्ट योजना के रूप में कक्षा 1 से 8 तक की सुविधा वंचित (under privileged/disadvantaged) बालिकाओं की शिक्षा के लिए तैयार की गयी है। सरकार मानती है कि शैक्षिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों की बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापिकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जेन्डर कम्पोनेन्ट आवश्यक है।

यह योजना क्षैक्षिक रूप से पिछड़े प्रखंड जहाँ महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसर दर से कम है और लिंग भेद राष्ट्रीय औसत से ऊपर है लागू की गई है। साथ ही जम्मू एवं कश्मीर के 13 जिलों के वे सारे प्रखंड भी इस परिभाषा की सीमा में आते हैं तथा जिन्हें 1991 की जनगणना में अच्छादित नहीं किया गया था उन्हें भी अच्छादित किया जाएगा। जिलों के ऐसे प्रखंड जिनमें कम से कम 5% अनुसूचित जाति / जनजाति की जनसंख्या है तथा जहाँ महिला साक्षरता दर 10% से नीचे है, भी इस कार्यक्रम में आच्छादित किए जायेंगे। साथ ही इसे चलित शहरी झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्रों में भी लागू किया गया है।

एन.पी.ई.जी.एल. का लक्ष्य है - विद्यालय से बाहर की बालिकाएँ, वैसी बालिकाएँ जिन्होंने विद्यालय छोड़ दिया हो, अधिक उम्र की बालिकाएँ जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं की हो, काम-काजी बालिकाएँ, हाशिये के सामाजिक वर्ग की बालिकाएँ (अभिवंचित वर्ग की बालिकाएँ), कम उपस्थितिवाली बालिकाएँ (अनियमित), कम स्तर की उपलब्धिवाली बालिकाएँ।

एन.पी.ई.जी.ई.एल. के उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

(क) ऐसी सुविधाओं का निर्माण एवं प्रसार जिस बालिकाओं की पहुँच एवं विद्यालय में ठहराव में आसानी हो एवं जिसे शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं एवं बालिकाओं की अधिक से अधिक सहभागिता हो।

(ख) अनेक हस्तक्षेपों के द्वारा शिक्षा के गुणवत्ता में सुधार एवं उनके सशक्तीकरण के लिए बालिकाओं की शिक्षा के औचित्य एवं गुणवत्ता पर जोर।

उपलब्धियां :

एन.पी.ई.जी.ई.एल. प्रत्येक बस्ती में 'आदर्श बालिका अनुकूल विद्यालय' के विकास की व्यवस्था करता है जिसमें अधिक गहन सामुदायिक अभिप्रेरणा और बालिकाओं के स्कूलों में नामांकन का पर्यवेक्षण करना शामिल है। इसके तहत 35,252 आदर्श विद्यालय खोले गए हैं तथा 25,537 प्रारंभिक बाल्यावस्था (आईसीडीएस) केन्द्रों को सहायता दी गई है। भारत सरकार के शिक्षा विभाग की वार्षिक रिपोर्ट 2009-10 के अनुसार 423 जिलों के 3261 प्रखंडों में 39210 कलस्टर्स (इसमें से 1147 कलस्टर्स शहरी क्षेत्र में हैं)। 40336 मॉडल कलस्टर्स विद्यालय हैं 2,09,74,470 बालिकाएं नामांकित हुई जबकि इसके अंतर्गत विभिन्न कार्यक्रमों में लाभान्वित होने वाले बालिकाओं की संख्या 2,44,06,895 है।

एन.पी.ई.जी.ई.एल. की पहुंच

ब्लॉक्स	3261
कलस्टर्स	39210
मॉडल कलस्टर्स स्कूल	40322
ईसीसीई सपोर्ट	10104
अतिरिक्त क्लासरूम	26838
रेमेडियल टिचिंग	2418036
ब्रिज कोर्स	437645
शिक्षकों का जेंडर सेंसेटाइजेशन	2.14 लाख
यूनिफार्म एवं अन्य	1.43 करोड़ 33 लाख[38]

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (केजीबीवी) योजना

बालिका शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार की यह दूसरी महत्वपूर्ण योजना है जो विशेषकर आदिवासी, दलित, पिछड़े एवं अल्पसंख्यक समुदायों के बालिकाओं के लिए जुलाई 2004 में प्रारंभ की गई है। इसके तहत इन समुदायों की न्यूनतम 75% लड़कियों को स्थान का आरक्षण दिया जाता है और 25% लड़कियां गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की होती है।

भारत सरकार ने देश के दूर-दराज क्षेत्रों में रहने वाले अनुसूचित जाति

/जनजाति / पिछड़े वर्ग/अल्पसंख्यक समुदाय के बालिकाओं के लिए प्रारंभिक स्तर पर 750 आवासीय विद्यालय (ठहरने की सुविधा सहित) खोलने के लिए कस्तुरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की शुरुआत की है। यह नई योजना, प्रारंभिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग के अंतर्गत चल रही योजनाएँ जैसेः सर्व शिक्षा अभियान, प्रारंभिक स्तर पर बालिका शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा महिला समाख्या के साथ मिलकर कार्य करेंगी।

कस्तुरबा गांधी आवासीय बालिका विद्यालय राज्य के शैक्षिक रूप से पिछड़े वैसे प्रखंडों में शुरू की गई है जहां जनगणना 2001 के अनुसार ग्रामीण महिला साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से नीचे है तथा साक्षरता का लैंगिक अन्तर (जेन्डर गैप) राष्ट्रीय औसत से ऊपर है (राष्ट्रीय ग्रामीण महिला साक्षरता दर 46. 58% तथा राष्ट्रीय जेन्डर गैप 21.70% है)। यदि उस क्षेत्र में एकाधिक विद्यालय हो तो वैसी स्थिति में उस विद्यालय का चयन किया जाता है जिसकी अपनी पर्याप्त भूमि है तथा छात्रओं की संख्या दूसरे विद्यालय की तुलना में अधिक हो। वैसे क्षेत्र जहां अधिक संख्या में छोटे-छोटे बिखरे हुए निवास स्थल हैं जो विद्यालय के लिए उपयुक्त नहीं हो। जहां अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़े वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय की घनी आबादी है, महिला साक्षरता दर नीचे हो एवं/ अथवा विद्यालय से बाहर लड़कियों की संख्या सर्वाधिक है।

कस्तुरबा गांधी बालिका विद्यालय के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं -

कस्तुरबा गांधी बालिका विद्यालय का मुख्य उद्देश्य विषम परिस्थितियों में जीवन-यापन करने वाली अभिवंचित वर्ग की बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय के माध्यम से गुणवत्तायुक्त प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराना है।

माता-पिता/अभिभावकों को उत्प्रेरित करना जिससे बालिकाओं को कस्तुरबा गांधी आवासीय बालिका विद्यालय में भेजा जा सके।

मुख्य रूप से ऐसी बालिकाओं पर ध्यान देना जो विद्यालय से बाहर (अनामांकित/ छीजनग्रस्त) हैं तथा जिनकी उम्र 10 वर्ष से ऊपर है।

विशेषकर एक स्थान से दूसरे स्थान घूमनेवाली जाति या समुदायों की बालिकाओं पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना।

75% अनुसूचित जाति/जनजाति/अत्यन्त पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक समुदाय की बालिकाओं तथा 25% गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार

की बच्चियों को कस्तुरबा गांधी आवासीय बालिका विद्यालय में प्राथमिकता के आधार पर नामांकन कराना।

उपलब्धियां :

योजना के अंतर्गत 10वीं योजना में चरणबद्ध ढंग से 500-750 के बीच आवासीय विद्यालय, प्रति स्कूल 19.05 लाख रुपये के आवर्ती लागत और 26.25 लाख रुपये के अनावर्ती लागत मूल्य के अनुमानित लागत पर खोले जाने की व्यवस्था की गई। इसके अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि ऐसे आवासीय विद्यालय केवल उन पिछड़े प्रखंडों में खोले जाने थे जहाँ सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय और जनजातीय मामले के मंत्रालय के अंतर्गत बालिकाओं के प्रारंभिक शिक्षा के लिए कोई आवासीय विद्यालय न हों। इसका सुनिश्चय सर्व शिक्षा अभियान के जिला स्तरीय पदाधिकारी, अन्य विभाग/मंत्रालय के साथ समन्वय स्थापित कर कस्तुरबा गाँधी बालिका विद्यालय पहल के लिए वास्तविक जिला स्तरीय योजना तैयार करते समय करेंगे।

2006 तक 663 केजीवीएस खोले गए जिसमें से 210 अल्पसंख्यक प्रखंडों में और 274 दलित/आदिवासी प्रखंडों में अवस्थित हैं। इनमें 41000 बालिकाओं को प्रारंभिक स्तर पर आवासीय विद्यालयों में शिक्षा उपलब्ध कराई जा रही है।[39]

निष्कर्ष

आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार का श्रेय ब्रिटिश शासकों है, पर देश के गुलाम बनने से पहले से ही भारत के वैदिक एक आदिवासी समाजों में शिक्षा की अलग-अलग स्वतंत्र प्रणालियां प्रचलन में थीं। सही है कि ब्रिटिशों ने ही भारत में औद्योगिकरण की प्रक्रिया की शुरुआत की और उसे विकास के एक खास मुकाम तक ले गए। प्रशासनिक व्यवस्था और औद्योगिकरण के लिए शिक्षा में जिस प्रकार के बदलाव की जरूरत थी, उसी के अनुरूप उन्होंने शिक्षा प्रणाली बनाई। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक हद तक अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली पहले के सामंती मूल्यों पर आधारित शिक्षा पद्धति के मुकाबले प्रगतिशील और आधुनिक थी। परंतु अपने अंतर्वस्तु में औपनिवेशिक शिक्षा प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति से कहीं से भी भिन्न नहीं थी। दोनों का मूल उद्देश्य एक ही था - जनता को शासित बनाए रखने के लिए उसके तर्कपूर्ण विवेक और सांस्कृतिक भावजगत पर नियंत्रण करना। आम भारतीय जनता के ऐतिहासिक चेतना को कुंद करते हुए उसे उसकी ज्ञान परंपरा से पूरी तरह से अलगाव में डाल देना। ताकि वह शोषण और लूट पर अमानवीय राजनीतिक व्यवस्था का पक्षधर बना रहे, उसका एक हिस्सा शासक वर्गों का दलाल बन जाए और शोषित जनता के प्रतिरोध की सांस्कृतिक चेतना नष्ट हो जाए।

निरक्षरता के खिलाफ शैक्षिक अवसरों और समान के मामले में स्वतंत्रता सेनानियों की ईमानदार व असल चिंता यह थी कि गरीबी, निर्धनता व कमजोर तबकों पर होने वाले अत्याचार की प्रमुख वजह अशिक्षा है। इस संदर्भ में गांधी जी का शिक्षा चिंतन महत्वपूर्ण है, परंतु भारत के दलितों, आदिवासियों और वंचित समाजों के संदर्भ में गांधीजी की शैक्षिक अवधारणा से पूरी तरह से सहमत नहीं हुआ जा सकता। आधारभूत शिक्षा की उनकी अवधारणा का लक्ष्य शारीरिक, मानसिक व आध्यात्म का सर्वोत्तम विकास था। इस आध्यात्म की जड़ें भारत की उसी आर्य अथवा ब्राह्मणवादी संस्कृति एवं विचार में निहित हैं जिसमें मानवीय श्रम, सौंदर्य और वंचितों की मुक्ति की बजाय जाति, धर्म और नस्ल को श्रेष्ठ माना जाता है।

आजादी के बाद शिक्षा को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा सभी तक शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए समय-समय पर अनेक आयोगों का गठन किया गया। शिक्षा नीतियां बनाई गई। सन् 1976 से पूर्व शिक्षा पूर्ण रूप से राज्यों का उत्तरदायित्व था। संविधान द्वारा 1976 में किए गए जिस संशोधन से शिक्षा को

समवर्ती सूची में डाला गया, उस के दूरगामी परिणाम हुए। आधारभूत, वित्तीय एवं प्रशासनिक उपायों के द्वारा राज्यों एवं केन्द्र सरकार के बीच नई जिम्मेदारियों को बांटने की आवश्यकता महसूस की गई। जहां एक ओर शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों की भूमिका एवं उनके उत्तरदायित्व में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ, वहीं केन्द्र सरकार ने शिक्षा के राष्ट्रीय एवं एकीकृत स्वरूप को सुदृढ़ करने का गुरुतर भार भी स्वीकार किया। सबसे नई शिक्षा नीति 1986 में लागू की गई जिसे सन् 1992 में अद्यतन किया गया। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बुनियादी (प्राथमिक) शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार की जानकारी देने और अंतर अनुशासनिक अनुसंधान करने, राज्यों में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करने, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद को सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल हैं। इसके अलावा शिक्षा में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु एक विकेंद्रीकृत प्रबंधन ढांचे का भी सुझाव दिया गया है।

शिक्षा नीति को अद्यतन करने के पश्चात 16 दिसंबर 1993 को दिल्ली में 9 एशियाई देशों की शिखर वार्ता सम्पन्न हुई। दिल्ली घोषणापत्र जारी हुआ। लब्बोलुआब वही कि सन 2000 तक शिक्षा पर हम सकल घरेलू उत्पाद का 6% खर्च करेंगे हम जानते हुए कि 1990 के दशक में प्रारंभिक शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद का 1.69% से घटकर 1.47% आवंटन किया गया और वर्ष 1994 में साजिश हुई कि डब्ल्यू.टी.ओ. में शिक्षा को शामिल किया जाए और आज भी ये कुत्सित प्रयास जारी है। इसी दरम्यान एक करिश्मा और हुआ जिसमें हमारी शिक्षा नीति के नियंताओं की कलई खुलती है। 24 अप्रैल 2000 को मुकेश अम्बानी एवं कुमार मंगलम बिड़ला ने अपनी अम्बानी बिड़ला रिपोर्ट प्रस्तुत की। वर्ष 2015 की भावी शिक्षा पर : 'ए पॉलिसी फ्रेमवर्क फॉर रिफॉर्म्स इन एजुकेशन' शीर्षक से प्रस्तुत रिपोर्ट में कहा गया कि वर्ष 2015 तक देश की आबादी 1.25 करोड़ होगी। 6-24 वर्ष के युवा 45 करोड़, 5-19 वर्ष के युवा 34 करोड़ होंगे। कक्षा 1-12 तक शिक्षा अनिवार्य करनी होगी अब शेष 11 करोड़ में से केवल 20% यानी 2.2 करोड़ के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है कि उच्च

शिक्षा पर सरकारी निवेश 40% और निजी क्षेत्र 60% करेगा।

साक्षरता की दृष्टि से भारत निरंतर प्रगति कर रहा है और आंकड़े संतोषजनक तस्वीर पेश करते हैं। 2001 की जनगणना में महिला साक्षरता दर में 14.38% की वृद्धि देखी गई थी और वह 53.67% के स्तर पर पंहुच गई थी। देश में स्त्री-पुरुष के बीच जो साक्षरता का अंतर वर्ष 1951 में 24.84% था वह घटकर वर्ष 2001 में 21.59% रह गया है। लेकिन अभी भी एक बड़ी आबादी निरक्षर है और करोड़ों बच्चे स्कूल से बाहर हैं।

प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता अभियानों के बाद शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लक्ष्य को पूरा करने के लिए वर्ष 2000 में एक नया कार्यक्रम शुरू किया गया - सर्व शिक्षा अभियान। यह कार्यक्रम केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से कार्यान्वित किया जा रहा है और इसका उद्देश्य उत्तम शिक्षा उपलब्ध कराने पर विशिष्ट बल देते हुए सामुदायिक स्वामित्व के दृष्टिकोण के माध्यम से स्कूल प्रणाली के निष्पादन में सुधार लाना है। यह कार्यक्रम प्रारंभिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लक्ष्य की पूर्ति सुनिश्चित करने तथा 2015 तक लैंगिक और सामाजिक अंतरालों को पाटने के लिए एक समयबृद्ध कार्यक्रम है।

हमारे देश की कुल अशिक्षित आबादी में महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या है। महिलाओं को शिक्षा देने तथा बालिका शिक्षा की दिशा में कई कदम उठाए गए। महिला प्रौढ़ शिक्षा और युवतियों की शिक्षा के लिए भी देश में कई कार्यक्रम चलाये गए। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने महिला साक्षरता पर विशेष जोर दिया है जिसके सकारात्मक नतीजे आए हैं। बालिकाओं के लिए राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम इस समय पूरे देश में चलाया जा रहा है और इसके अन्तर्गत 31 हजार आदर्श विद्यालय विकसित किए गए और दो लाख अध्यापकों को लैंगिक संवेदनशीलता में भी प्रशिक्षित किया गया।

सरकार ने भारत के नागरिकों से यह वायदा किया था कि संविधान के अनुच्छेद 45 के तहत एक घोषणा द्वारा राज्य संविधान के शुरू होने के दस साल की अवधि में सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु पूरी होने तक मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। पर यह घोषणा लंबे समय तक कागजों में दबी रही। अब जाकर 2009 में भारत सरकार ने 'शिक्षा का अधिकार' विधेयक पारित करते हुए इस वायदे को पूरा किया है, पर इसे जमीन पर उतारने का काम कब तक पूर्णरूपेण साकार होगा कहना मुश्किल है।

संदर्भ एवं स्रोत :

1. 2011 की जनसंख्या का प्रोविजनल आंकड़ा, जनसंख्या निदेशालय, झारखंड
2. उपरोक्त
3. उपरोक्त
4. रोज केरकेट्टा, खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक-सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ-10
5. डॉ. हरिवंश तरुण, भारतीय शिक्षाः उसकी समस्याएं तथा विश्व की शिक्षा प्रणालियां, पृष्ठ-61
6. उपरोक्त, पृष्ठ-61-62
7. उपरोक्त, पृष्ठ-62
8. उपरोक्त, पृष्ठ-65
9. उपरोक्त, पृष्ठ-69
10. डॉ. दिव्या, भारत में शिक्षा और साक्षरता, http://upscportal.com/civilservices/mag/vol-4/article/Education-and-Literacy-in-India
11. डॉ. हरिवंश तरुण, भारतीय शिक्षाः उसकी समस्याएं तथा विश्व की शिक्षा प्रणालियां, पृष्ठ-70-73
12. राष्ट्रीय पोर्टल विषयवस्तु प्रबंधन दल, http://bharat.gov.in/sectors/education/index.php?id=2
13. उपरोक्त
14. उपरोक्त
15. उपरोक्त
16. उपरोक्त
17. रामशरण जोशी, आदिवासी समाज और शिक्षा, पृष्ठ-115
18. भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी प्रोविजनल जनगणना आंकड़ा-2011
19. 2011 की जनसंख्या का प्रोविजनल आंकड़ा, जनसंख्या निदेशालय, झारखंड
20. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, भारत सरकार
21. वी. मोहन राव, भारत वैश्विक ज्ञान केंद्र बनने की दिशा में अग्रसर, http://pib.nic.in/newsite/hindifeature.aspx?relid=5637
22. उपरोक्त
23. महिला शिक्षा को प्राथमिकता जरूरी-प्रतिभा पाटिल, नई दिल्ली (वार्ता), शनिवार, 8 सितंबर 200
24. 2011 की जनसंख्या का प्रोविजनल आंकड़ा, जनसंख्या निदेशालय, झारखंड
25. भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी प्रोविजनल जनगणना आंकड़ा-2011
26. डॉ. दिव्या, भारत में शिक्षा और साक्षरता, http://upscportal.com/civilservices/

mag/vol-4/article/Education-and-Literacy-in-India
27. राजेन्द्र राठौड़, 35 फीसदी भारतीय निरक्षर, जागरण जंक्शन वेब पोर्टल
28. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग द्वारा जारी महिला समाख्या की रिपोर्ट से
29. http://edcilindia.co.in/hi/edcil/index.php?option=com_content&task=view&id=30&Itemid=55
30. http://hi.wikipedia.org/wiki/भारत-में-महिलाएं
31. उपरोक्त
32. http://hi.wikipedia.org/wiki/नारी-शिक्षा
33. कृष्ण कुमार, गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद, पृष्ठ-22
34. साक्षर हैं भारतीय महिलाएं : आंकड़े देखें या हक़ीकत, http://www.dw.de/dw/article/0,,3963138,00.html
35. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग द्वारा जारी महिला समाख्या की रिपोर्ट से
36. उपरोक्त
37. एन.पी.ई.जी.ई.एल. प्रगति प्रतिवेदन, 15 जुलाई 2009
38. उपरोक्त
39. National EValuation Final Report of KGBV State Wise progress of Physical Progress of KGBV Scheme : As on 15th July, 09

तृतीय अध्याय

भारतीय आदिवासी समाज और शिक्षा

भारतीय आदिवासी समाज और शिक्षा

1. परतंत्र एवं स्वतंत्र भारत में आधुनिक शिक्षा और आदिवासी समाज

संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार-'राज्य विशेष सावधानी के साथ समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जाति/जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों के उन्नयन को बढ़ावा देगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के सामाजिक शोषण से उनकी रक्षा करेगा'। अनुच्छेद 330, 332, 335, 338 से 342 तथा संविधान की पांचवीं और छठवीं अनुसूची अनुच्छेद 46 में दिए गए लक्ष्य हेतु विशेष प्रावधानों के संबंध में कार्य करते हैं। समाज के कमजोर वर्ग के लाभार्थ इन प्रावधानों का पूर्ण उपयोग किए जाने पर निर्भर करता है।

राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम (एनसीएमपी) के संकल्प : संप्रग (यूपीए) सरकार ने सुशासन के लिए छः मूलभूत सिद्धांत निर्धारित किए हैं। उनमें से एक है - 'अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए विशेषकर शिक्षा एवं रोजगार में पूर्ण अवसरों की समानता उपलब्ध कराना।' इसके अतिरिक्त संप्रग सरकार के राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम (एनसीएमपी) में इन समुदायों के कल्याण एवं सशक्तिकरण के लिए निम्नलिखित प्रावधान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है -

> *संपग्र सरकार पिछले पांच वर्षों से किए जा रहे शिक्षा के सांप्रदायीकरण को पूरी तरह पलटने के लिए तत्काल कदम उठाएगी।*
>
> *विद्यालयीन पाठ्यक्रमों में शामिल हो चुकी सांप्रदायिक सामग्री को निकालना। इस काम के लिए विशेषज्ञों की एक समीक्षा समिति बनाई जाएगी।*
>
> *संप्रग यह सुनिश्चित करेगा कि किसी को भी व्यावसायिक शिक्षा से इसलिए वंचित न रखा जाए, क्योंकि वह निर्धन है। इसके लिए विशेषज्ञों की एक समीक्षा समिति का गठन किया जाएगा।*

सभी आरक्षित सीटों को एक समयबद्ध ढंग से भरा जाएगा। इसमें प्रोन्नति से संबंधित सीटें भी शामिल होंगी। सभी आरक्षणों को नियमबद्ध करने के लिए एक आरक्षण अधिनियम लागू किया जाएगा।

संप्रग सरकार निजी क्षेत्र में आरक्षण दिए जाने सहित सकारात्मक कार्यवाही के मुद्दे पर अत्यधिक संवेदनशील है। [1]

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के व्यक्तियों के शैक्षणिक आधार को सुदृढ़ करने के लिए कई कदम उठाए हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं कार्ययोजना (पी.ओ.ए.) 1992 के अनुपालन में अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए प्राथमिक शिक्षा, साक्षरता एवं माध्यमिक और उच्च शिक्षा विभाग की वर्तमान योजनाओं में निम्नलिखित विशेष प्रावधान किए गए हैं -

अब 300 की जनसंख्या के स्थान पर 200 की जनसंख्या हेतु एक किलोमीटर की चलने योग्य दूरी के भीतर प्राथमिक स्कूल खोला जा सकेगा।

उच्च प्राथमिक स्तर पर सभी राज्यों के सरकारी प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा शुल्क की समाप्ति। वस्तुतः अधिकतर राज्यों ने अनुसूचित जाति/जनजातियों के छात्रों के लिए माध्यमिक स्तर तक शिक्षा शुल्क समाप्त कर दिया है।

इन वर्गों के छात्रों के लिए निःशुल्क पुस्तकें, वर्दी, स्टेशनरी, स्कूल बैग इत्यादि के रूप में प्रोत्साहन। [2]

संविधान का 86वां संशोधन विधेयक : 13 दिसंबर, 2002 को अधिसूचित इस विधेयक में 6-14 वर्ष के आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान किया गया है।

सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए)

सर्व शिक्षा अभियान प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए शुरू की गई योजना है जिसका प्रमुख जोर बालिकाओं, अनुसूचित जाति/जनजाति कामकाजी बच्चों, शहरी वचित बच्चों, विकलांगों आदि की शिक्षा के लिए विशेष सहयोग उपलब्ध कराना है। बालिकाओं एवं अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए विशेष

रणनीतियां हैं, तथापि इन समूहों को शामिल करने के लिए समेकित रूप में वास्तविक लक्ष्य भी निर्धारित किये गए हैं। एनआईईपीए द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार डीपीईपी जिलों के स्कूलों में 60 प्रतिशत से अधिक बच्चे अनुसूचित जाति/जनजाति के हैं। राज्य सरकारों की सहायता से इस योजना के लक्ष्य को तय समय सीमा में प्राप्त करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। देश की प्राथमिक शिक्षा की तस्वीर को बदलने वादा करने वाली यह योजना देश के 6-14 वर्ष आयु समूह के सभी बच्चों को उपयोगी और गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा प्रदान करेगी।[3]

कार्यक्रम की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं :

बालिकाओं पर अनुसूचित जन/जाति और अल्पसंख्यक वर्ग की बालिकाओं पर ध्यान,

विद्यालय छोड़कर जा चुकी बालिकाओं को वापिस लाने हेतु अभियान चलाना,

लड़कियों के लिए निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें,

बालिकाओं हेतु विशेष (कोचिंग) और तैयारी - कक्षाओं का आयोजन और सीखने के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाना,

शिक्षा के समान अवसर को बढ़ावा देने हेतु शिक्षक जागरूकता कार्यक्रम,

बालिका शिक्षा से संबंधित प्रयोगात्मक परियोजनाओं पर विशेष ध्यान,

50 प्रतिशत महिला शिक्षकों की नियुक्ति और

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी)।

महिला समाख्या (एमएस)

महिला समाख्या शैक्षिक पहुंच एवं उपलब्धि के क्षेत्र में लैंगिक अंतर का निराकरण करती है। इसमें महिलाओं (विशेषतः सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी एवं वंचित) को ऐसे सशक्तिकरण के योग्य बनाना शामिल है, ताकि वे अलग-थलग पड़ने और आत्मविशवास की कमी जैसी समस्याओं से जूझ सके और दमनकारी सामाजिक रीति-रिवाजों के विरूद्ध खड़े होकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष कर सकें।[4]

प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीईजीईएल)

सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) की वर्तमान योजना के अधीन एनपीईजीईएल प्राथमिक स्तर पर सहायता प्राप्ति से वंचित/ पिछड़ी बालिकाओं हेतु अतिरिक्त संसाधन मुहैया कराता है। यह कार्यक्रम शैक्षिक द्रष्टि से पिछड़े उन विकास खंडों में चलाया जा रहा है, जहां ग्रामीण महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसत से कम है और लैंगिक भेदभाव राष्ट्रीय औसत से अधिक है। साथ ही यह कार्यक्रम ऐसे जिलों के विकास खंडों में भी चलाया जा रहा है, जहां कम से कम 5% जनसंख्या अनुसूचित जाति/ जनजाति की है और जहां अनुसूचित जाति/ जनजाति महिला साक्षरता की दर 1991 के आधार पर राष्ट्रीय औसत से 10% कम है।[5]

शिक्षा कर्मी अभियान (एसकेपी)

एसकेपी का लक्ष्य बालिका शिक्षा पर प्रमुख रूप से ध्यान देने के अतिरिक्त राजस्थान के दूर-दराज के अर्धशुष्क एवं सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण एवं गुणवत्ता में सुधार लाना है। यह उल्लेखनीय है कि शिक्षाकर्मी स्कूलों में अधिकतर बच्चे अनुसूचित जाति/जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गो के हैं।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना के अंर्तगत मुख्य रूप से प्राथमिक स्तर पर अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों और अल्पसंखयकों की बालिकाओं के लिए दुर्गम क्षेत्रों में आवासीय विद्यालयों की स्थापना कर शिक्षा प्रदान करना है।

यह योजना शैक्षिक रूप से पिछड़े (ईबीबी) केवल ऐसे विकास खंडों में लागू की जाएगी, जहां वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसत से कम और लैंगिक भेदभाव का स्तर राष्ट्रीय औसत से ज्यादा है। ऐसे विकास खंडों में कम महिला साक्षरता वाले तथा अथवा स्कूल न जाने वाली अधिकतर बालिकाओं वाले जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालय खोले जाएंगे।

जनशिक्षण संस्थान (जेएसएस)

जनशिक्षण संस्थान (जेएसएस) अथवा जनता की शिक्षा का संस्थान एक ऐसा बहुआयामी अथवा बहुमुखी वयस्क शिक्षा कार्यक्रम है, जिसका लक्ष्य लाभान्बित होने वाले लोगों के व्यावसायिक हुनर और निपुणता में सुधार लाना है, इस कार्यक्रम का लक्ष्य सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े तथा शहरी ग्रामीण क्षेत्रों के शैक्षिक रूप से वंचित वर्गों विशेषकर नवसाक्षरों, अर्धशिक्षितों, अनुसूचित जाति/ जनजातियों, महिलाओं तथा बालिकाओं, मलिन बस्ती निवासियों, प्रवासी श्रमिकों इत्यादि का शैक्षिक, व्यावसायिक विकास करना है।

साक्षरता अभियान का अन्य सामाजिक क्षेत्रों पर भी व्यापक असर हुआ है। इसने समाज में सामाजिक न्याय और समानता के कारणों को मजबूती प्रदान की है। इससे भारत की महान मिली जुली संस्कृति तथा विविधता में एकता के बोध के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मजबूती मिली है।

मध्याह्न भोजन योजना

मध्याह्न भोजन योजना में देश के सरकारी, स्थानीय निकाय और सरकार से मान्यता प्राप्त स्कूलों के प्राथमिक स्तर के बच्चों को शामिल किया गया है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य स्कूलों में विद्यार्थियों का नामांकन और उपस्थिति बढ़ाना है इसके आलावा बच्चों में पोषण तत्त्वों की उपयुक्त मात्रा सुनिश्चित करना है ।

केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान (सीआईआईएल)

केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान (सीआईआईएल) मैसूर की एक योजना जनजातीय भाषाओं सहित आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनुसन्धान, इनमें निपुण व्यक्तियों का विकास तथा इस हेतु उन्नत पाठ्य सामाग्री तैयार करना है। संस्थान ने 90 से अधिक जनजातीय भाषाओं के क्षेत्रों में कार्य किया है।

केन्द्रीय विद्यालय (केवी)

इसमें नए छात्रों के दाखिले में क्रमशः 15% एवं 7.5% सीटें अनुसूचित जाति और जनजाति के छात्रों के लिए आरक्षित है। इन वर्गों के छात्रों से 12वीं कक्षा तक किसी भी प्रकार का शिक्षण शुल्क नहीं लिया जाता।

नवोदय विद्यालय (एनवी)

अनुसूचित जाति और जनजाति के छात्रों के पक्ष में आरक्षण संबंधित जिलों में उनकी आबादी के हिसाब से इस प्रकार दिया जाता है कि वह 22.5% के राष्ट्रीय औसत (15% अजा के लिये एवं 7.5% अजजा के लिए) से किसी भी प्रकार कम न हो और अधिकतम दोनों वर्ग (अजा एवं अजजा) को मिलाकर 50% से अधिक न हो। ये आरक्षण परस्पर परिवर्तनीय है तथा सामान्य दक्षता सूची से आने वाले छात्रों से अतिरिक्त है।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय संस्थान (एनआईआईएस)

एससी/एसटी छात्रों को शुल्क में छूट : माध्यमिक पाठयक्रमों के लिए एससी/एसटी छात्रों को प्रवेश शुल्क में 450 रुपये तक तथा उच्च माध्यमिक पाठयक्रमों के लिए 525 रुपये तक शुल्क में छूट प्रदान की जाती है ।

माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में अध्ययन करने वाली छात्राओं के लिए आवासीय और छात्रावास सुविधाओं में वृद्धि करने की योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली एवं कमजोर वर्ग की किशोरियों को इन छात्रावासों में प्रवेश हेतु प्रेरित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को शत प्रतिशत वित्तीय सहायता दी जाती है। इनमें शैक्षणिक रूप से पिछड़े जिलों को प्राथिमकता दी जा रही है, विशेष रूप से वहां, जहां अनुसूचित जाति/जनजातियों के लोगों और शैक्षणिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों की बहुलता है।

माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिभावान बच्चो को दी जाने वाली 43,000 छात्रवृत्तियों में से 13,000 छात्रवृत्तियां कुछ शर्तों पर विशेष रूप से अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए आरक्षित है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) पाठ्यपुस्तकों, अभ्यास पुस्तिकाओं, अध्यापक निर्देशिकाओं, सहायक पठन सामग्री के विकास, पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन, व्यावसायिक शिक्षा, शैक्षिक तकनीकी, परीक्षा सुधारों,

सर्व शिक्षा अभियान को समर्थन, शैक्षिक रूप से वंचित वर्गों की शिक्षा पर ध्यान देती है।

एनसीईआरटी विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों में शोध स्तर तक शिक्षा हेतु और चिकित्सा और इंजीनियरी जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में द्वितीय डिग्री स्तर तक की पढाई हेतु कुछ शर्तों के पूरा करने पर राष्ट्रीय प्रतिभा खोज योजना का संचालन करती है। कुल 1000 छात्रवृत्तियों में से 150 अनुसूचित जाति एवं 75 अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिए है ।

राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान (एनआईईपीए)

अनुसूचित जाति और जनजाति का शैक्षिक विकास करना राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान (एनआईईपीए) का एक प्रमुख कार्यक्षेत्र है। यह अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए चल रहे शैक्षिक कार्यक्रमों एवं योजनाओं का अध्ययन करता है। यह अनुसूचित जाति और जनजाति के छात्रों के विकास और उनसे संबद्ध शैक्षिक संस्थाओं के लिए सामग्री भी तैयार करता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी)

यूजीसी अनुसूचित जाति/जनजाति के वर्गों के लिए आरक्षण नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सभी विश्विद्यालयों/विश्वविद्यालय के रूप में मान्य संस्थानों में अनुसूचित जाति/जनजाति एकक के स्थापना के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता है। अभी इस आयोग ने केन्द्रीय विश्विद्यालयों समेत 113 विश्विद्यालयों में अजा/अजजा एककों का गठन किया है। अजा/अजजा पर बनी स्थायी समिति इस क्षेत्र में किए गए कार्य पर नजर रखती है और उनकी समीक्षा करती है ।

आरक्षण नीति के अंतर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने केन्द्र सरकार के अधीन सभी विश्विद्यालयों में सभी शिक्षण एवं गैर शिक्षण पदों में भर्ती, प्रवेश, छात्रावास इत्यादि में अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए क्रमशः 15% और 7.5% आरक्षण का प्रावधान किया है। राज्यों के विश्विद्यालयों संबंधित राज्य द्वारा बनाई गई आरक्षण नीति का पालन करते हैं। आयोग भारत सरकार की आरक्षण नीति को लागू करने के लिए समयसमय पर दिशा निर्देश/नीति निर्देश/आदेश जारी

करता रहता है। आरक्षणों के अलावा अजा/अजजा छात्रों के प्रवेश के लिए निर्धारित न्यूनतम अर्हता अंकों में छूट दिए जाने का भी प्रावधान है। यूजीसी यह सुनिशचित करने के लिए कि सभी स्नातकों, जिनमें अजा/अजजा स्नातक शामिल हैं, के पास सामान्य रूप से नौकरी क्षेत्र एवं विशेष रूप से स्वरोजगार करने के लिए आवश्यक ज्ञान, निपुणता एवं रुझान है। आयोग अजा/अजजा छात्रों को प्रतिविधि कोचिंग के लिए वित्तीय सहायता देता है। यह यूजीसी/सीएसआईआर द्वारा आयोजित कराई जाने वाली राष्ट्रीय अर्हता परीक्षा (एनईटी) के लिए अजा/अजजा के छात्रों को योग्य बनाने के लिए वर्तमान कोचिंग केन्द्रों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता है। आयोग विस्तार (प्रसार) गतिविधियों को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं । योजना के अंतर्गत अनुसूचित जाति/जनजाति समेत समाज के सभी वर्गों को शामिल किया जाता है। सामाजिक समानता के कार्य में सहयोग देने और समाज के सुविधाओं से वंचित वर्ग की सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता बढ़ाने हेतु यूजीसी ने अवर स्नातक/स्नातकोत्तर स्तर पर प्रतिविधि कोचिंग योजना शुरू की है। योजना के प्रमुख उद्देश्य हैं-

> *(क) विभिन्न क्षेत्रों में छात्रों की निपुणता एवं भाषाई कुशलता को सुधारना,*
>
> *(ख) मूलभूत विषयों में समझ का स्तर बढ़ाना, ताकि उच्च शिक्षा के लिए एक आधार मिल सके,*
>
> *(ग) ऐसे छात्रों के ज्ञान, निपुणता एवं रुझान को ऐसे विषयों में बढ़ाना, जिनमे गुणात्मक प्रविधियां एवं प्रयोगशाला संबंधी कार्य किया जाता है,*
>
> *(घ) परीक्षाओं में ऐसे छात्रों का सकल प्रदर्शन सुधारना।*

आयोग ने अनुसूचित जाति/जनजाति के योग्य छात्रों के लिए एक केन्द्रीय डाटाबेस पूल तैयार किया है। वह विभिन्न विश्वविद्यालयों में शिक्षक पदों के लिए पदों को भरने के लिए उनका नाम भी प्रस्तावित करता है तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में आरक्षण नीति के कार्यान्वयन की समीक्षा करने के लिए केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के कुलसचिवों की समय-समय पर बैठकों का आयोजन कराता है। वर्तमान एककों के कार्यों की समीक्षा के लिए एक विशेष निगरानी एकक भी है।

सामुदायिक पालिटेक्निक

सामुदायिक पालिटेक्निक की योजना के अंतर्गत क्षेत्र विशेष रूप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके ग्रामीण/सामुदायिक विकास गतिविधियां चलाई जाति है इसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र के लोगों/स्थानीय समुदायों को उनके उपुयक्त एवं अनुरूप प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराने के लिए मंच उपलब्ध कराया जाता है। प्रशिक्षण देने में ग्रामीण युवकों, अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों, महिलाओं, स्कूल बीच में ही छोड़ चुके व्यक्तियों तथा अन्य वंचित वर्गों को वरीयता दी जाती है और आवश्यकतानुसार रोजगार प्राप्त करने में सहायता दी जाती है। सामुदायिक पॉलीटेक्निकों की योजना चुनिंदा डिप्लोमास्तरीय संस्थाओ में लागू है। इसमें निपुणता- उन्मुख अनौपचारिक प्रशिक्षण, तकनीकी हस्तांतरण तथा प्रौद्योगिकी समर्थन सेवाओं के माध्यम से विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग होता है।

इंजीनियरिंग महाविद्यालय

केंद्र सरकार द्वारा संचालित उच्च शिक्षा संस्थान, जिनमें आईआईटी, आईआईएम तथा राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान शामिल हैं, में अनुसूचित जाति/जनजाति के छात्रों को क्रमशः 15% एवं 7.5% आरक्षण दिया जाता है। आरक्षण के अलावा इनमे अजा/अजजा छात्रों के लिए न्यूनतम अहर्ता अंकों में भी छूट दिए जाने का प्रावधान है। छात्रावासों में भी सीटें आरक्षित हैं, तथापि राज्य सरकार द्वारा संचालित संस्थाओं में संबंधित राज्य सरकारों की नीति के अनुसार आरक्षण दिया जाता है।

विशेष घटक योजना (एससीपी) तथा जनजातीय उप-योजना (टीएसपी)

प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता तथा माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभागों के आवंटित बजट में क्रमशः 16.20% तथा 8% अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए विशेष घटक योजना (एससीपी) और जनजातीय उपयोजना (टीएसपी) के अंतर्गत आवंटित है। माध्यमिक और उच्च शिक्षा विभाग ने 2004-05 की वार्षिक योजना के 2225 करोड़ रुपये के योजना परिव्यय में से एससीपी और टीएसपी के

लिए क्रमशः 333.75 करोड़ रुपये एवं 166.88 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं। प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता विभाग ने वर्ष 2004-05 की वार्षिक योजना के लिए 6000 करोड़ रुपये के योजना परिव्यय में से एससीपी और टीएसपी के लिए क्रमशः 900 करोड़ रुपये एवं 450 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं।

साक्षरता दर

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की वयस्क साक्षरता योजनाएं देश के लगभग सभी जिलों में लागू की जा रही है। अल्पमहिला साक्षरता वाले जिलों (45) में जिला साक्षरता समितियों, गैर सरकारी सगंठनों, महिला स्वयंसेवी अध्यापकों तथा पंचायतीराज कर्मियों के माध्यम से केंद्रीकृत प्रयास के रूप में विशेष योजनाएं शुरू की गई हैं। आजीवन चलने वाले शिक्षा अवसरों के प्रावधान, व्यावसायिक निपुणता प्रदान करने तथा देश के 272 जिलों में चल रहे सतत शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से साक्षरों के लिए आय पर भी विशेष जोर दिया जा रहा है।[6]

अनुसूचित जाति और जनजाति की साक्षरता में प्राप्त उपलब्धियां भी वर्ष 1991 की जनगणना के आंकड़ों, अर्थात 37.41% एवं 29.41% की तुलना में उल्लेखनीय हैं। इसके आलावा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति में महिला साक्षरता की दर भी पुरुष साक्षरता दर की तुलना में कही अधिक है।[7]

2. आदिवासी समाज और बालिका शिक्षा

महिलाओं को किताबों में कितना भी ऊंचा स्थान दिया गया हो परंतु समाज में उनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। जहां तक विभिन्न आदिवासी समुदायों में महिलाओं की स्थिति का प्रश्न है, उसे भी आदर्श नहीं कहा जा सकता।

हम जानते हैं कि जनजातीय समुदायों में समाज की संरचना एवं संचालन परंपराओं के आधार पर होता है। किन्तु परम्परा के प्रस्थान बिन्दु को चिन्हित करना बहुत ही कठिन कार्य है। परम्पराएं परिवर्तनशील होती हैं। उनकी आलोचना की जा सकती है; परन्तु, परम्पराशून्य होकर आदिवासी समुदाय स्वयं को जीवित नहीं रख सकते।

भारत में ज्यादातर आदिवासी समुदाय पितृसत्तात्मक हैं। किंतु उत्तर-पूर्वी राज्यों के कुछ क्षेत्रों में मातृसत्तात्मक परिवार हैं। मातृसत्तात्मक समुदायों में परिवार का नेतृत्व महिलाओं के पास होता है। उनके अधिकार और दायित्व पुरुषों से अधिक माने जाते हैं। सामाजिक संरचना का जो भी स्वरूप हो, प्रायः सभी आदिवासी समुदायों में महिलाएं पुरुष की तुलना में अधिक श्रम करती हैं। वे परिवार की अर्थ-व्यवस्था की धुरी होती हैं और उनकी राय को महत्व दिया जाता है। झारखंड का खड़िया आदिवासी समुदाय भी मातृसत्तात्मक है, लेकिन अब यह व्यवहार में नहीं है। इनके बीच भी पितृ सत्ता का प्रचलन हो गया है।

कुछ आदिवासी समुदायों में वधू मूल्य की परम्परा के कारण कन्या के जन्म को संकारात्मक भाव से देखा जाता है। क्योंकि, वधू मूल्य कन्या के पिता को प्राप्त होता है। वैसे यह आदर्श परंपरा नहीं है किन्तु आदिवासी समाज में कन्या भ्रूण हत्या का न होना इसकी एक बड़ी वजह है। आदिवासी विधवाओं के पुनर्विवाह को स्वीकृति दी जाती है। तलाक की स्थिति में भी विवाह करने की छूट है। आदिवासी समुदाय सदियों से जंगलों में रहते आए हैं। वे इन जंगलों के संरक्षण को लेकर बहुत सतर्क रहते हैं। इसमें महिलाओं की ही भूमिका अधिक होती है।

आदिवासी महिलाएं सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से सशक्त हैं। स्वावलम्बन उनका प्राकृतिक गुण है। किंतु आज आदिवासी महिलाएं अपने संक्रमण काल से गुजर रही हैं। सदियों से चली आ रही उनकी परंपराएं बदल रही हैं। बाहरी दुनिया से आदिवासी समुदायों का संपर्क तेजी से बढ़ा है। लेकिन दुर्भाग्यवश उनपर बाहरी दुनिया की अच्छाइयों का कम जबकि बुराइयों का अधिक प्रभाव पड़ रहा है। इससे

महिलाएं भी अछूती नहीं हैं।

भारत के हिन्दू समाज की अपेक्षा आदिवासी समाज में महिलाओं की स्थिति भिन्न है। यह भिन्नता सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक लगभग सभी स्तरों पर देखी जा सकती है। इसके बावजूद आदिवासी महिलाएं वैसी ही हैं जैसी कि अन्य भारतीय महिलाएं। विशेषकर आज के समय में। आदिवासी समाज के परंपरागत ढांचे में जो स्थान महिलाओं के लिए सुनिश्चित था, अब उसमें तेजी से बदलाव आया है। शिक्षा, साहित्य और राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति-अनुपस्थिति से इस बदलाव को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।[8]

झारखंड में 2001 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षर महिलाओं का प्रतिशत मात्र 30 प्रतिशत है।[9] पढ़ाई के दौरान स्कूल छोड़ने वालों में लड़कियों की संख्या सबसे अधिक है। इसके साथ ही महिला-पुरुष अनुपात में भी लगातार कमी आ रही है। साक्षरता की यह निम्न दर इस बात का द्योतक है कि झारखंडी समाज की अधिकांश लड़कियां अशिक्षित रह जा रही हैं। इस अशिक्षा के अपने आर्थिक कारण हैं लेकिन तेजी से बदलते सामाजिक सोच की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता।

स्पष्ट है कि आदिवासी समाज भी लड़कों की शिक्षा-दीक्षा पर ही ज्यादा रुचि दिखा रहा है। लड़कियों की शिक्षा के मामले में उसका नजरिया, बहुत धीमे ही सही, लेकिन बदल रहा है और वह पहले जैसा आदिवासी समाज नहीं रह गया है। वैसे, यह अभी शुरुआती ट्रेंड है। इसलिए जल्दबाजी में किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाना ठीक नहीं होगा। फिर भी इस आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता कि मुख्यधारा के समाज की बीमारी आदिवासी समाज को भी अपनी गिरफ्त में ले रहा है।[10]

महिलाओं के पिछड़ने या फिर उनके विकास में बाधा बनने की सामाजिक प्रवृति धीरे-धीरे बढ़ रही है। हिन्दू संस्कृति का बढ़ता प्रभाव तथा बाहरी संस्कृति के नकल की अंधी होड़ ने इस प्रवृति को पहले से ज्यादा मारक बना दिया है। बाहरी संस्कृति के नकल में आज की पीढ़ी अंधी हो चुकी है। उसका व्यवहार और जीवनशैली बदल गयी है। झारखंडी जीवनदर्शन में समानता का जो मूल तत्व है वह गायब हो रहा है। आधुनिक समाज की व्यक्तिवादी सोच आदिवासियों के उस हिस्से में पूरी तरह से व्याप्त हो चुकी है, जो पढ़ा-लिखा है और नगरों व महानगरों में रह रहा है। इसके सामाजिक परिणाम महिलाओं के साथ समाज के बदलते व्यवहार में आसानी से देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

6 से 14 आयु वर्ग के 35.1 लाख आदिवासी बच्चों में 54% अभी भी स्कूलों से बाहर हैं। इस आयु वर्ग में 18.9 लाख बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं और आदिवासी समुदाय में बालिका शिक्षा की स्थिति काफी बुरी है। स्कूलों से बाहर निकलते बच्चों की संख्या के अनुपात में स्कूलों में दर्ज न होने वाले बच्चों से ज्यादा है। इससे यह पता चलता है कि बच्चों के नाम स्कूलों में दर्ज तो हो जा रहे थे पर वे काफी जल्दी उससे बाहर भी हो जा रहे हैं। स्कूलों से बाहर हो रहे बच्चों में भी लड़कियों की संख्या 60% है वहीं लड़कों की दर भी बहुत अधिक है।

आदिवासी समुदाय में शिक्षा की स्थिति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कुल आबादी का 10% से भी कम प्राथमिक से आगे की पढ़ाई कर पाए हैं। इसलिए आदिवासी समुदाय की शिक्षा संपूर्ण नागरिक समाज के लिए एक चुनौती का प्रश्न है। आदिवासी समुदाय में शिक्षा के स्तर को बढ़ाना एवं इसे सुनिश्चित करना एक ऐसी चुनौती है जिसका समाधान हमें समग्रता में ढूंढना होगा। इसके लिए जरूरी है कि पहले हम उन समस्याओं को सुलझाएं जिनके कारण आदिवासी बच्चों का स्कूलों में ठहराव नहीं हो पा रहा है, उनका नामांकन नहीं हो पा रहा, शाला से बाहर होने की दर, खासकर लड़कियों में लगातार बढ़ती जा रही है। बच्चे घरों में, होटलों या ढाबों पर या खेतों में काम कर रहे हैं। कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका हल हमें समस्या की जड़ तक ले जाएगा। इससे निपटने के लिए समाज, राज्य, प्रशासन एवं अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों या संस्थाओं को सघन प्रयास करने होंगे। हमें समस्या का स्वरूप एवं आदिवासी समुदाय जो पहले से ही विकास के इस दौड़ में सीमान्त रेखा पर है, पर इसके असर को समझना होगा। अब, शिक्षा का अधिकार कानून राज्य में क्रियान्वित हो रहा है। आदिवासी समुदाय पर इसके प्रभाव एवं समुदाय में शिक्षा के स्तर में आए बदलाव को देखना होगा। यह कानून आदिवासी बच्चों के शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने में किस प्रकार मदद करता है। यह अपने आप में एक चुनौती भरा प्रश्न होगा। कानून 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों का स्कूलों में नामांकन सुनिश्चित कराने की बात करता है। पर क्या यह कानून ऐसा वातावरण पैदा कर सकेगा जिसमें स्कूलों के अंदर छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयाँ दूर हो सकें और सभी परिवार बिना किसी भय व संकोच के अपने घर की लड़कियों को स्कूल भेज सकें। आदिवासी इलाकों में चल रहे स्कूलों में अधिसंरचना एवं संसाधनों की कमी है। अधिकतर विद्यालयों में मात्र एक पूर्णकालिक योग्य शिक्षक

है। अन्य सुविधायें जैसे पृथक शौचालय, चार दीवारी, कक्षा भवन आदि की कमी है। ये तो अधिसंरचनात्मक कमियां हैं लेकिन हम उन कमियों का क्या करें जो आदिवासी शिक्षा के लिए राज्य के खर्चे में आ गई है। इन स्कूलों में जिन शिक्षकों की नियुक्ति की जाती है वे आदिवासी बच्चों के साथ दोहरा व्यवहार करते हैं। वे इन बच्चों से स्कूल की सफाई आदि का काम कराते हैं। चूंकि आदिवासी समुदाय दूर-दराज इलाकों में रहता है, इस वजह से समुदाय की स्कूलों तक पहुंच भी एक बड़ी समस्या है और एक बड़ा तबका स्कूलों से दूर है।

इन स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मानक भाषा है जबकि आदिवासी समुदाय की अपनी एक अलग बोली है। बच्चे स्कूलों में जाते हैं जहां उन्हें एक अनजान भाषा में पढ़ाया जाता है। स्कूलों में सारे शिक्षक ऐसे होते हैं जिनका प्रशिक्षण मानक भाषा में हुआ होता है और वे बच्चों को भी उसी भाषा में पढ़ाते हैं जो कि उनके लिए समझने में मुश्किल होता है। स्कूलों में जो पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है उसमें भी इनकी संस्कृति, रहन-सहन आदि का कोई विवरण नहीं होता है जो इन बच्चों के शाला से बाहर होने के कारणों में से एक प्रमुख समस्या है।

संदर्भ एवं स्रोत :

1. राष्ट्रीय पोर्टल विषयवस्तु प्रबंधन दल, http://bharat.gov.in/sectors/education/edu_scheduled_castes.php
2. उपरोक्त
3. उपरोक्त
4. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग द्वारा जारी महिला समाख्या की रिपोर्ट से
5. एन.पी.ई.जी.ई.एल. प्रगति प्रतिवेदन, 15 जुलाई 2009
6. राष्ट्रीय पोर्टल विषयवस्तु प्रबंधन दल, http://bharat.gov.in/sectors/education/edu_scheduled_castes.php?pg=4
7. भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
8. वंदना टेटे, किसका राज है, पृष्ठ- 72
9. जनसंख्या निदेशालय, झारखंड
10. वंदना टेटे, किसका राज है, पृष्ठ- 68

चतुर्थ अध्याय

भारत में छोटे राज्यों में शिक्षा : मातृभाषा की प्रासंगिकता

चतुर्थ अध्याय

भारत में छोटे राज्यों में शिक्षा : मातृभाषा की प्रासंगिकता

1. झारखंड : आंदोलन से राज्य नवनिर्माण तक

अंगरेजों ने सत्ता प्राप्त करते हुए देश में पाया कि यहाँ दो प्रकार की शिक्षा पद्धति है- 1. हिन्दू संपन्न परिवार के बच्चों के लिए। इनकी शिक्षा यज्ञोपवीत से प्रारंभ होता था तथा ये गुरु के यहाँ शिक्षा प्राप्त करने जाते थे। 2. मदरसा- अकबर और शेरशाह ने अपने राज्य-काल में मदरसों की व्यवस्था की थी जहाँ मुस्लिम बच्चे पढ़ते थे और मौलवी पढ़ाते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ अरबी-फारसी भी पढ़ लिया करते थे।[1]

राज्य को अन्य जातियों और आदिवासियों के लिए पढ़ाई की कोई व्यवस्था नहीं थी।

ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों ने सूबों को अपने अधीन रखा था परन्तु बड़े रियासत सीधे उनके अधिकार में नहीं थे। बंगाल, बिहार, और उड़ीसा बंगाल प्रेसीडेंसी के रूप में जाना जाता था। लेकिन 1912 ई. में बिहार बंगाल से अलग से गया। 1936 में उड़ीसा से बिहार अलग हो गया। प्रशासन की दृष्टि से छोटे राज्यों का निर्माण हो रहा था- आदिवासी अपने ऊपर होने वाले शोषण के विरुद्ध लड़ रहे थे। इतिहास में ऐसी अनेक विद्रोह दर्ज हैं। इनमें प्रमुख हैं -

तिलका विद्रोह - 1772 ई.

तिलका माझी विद्रोह - 1785

चेरो विद्रोह - 1795-1800

मानभूम का सरदार विद्रोह - 1798-99

बुंडू का मुंडा विद्रोह - 1797

चुआड़ विद्रोह - 1798

संताल विद्रोह 1855

तेलेंगा खड़िया विद्रोह 1880

बिरसा मुण्डा उलगुलान 1900

जतरा टाना आंदोलन 1912 [2]

ये विद्रोह इसलिए दबाये जा सके क्योंकि अंग्रेजों के पास तोपें थीं। विद्रोह करने वाले तीर-धनुष, बर्छी और तलवार जैसे अपरिष्कृत शस्त्रों से लड़ रहे थे। 1857 में योद्धाओं यथा पाण्डेय गणपत राय, शेख भिखारी आदि को इसी कारण पकड़ा जा सका। लोगों को भयभीत करने के लिए उन्हें खुलेआम फाँसी दी गयी।

1. इन आन्दोलनों का मुख्य कारण था सरकार और जमींदारों के शोषण से मुक्ति। अर्थात् कर के नाम पर बेहिसाब वसूली

2. वसूली न कर पाने पर जमीन की नीलामी

3. एक-एक गांव तक के गंझुओं (जमींदर) और जमींदार के यहाँ बेगारी खटना।

4. स्त्रियों की बेइज्जती के विरूद्ध [3]

इन आन्दोलनों में शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मुद्दे नहीं उठाये जा रहे थे। पारंपरिक शिक्षा पद्धति धुमकुरिया, गितिओड़ाः गितअःचाड़ी ही चल रहे थे।

ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ 1771 से लेकर 1947 तक जो विद्रोह और आंदोलन हुए, उनके दो सिरे थे। एक सिरा जंगल-जमीन जैसे आजीविका जैसे मुद्दों की वजह से आदिवासी अधिकारों व नेतृत्व से जुड़ा था और दूसरा सिरा सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों की वजह से स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बना।

1920 में गठित छोटानागपुर उन्नति समाज ने आदिवासियों को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक चेतना से लैस करने का लक्ष्य रखा।[4] 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बढ़ी राजनीतिक चेतना इस क्षेत्र में आदिवासियों को अपने बीच से नया नेतृत्व पैदा करने की प्रेरणा दे रही थी। 1939 में 'छोटानागपुर उन्नति समाज' का नाम बदल कर 'आदिवासी महासभा' किया गया। वस्तुतः यह नाम बदलना भर नहीं था। 'छोटानागपुर उन्नति समाज' और अन्य छोटे-बड़े संगठनों के नेताओं ने मिलकर आदिवासी महासभा की बुनियाद रखी और उसमें अपने-अपने संगठनों का विलय किया। उसके साथ ही झारखंड की राजनीति में जयपाल सिंह मुंडा का उदय हुआ। आदिवासी महासभा के वे संस्थापक अध्यक्ष बने।[5]

'आदिवासी महासभा' ने सिर्फ स्वशासन की नहीं बल्कि बिहार से अलग

राज्य की मांग को अपने आंदोलन का लक्ष्य घोषित किया। 1950 में झारखंड अलग राज्य की राजनीतिक मांग को बुलंद करने के लिए 'आदिवासी महासभा' को झारखंड पार्टी के रूप में बदल दिया गया। आदिवासी संस्कृति की रक्षा के लिए ठोस राजनीतिक हथियार तैयार करने की यह रणनीति सिर्फ आदिवासी समाज के लिए नहीं बल्कि पूरे झारखंड क्षेत्र के लिए अति महत्वपूर्ण राजनीतिक मोड़ साबित हुई। आदिवासी महासभा के जमशेदपुर में 1950 में आदिवासी महासभा को झारखंड पार्टी बनाने के पीछे स्पष्ट राजनीतिक सोच थी - आंतरिक उपनिवेश से मुक्ति। अलग झारखंड राज्य का निर्माण। इसी अधिवेशन में यह भी फैसला लिया गया कि झारखंड राज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इसकी सदस्यता गैर-आदिवासियों को भी दी जाएगी। इस ऐतिहासिक निर्णय का परिणाम यह हुआ कि आजादी के बाद के प्रथम विधानसभा चुनाव में झारखंड पार्टी के 32 विधायक जीते और अलग झारखंड राज्य का मुद्दा ठोस राजनीतिक मांग बन गयी।[6]

जून, 1963 में बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री बिनोदानंद झा ने झारखंड पार्टी को कांग्रेस में मिला लिया और झारखंड आंदोलन की राजनीतिक बुनियाद पर ही चोट कर दी। तब से झारखंड क्षेत्र में 'संस्कृति की राजनीति' की दशा-दिशा बदल गई और वह 'राजनीति की संस्कृति' तेजी से फैलने लगी, जिसके केंद्र पटना और दिल्ली थे। बिनोदानंद झा की सरकार में जयपाल सिंह मुंडा 'मंत्री' बने लेकिन आदिवासी जनमानस में 'मरांग गोमके' की छवि बरकरार नहीं रख सके।

1970 से 80 के बीच का शुरुआती दौर झारखंड आंदोलन के बिखराव का दौर है जबकि इसके अंतिम दिनों में झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) के उदय से फिर से एक नये मजबूत दौर का आरंभ हुआ। झारखंड की राजनीति में 'गुरुजी' के नाम से प्रसिद्ध शिबू सोरेन के नेतृत्व में 1973 में झारखंड मुक्ति मोर्चा का उदय हुआ। झामुमो के उदय के पीछे मुख्यतः दो लोग प्रमुख थे। विनोद बिहारी महतो और शिबू सोरेन। विनोद बिहारी महतो ने शिवाजी समाज की स्थापना की थी जबकि शिबू सोरेन ने सोनत संताल समाज की। झामुमो का गठन इन्हीं दोनों के विलय के परिणामस्वरूप हो पाया था। हालांकि इस बीच झारखंड आंदोलन के लिए कई झारखंडी पार्टियां बनीं जिनमें झारखंड पार्टी के अनेक गुट, 1968 में गठित बिहार राज्य हुल झारखंड, बिरसा सेवा दल आदि प्रमुख हैं। साथ ही इस दौर में वामपंथी नक्सली संगठनों ने भी झारखंड आंदोलन का समर्थन किया और कई नक्सली पार्टियों के अलावा एके राय ने आंदोलन को फिर से धार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। 21 मार्च 1978 को राजधानी पटना में झामुमो और एके राय की

पार्टी मार्क्सवादी समन्वय समिति के नेतृत्व में विशाल प्रदर्शन हुआ। झारखंड अलग राज्य की मांग पर पटना में हुआ यह प्रदर्शन आजादी के बाद का सबसे बड़ा शक्ति प्रदर्शन था।[7]

80 के दशक में असम आंदोलन और गोरखालैंड की मांग के समर्थन में हुए उग्र आंदोलन का झारखंड आंदोलन पर असर हुआ। विशेषकर छात्र-युवाओं पर। 22 जून 1987 को जमशेदपुर में असम की तर्ज पर 'ऑल झारखंड स्टूडेंट्स यूनियन' (आजसू) का गठन हुआ। देखते ही देखते यह झारखंडी छात्र, नौजवान और अन्य तबकों का सबसे बड़ा मंच बन गया तथा झारखंड आंदोलन में एक नया उभार आ गया। आजसू आंदोलन ने झारखंड आंदोलन में नई जान तो फूंका ही झारखंडी बुद्धिजीवियों और पार्टियों को भी गोलबंद होने के लिए प्रेरित किया। इसी के फलस्वरूप 19 से 21 अक्तूबर 1986 को जमशेदपुर के सीताराम डेरा स्थित आदिवासी एसोसिएशन हॉल में अखिल भारतीय छात्र एवं बुद्धिजीवी सम्मेलन का आयोजन हुआ। इसी सम्मेलन में झारखंड के सभी राजनीतिक दलों, छात्र एवं सामाजिक संगठनों और बुद्धिजीवियों को जोड़ते हुए झारखंड समन्वय समिति का गठन किया गया।[8]

इस तरह झारखंड आंदोलन विभिन्न दौर में विभिन्न रणनीतियां अपनाते हुए अलग राजय की मांग पर डटा रहा। बिहार और केन्द्र की सरकारों ने आंदोलन को हर दौर में पथभ्रष्ट बनाया और आंदोलन को तोड़ने की चेष्टा जारी रखी। फिर भी झारखंडी जनता अपनी राजनीतिक मांग पर डटी रही और किसी भी सरकार एवं राजनीतिक पार्टी को इसकी अनदेखी करने की मंशा कामयाब नहीं हो पाई। 1995 में जब लालू प्रसाद यादव बिहार के मुख्यमंत्री थे उन्हें झारखंड क्षेत्र स्वशासी परिषद् (जैक) का गठन करना पड़ा। बाद में 22 जुलाई 1997 को राजनीतिक दबाव में बिहार विधानसभा में पृथक झारखंड राज्य का संकल्प भी पारित करते हुए उसे केंद्र सरकार को अग्रसारित कर दिया गया। अंततः 15 नवंबर 2000 को झारखंड एक अलग राज्य के रूप में अस्तित्व में आया।

झारखंड आंदोलन के इस लंबे कालखंड में विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में यह समूचा आदिवासी प्रदेश हमेशा उपेक्षित ही रहा। प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की मांग कभी नहीं पूरी की गई और न ही आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए कोई कदम उठाया गया। हालांकि सत्तर के दशक में बिहार सरकार ने प्राथमिक स्तर पर मातृभाषाओं में शिक्षा देने के लिए प्राईमर तैयार करवाये और उसे छापा भी। परंतु पुस्तकें गोदामों से बाहर कभी नहीं निकलीं।

2. झारखंड में शिक्षा : बिहार से पहले और बिहार के बाद

झारखंड क्षेत्र में औपचारिक शिक्षा की बुनियाद डालने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को है। इसके पूर्व इस क्षेत्र में शिक्षा के नाम पर राजतंत्र तथा सामंती-व्यवस्था के तहत राज-संचालन हेतु संस्कृत -फारसी में राजपरिवारों के लोगों को थोड़ी-बहुत शिक्षा दी जाती रही। जाहिर है कि इस शिक्षा में आमजन को कोई संपर्क नहीं रहा। इस गैर-बराबरी की शिक्षा-व्यवस्था का दुष्परिणाम अब भी नजर आता है कि झारखंड के लोग शीर्ष पदों पर गिने-चुने हैं।

बहरहाल, ईसाई मिशनरियों ने यहाँ औपचारिक शिक्षा की शुरुआत लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले की। हालांकि शिक्षा-प्रसार उनके लिए धर्म-प्रचार का एक माध्यम और हिस्सा थी। 'शिक्षा के प्रचार-प्रसार के जरिए आदिवासियों के बीच पहुँचने वालों में गोस्सरन एवेंजेलिकल लूथेरन चर्च मिशन (जी.ई.एल.चर्च मिशन), एस.पी.जी. मिशन, रोमन कैथलिक मिशन, युनाइटेड फ्री चर्च, डबलिन यूनविर्सिटी मिशन, सेवेन्थ डे एडवेन्टिस्ट मिशन के नाम उल्लेखनीय हैं। गोस्सनर ने 1845 में, एस.पी.जी.(सोसाइटी फॉर द प्रोपेगेशन ऑफ गोस्पेल) ने 1869 में और रोमन कैथलिक मिशन ने 1885 में छोटानागपुर में अपनी-अपनी गतिविधियाँ शुरू कीं।'[9] इस प्रकार, 1845 में कोलकाता के बिशप के निर्देश पर जी.इ.एल. चर्च मिशन के धर्म-प्रचारकों[10] के आगमन से औपचारिक शिक्षा की शुरुआत झारखंड में हुई। इन्हीं धर्म-प्रचारकों के द्वारा राँची में एक विद्यालय की स्थापना हुई। आदिवासी बच्चों को आर्थिक सुविधाएँ देकर भी पढ़ने हेतु प्रेरित किया गया। इसके तहत छात्रवृति के रूप में प्रत्येक छात्र को प्रति सप्ताह के अंत में प्रतिदिन की उपस्थिति के आधार पर एक एक आना राशि दी जाती थी। धर्म-प्रचारकों के प्रयास का ही परिणाम था कि 1855 ई. में उस विद्यालय में 80 छात्र पढ़ रहे थे। क्रांति के कारण 1857 ई. मिशनरियों को यह इलाका छोड़कर वापस कोलकाता जाना पड़ा, इस कारण स्कूल बंद हो गया। इस समय तक स्कूल में छात्र-छात्राओं का अनुपात बराबर था, और सभी ईसाई धर्म को अपना चुके थे। स्कूल में हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, गणित, भूगोल जैसे विषय पढ़ाए जाते थे। क्रांति जब थमी तो मिशनरी पुनः आए। वापसी के बाद मिशनरियों ने स्कूल खोलने का अभियान चलाया और 1865 ई. तक छोटानागपुर इलाके में उनके द्वारा 11 स्कूल खोले गए।[11]

जी.ई.एल मिशन के 1874 ई. की वार्षिक रिपोर्ट के मुताबिक राँची जिले

के 62 गाँवों में मिशन के स्कूल खुल चुके थे। उनमें 1314 बच्चे पढ़ रहे थे। साथ ही, बालक-बालिकाओं के लिए अलग-अलग आवासी विद्यालय चलने लगे थे, जिनमें भारतीय ईसाई शिक्षकों की संख्या ज्यादा थी। 1896 ई. में गोस्सनर हाइर्द सकूल की स्थापना हुई। इस समय तक राँची जिले के विभिन्न क्षेत्रों में करीब 80 हाई स्कूल चलने लगे। 1914 ई. में इस इलाके में प्राथमिक एवं उच्च विद्यालयों की संख्या 295 हो गई। जी.ई.एल. चर्च के मिशनरियों ने जनजातीय भाषा एवं साहित्य के विकास को अपने धर्म के प्रचार का अंग बनाया तथा माध्यम के रूप में हिन्दी को अंगीकार किया। 1873 ई. में राँची में स्टोन लिथोग्रफिक प्रेस की स्थापना गोस्सनर मिशन द्वारा की गई। इस प्रेस में कुडुख, मुंडारी और हिन्दी भाषा की पुस्तके छपती थीं। 1880 ई. में 'घर बंधु' नामक एक पाक्षिक पत्रिका (हिन्दी) भी प्रकाशित की जाने लगी, जिसमें ईसाई धर्म के प्रचार को प्रमुखता दी जाती थी। 1902 ई. में जी.ई. एल.मिशन उराँव-अंग्रेजी शब्दकोश छापा गया। 1942 ई. तक राँची व झारखंड के कई इलाकों में गोस्सनर मिशन द्वारा संचालित 107 प्राथमिक विद्यालय, नौ मध्य विद्यालय और दो उच्च विद्यालय संचालिए किए जा रहे थे। इन स्कूलों में कुल 2680 छात्र-छात्राएँ शिक्षा ग्रहण करते थे।

गोस्सनर मिशन के साथ ही एस.पी.जी मिशन ने 1870ई. से 1908ई. तक 118 स्कूलों की स्थापना की। बाद में दस वर्षों में इनकी संख्या 157 तक पहुँच गई। इनमें बालिकाओं के लिए चलने वाले विद्यालयों की संख्या 23 थी। ये विद्यालय प्रायः आवासीय थे, जहाँ जनजातीय छात्रों के लिए निःशुल्क आवास और वस्त्रों की व्यवस्था की जाती थी। एस.पी.जी मिशन ने ही 1898 ई. में संत मिखाइल नेत्रहीन विद्यालय की स्थापना रांची में की।। 1909 ई. में महिला शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए महिला प्रशिक्षण विद्यालय खोला गया।[12]

रोमन कैथलिक मिशन का आगमन इस क्षेत्र में 1865 ई. में हुआ। अपने आगमन से 1947 ई. तक इस मिशन द्वारा 697 विद्यालय खोले गए। इनमें प्राथमिक से लेकर उच्च विद्यालय तक शामिल थे। आर.सी.मिशन ने ही 7 जुलाई, 1944 ई. को राँची में संत जेवियर कॉलेज की स्थापना की, जिसकी गणना झारखंड की अग्रणी शिक्षण संस्थानों में होती है। हालाँकि इसके बहुत पहले 1889 ई. में डबलिन यूनिवर्सिटी मिशन ने संत कोलंबा कॉलज की स्थापना कर झारखंड में उच्च शिक्षा की नींव डाल दी थी।

1940 ई. में महात्मा गाँधी और देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की प्रेरणा के फलस्वरूप टाना भगतों की सक्रिय भागीदारी से झारखंड के जनजातीय अंचल में

'सेवा केन्द्र' की स्थापना की गई। इस 'सेवा केन्द्र ' से संबद्ध लोगों ने 1942 ई. के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में सक्रिय भागीदारी निभाई 1946 ई. में सेवा केन्द्र को 'आदिम जाति सेवा मंडल' में बदलकर उसकी गतिविधियों को पूरे छोटानागपुर में प्रसारित करने का निर्णय लिया गया। आजादी के पश्चात् 'आदिम जाति सेवा मंडल' ने 'ठक्कर बापा योजना' के तहत शिक्षा के प्रसार का बीड़ा उठाया। सरकार सहायता पाकर दुर्गम आदिवासी अंचलों में 'मंडल' ने शिक्षा की मशाल जलाई।[13] आदिम जाति सेवा मंडल ने 1962-63 तक झारखंड के विभिन्न जिलों में 462 विद्यालयों की स्थापना की। उनमें 78 उच्च प्राथमिक, 13 मध्य विद्यालय और 6 उच्च विद्यालय थे। 20 छात्रावास भी खुले। सरकार से आर्थिक सहायता पाकर आदिम जाति सेवा मंडल ने झारखंड क्षेत्र में सुदूर जंगल व पहाड़ों पर बसने वाले विभिन्न जानजातियों के बीच शिक्षा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

आज़ादी से पूर्व सरकारी स्तर पर भी विद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें जिला स्कूलों का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। सरकारी स्तर पर सर्वप्रथम राँची में 1969 ई. राजकीय माध्यमिक विद्यालय की स्थापना हुई थी। उसे ही 1875 ई. में राँची जिला स्कूल के रूप में परिणत किया गया.। ज्ञात हो कि स्थानीय जनता की उच्च शिक्षा विशयक माँगों को देखते हुए जिला स्कूल में 1926 ई. से सरकार ने आई.ए. स्तर की पढ़ाई शुरू करके राँची में उच्च शिक्षा का श्रीगणेश किया और 1946 ई. में जिला स्कूल से आई.ए. की कक्षाओं को अलग करके गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज नाम से एक पृथक कॉलेज की सथापना की गई जो कालांतर में राँची कॉलेज, रांची के नाम से अभिहित किया गया। 1949 ई. में राँची कॉलेज में आई.एस.सी. स्तर की पढ़ाई तथा सितंबर, 1951 ई. से इतिहास और हिन्दी विषयों में स्नातक स्तर का शिक्षण आरंभ हुआ।[14]

इसी क्रम में अन्य क्षेत्रों में जिला स्कूल जैसे शिक्षण-संस्थान खोले गए, जिनकी भूमिका शिक्षा प्रसार में महत्वूर्ण रही।

आजादी के पश्चात् बिहार व केंद्र सरकार द्वारा जनजातीय इलाकों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए कई स्कूल-कॉलेजों की स्थापना की गई। कई पुराने विद्यालय, जो गैर-सरकारी संगठनों-संस्थाओं द्वारा संचालित थे, का अधिग्रहण किया गया। लेकिन झारखंड आज भी शिक्षा के मामले में बेहद पिछड़ा हुआ है। जनजातीय शिक्षा की स्थिति तो और चिंतनीय है। 1991 ई. की जनगणना के मुताबिक झारखंड राज्य की 2 करोड़ 18 लाख आबादी में से सिर्फ 73 लाख 52 हजार लोग ही शिक्षित अथवा साक्षर थे। प्रतिशत के लिहाज से यह 33.66 प्रतिशत

था। पुरुष साक्षरता का प्रतिशत 46 जबकि महिला साक्षरता सिर्फ 20.18 प्रतिशत थी। राज्य बनने से पहले झारखंड की यह तस्वीर इसके आंतरिक उपनिवेश के दिनों की भयावह कहानी कहती है। क्योंकि 2000 में राज्य जाने के बाद झारखंड ने शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है और इस मामले में उसने बिहार को भी पीछे छोड़ दिया है। 2011 के जनगणना के अनुसार अब झारखंड की साक्षरता प्रतिशत 67.63 है। इसमें पुरुष साक्षरता दर 78.45 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता की दर 56.21 तक पहुंच चुकी है। 1991 के मुकाबले साक्षरता के क्षेत्र में लगभग 35 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।

प्राथमिक शिक्षा

झारखंड की शैक्षिक स्थिति के लिहाज से यह तथ्य देखा जा सकता है कि छठे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वे के अनुसार झारखंड में सरकारी विद्यालयों की कुल संख्या करीब 21319 है। उनमें 445 प्राइमरी विद्यालय ऐसे हैं जहाँ एक भी शिक्षक नहीं है। बिना शिक्षक के उन स्कूलों में पढ़ाई कैसे चलती है, यह बहस का विषय है। उसके साथ आश्चर्य का विषय यह है कि झारखंड राज्य के करीब 40 प्रतिशत प्राइमरी स्कूल ऐसे हैं जहाँ सिर्फ एक शिक्षक एक साथ पाँच यानी एक से पाँचवीं कक्षा तक के बच्चों को पढ़ाते हैं। सिर्फ एक शिक्षक वाले ऐसे स्कूलों की संख्या करीब 4857 है। नवगठित झारखंड राज्य में अवस्थित 16136 सरकारी प्राइमरी स्कूलों में करीब 2372 स्कूल ऐसे हैं जिनकों एक छत तक नसीब नहीं है, भवन-कमरे की बात तो दूर रही। ये स्कूल खुले आसमान के नीचे चलते हैं या फिर सिर्फ सरकारी कागज पर। करीब 1955 प्राइमरी सकूल ऐसे हैं जहाँ पाँच कक्षाओं की पढ़ाई सिर्फ एक-एक कमरे में होती है। राज्य के प्राइमरी से लेकर उच्च विद्यालयों तक में 50 प्रतिशत ऐसे विद्यालय हैं जहाँ पीने का पानी की व्यवस्था नहीं है। करीब 90 प्रतिशन स्कूलों में पेशाबखाने का इंतजाम नहीं है। करीब 85 प्रतिशन में शौचालय नहीं है।[15]

शिक्षा के संदर्भ में झारखंड सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों (2003) के मुताबिक 2,69,09,428 की जनसंख्या में 54.13% लोग साक्षर हैं। इनमें पुरुष साक्षरता 67.94% है। जबकि महिला साक्षरता का प्रतिशत 39.38 है।

राष्ट्रीय स्तर पर साक्षरता का प्रतिखत 65.38 है। राष्ट्रीय स्तर पर पुरुष साक्षरता 75.85% है वहीं, महिला साक्षरता 54.16% है।

झारखंड राज्य में कार्यरत विद्यालयों का विवरण इस प्रकार है।

विद्यालय	संख्या
(क) राजकीय कृत प्राथमिक विद्यालय	16322
(ख) राजकीय कृत मध्य विद्यालय	4055
(ग) अल्पसंख्यक सहित गैर-सरकारी प्रारंभिक विद्यालय	817
(घ) प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय डायट की संख्या	24
(ड़) राजकीय कन्या मध्य विद्यालय	16
(च) राजकीय बुनियादी विद्यालय	123[16]

झारखंड में कई ऐसे टोले व गाँव हैं जो अभी भी विद्यालय-विहीन हैं। ऐसे टोलों में अभियान विद्यालय अथवा शिक्षा गारंटी केन्द्र खोले गए हैं। इनका विवरण इस प्रकार है -

झारखंड में कुल विद्यालय-विहीन टोले	11778
खोले गए अभियान विद्यालय/शिक्षा गारंटी केन्द्र	11514

झारखंड में राजकीयकृत प्रारंभिक विद्यालयों में शिक्षकों का घोर अभाव है। यहाँ के विद्यालयों में शिक्षकों के जितने स्वीकृत पद हैं, उसके मुकाबले शिक्षकों की संख्या लगभग आधी है। इसकी पुष्टि राज्य सरकार के आँकड़ों से होती है।

राजकीय प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षकों की स्थिति :

शिक्षक	स्वीकृत	कार्यरत	रिक्त
प्रधानाध्यापक	3264	1444	1820
स्नातक प्रशिक्षित	2548	1411	1137
मैट्रिक प्रशिक्षित	58089	48866	9223

इसी प्रकार बुनियादी विद्यालयों में शिक्षकों के ढेर सारे पद रिक्त हैं-

शिक्षक	स्वीकृत	कार्यरत	रिक्त
प्रधानाध्यापक	123	78	45
स्नातक प्रशिक्षित	85	58	27
मैट्रिक प्रशिक्षित	1110	640	470

स्रोतः मानव संसाधन विभाग, झारखंड सरकार

झारखंड के विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं का घोर अभाव है। यहाँ के विद्यालयों के बुनियादी सुविधाओं की स्थिति दयनीय है। शिक्षक, कमरे, पेयजल, पेशाबखाने और शौचालयों के मामले में झारखंड के विद्यालय बहुत ही पिछड़े हैं। इससे संबंधित एक विवरण में विद्यालयों में उपलब्ध बुनियादी सुविधाओं की स्थिति देखी जा सकती है -

उपलब्ध बुनियादी सुविधाएँ (प्रतिशत में)

क्र.	जिले	पेयजल	पेशाबखाना	शौचालय
1	गोड्डा	40.94	4.78	5.89
2	साहेबगंज-पाकुड़	32.51	8.69	11.71
3	दुमका-जामताड़ा	50.33	6.24	9.41
4	देवघर	59.35	11.28	12.30
5	धनबाद	50.64	17.79	15.78
6	गिरिडीह	48.25	9.16	7.82
7	हजारीबाग-कोडरमा	60.53	12.59	11.74
8	पलामू-लातेहार	48.54	9.45	10.18
9	लोहरदगा	47.98	12.43	10.40
10	गुमला-सिमडेगा	46.09	10.74	9.73
11	राँची	53.84	12.11	12.06
12	पश्चिमी सिंहभूम	62.83	21.07	19.81
13	सरायकेला खरसवां	43.26	8.34	6.34
14	बोकारो	50.71	12.73	10.77
15	चतरा	53.74	7.63	8.27
16	गढ़वा	61.62	9.26	7.94

झारखंड सरकार द्वारा जारी आँकड़ों के मुताबिक वर्ष 2001-03 में कक्षा एक से पाँच तक 24,91,150 बच्चे विद्यालयों में नामांकित हुए जबकि कक्षा छह से आठ में 3,76,044 बच्चे और अभियान विद्यालय शिक्षा गारंटी केन्द्र में 2,43,020 बच्चों का नामांकन हुआ। झारखंड राज्य में छह से 14 वर्ष की आयु के बच्चों की संख्या 55.69 लाख है। जिनमें से 31.10 लाख अर्थात् 55.8 प्रतिशत बच्चे ही स्कूलों में नामांकित हुए हैं। यानी 24.59 लाख बच्चे अभी भी स्कूलों से बाहर है। उच्च कक्षाओं तक पहुँचते-पहुँचते यह संख्या और भी ज्यादा हो जाती है। निर्धनता,

विवशता और और अन्य कई कारणों से हर साल बच्चों की संख्या स्कूलों में घटती चली जाती है। स्कूल-कॉलेजों से बाहर रहने वाले छात्रों की संख्या कम करने के लिए सरकारी स्तर पर कई प्रयास किए गए हैं, लेकिन उनका अपेक्षित सकारात्मक परिणाम नहीं मिल पा रहा है। झारखंड ऐसा प्रदेश है जहाँ मैट्रिक पास करने के बाद भी एक लाख से अधिक कॉलेजों का मुँह नहीं देख पाते। इनमें अधिकांश सरकारी स्कूलों के छात्र-छात्राएँ होती हैं। आर्थिक अभावों की वजह से तकरीबन डेढ़ लाख छात्र-छात्राएँ आठवें वर्ग तक पहुँचते-पहुँचते घरों में सिमट जाते हैं। झारखंड सरकार ने गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर कर रहे परिवारों के बच्चों को शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से हर बच्चो को एक रुपए प्रतिदिन देने की योजना शुरू की थी, इसके बावजूद राज्य के सरकारी स्कूलों में बच्चों का औसत पूर्ववत् है।

वर्ष 2002 में झारखंड में मानव संसाधन विभाग द्वारा जो आँकड़े उपलब्ध कराए गए, उसके मुताबिक 'राज्य के सरकारी स्कूलों में आठवें वर्ग में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या मात्र एक लाख 75 हजार 499 थी, जबकि वर्ग एक में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या चार लाख 20 हजार चार सौ दो थी। इस तरह दोनों वर्गों में एक लाख 44 हजार का फर्क है। राज्य के 20 जिलों के जारी किए गए आँकड़ों के अनुसार पहले वर्ग के छात्र-छात्राओं की संख्या चार लाख 20 हजार 402, दूसरे वर्ग में चार लाख 83 हजार 257, तीसरे वर्ग में तीन लाख 39 हजार 447, चौथे वर्ग में दो लाख 73 हजार 545, पाँचवें वर्ग में दो लाख 57 हजार 963, छठे वगे में तीन लाख 16 हजार 343 व सातवें वगै में दो लाख 52 हजार 933 छात्र छात्राएँ थे। इसी तरह चतरा राज्य का एकमात्र ऐसा जिला है जहाँ आठवें वगे में सबसे कम 1682 छात्र-छात्राएँ और सबसे अधिक धनबाद में 23,298 थे। बोकारो व धनबाद राज्य के एसे जिले है। जहाँ पहले वर्ग में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या सबसे अधिक थी। इन दोनों जिलो में पहले वर्ग में 50-50 हजार छात्र पढ़ रहे थे, जबकि पश्चिम सिंहभूम में मात्र 1369 छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थें पश्चिमी सिंहभूम राज्य का ऐसा जिला था जहाँ वर्ग एक से लेकर वर्ग पाँच तक पढ़ने वालों की संख्या सबसे कम थी। वर्ग दो में 5059 वर्ग तीन में 3599, वर्ग चार में 2959 व वर्ग पाँच में 2773 छात्र-छात्राएँ थे। इसी तरह गिरिडीह एकमात्र ऐसा जिला है जहाँ वर्ग दो में सबसे अधिक 52,061 छात्र-छात्राएँ पढ़ रहे थे। वर्ग तीन में धनबाद का नाम आता है जहाँ 32,326 छात्र-छात्राएँ पढ़ रहे थे। वर्ग चार में भी धनबाद का नाम है। चहाँ 26,149 छात्र-छात्राएँ पढ़ रहे थे। वर्ग पाँच में गिरिडीह का नाम सबसे ऊपर था। यहाँ पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या 32,870 थी वर्ग छह में

राँची का स्थान सबसे ऊपर था। यहाँ 36,910 छात्र-छात्राएँ थे। इसी तरह वर्ग सात में धनबाद का स्थान सबसे ऊपर था। यहाँ 29,882 छात्र-छात्राएँ पढ़ रहे थे।[17]

मानव संसाधन विकास विभाग, झारखंड सरकार ने वर्ष 2002-03 में किए गए कार्यों का जो विवरण दिया है, उकसे तहत झारखंड ग्राम शिक्षा अभियान, निःशुल्क पाठ्य-पुस्तकों का वितरण, सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रम तथा वर्ग एक से अंग्रेजी विषय को अनिवार्य बनाना रहा है। इन कार्यों का क्या प्रभाव पड़ा है या पड़ सकता है, इसका आकलन सरकार ने इस प्रकार किया है।

1. झारखंड ग्राम शिक्षा अभियानः यह योजना वितीय वर्ष 2002-2003 में प्रारंभ की गई। इसके अंतर्गत राज्य के कुल 11778 विद्यालय विहीन ग्रामों में, जहाँ से निकटतम प्राथमिक विद्यालय की दूरी एक किलोमीटर से अधिक है, ग्राम शिक्षा समितियों का गठन कर अभियान विद्यालय स्थापित किए जाते हैं। अब तक 11,514 अभियान विद्यालय स्थापित किए गए हैं जिसमें दो लाख 43 हजार 20 बच्चे नामांकित हुए हैं। शिक्षा के विकास में समुदाय की सहभागिता को महत्वपूर्ण मानते हुए राज्य सरकार ने इन अभियान विद्यालयों में शिक्षामित्रों के चयन, शिक्षा स्थल के चयन, शिक्षण के समय का निर्धारण तथा देखभाल आदि सभी प्रशासनिक दायित्व ग्राम शिक्षा समितियों को दिया है। इन विद्यालयों पर व्यय होने वाली राशि-यथा मानदेय तथा शैक्षिक अनुदान, ग्राम शिक्षा समिति के खाते में दी जाती है तथा समिति इसका वितीय प्रबंध करती है। इन विद्यालयों की स्थापना से यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है। कि वर्ष 2003 में सभी 6-14 आयु वर्ग के बच्चों को किसी न किसी प्राथमिक विद्यालय/ अभियान विद्यालय/ शिक्षा गारंटी केंद्र मे नामांकित कर लिया जाए।

2. निःशुल्क पाठ्य पुस्तकों का वितरणः यह योजना वितीय वर्ष 2002-2003 में प्रारंभ की गई है। इसके अंतर्गत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सभी छात्र तथा सभी कोटि की छात्राओं के बीच शैक्षिक वर्ष 2002-03 में तीन लाख सेट निःशुल्क पाठ्य-पुस्तकों की आपूर्ति की गई है। इस योजना के फलस्वरूप कमजोर एवं अभिवंचित वर्ग के छात्र/ छात्राओं की छीजन दर कम किया जा सका है तथा इनका नामांकन बढ़ा है।

3. सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रम तथा वर्ग एक से अंग्रेजी लागू करनाः राज्य सरकार द्वारा शिक्षा के स्तर को राष्ट्रीय स्तर तक लाने तथा गुणवता बढ़ाने के उद्देश्य से वर्ग एक से दस तक सी.बी.एस.ई पाठकक्रम लागू किया गया है। ताकि पूरे राज्य में शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर की गुणवता प्रापत की जा सके। इसका पद्देश्य बच्चों

को राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित प्रतियोगिताओं में सफलता दिलाना भी है। इस पाठ्यक्रम के लागू होने से सरकारी तथा निजी विद्यालयों के बीच प्रतिस्पर्द्धा को भी बढ़ावा दिया जा सकेगा।

राज्य में शिक्षा की गुणवता विकास को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में वर्ग एक से ही अंग्रेजी विषय की शिक्षा लागू की गई है। सभी सरकारी विद्यालयों में इस उद्देश्य से एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तकें पढ़ाई जा रही है।[18]

साक्षरता एवं शिक्षा की स्थिति में सुधार के लिए सरकारी स्तर पर कई कार्यक्रम व योजनाएँ बनाई गई। परन्तु एक के बाद एक नाम बदलते रहे, अपेक्षित परिणाम हासिल नहीं किए जा सके। वयस्क शिक्षा,अनौपचारिक शिक्षा जैसे कई कई कार्यक्रम जब लक्ष्य प्राप्ति में मददगार साबित नहीं हुए तो 1988 ई. में केन्द्रीय सहायता से साक्षरता मिशन प्रारंभ हुआ। 1990-91 ई. में राँची के अतिरिक्त बिहार के अन्य जिलों में प्राथमिकता के साथ कार्यान्वित किया गया। 1991-94 के दौरान इसे विस्तार दिया गया। जिसमें झारखंड के दुमका और धनबाद जिलें शामिल किए गए। प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के उद्देश्य के तहत 1991 ई में 'बिहार शिक्षा परियोजना' की स्थापना सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के अंतर्गत की गई। इस परियोजना मे यूनिसेफ, केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा 3:2:1 के अनुपात में व्यय की हिस्सेदारी तय हुई। 1992 में यह योजना आरंभ की गई। झारखंड शिक्षा परियोजना परषिद् कार्यान्वयन संस्था (एस.आई.सए) के रूप में भारत सरकार के सहयोग से राज्य के नौ जिले-चतरा, दुमका (जामताड़ा सहित) पूर्वी सिंहभूम, हजारीबाग (कोडरमा सहित), राँची एवं पश्चिमी सिंहभूम (सरायकेला-खरसवां सहित) में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) कार्यान्वित कर रही है। इस कार्यक्रम का अतिरिक्त उद्देश्य यह भी है कि 15 से 35 वर्ष की आयु वाले निरक्षरों को सामान्य तथा व्यावहारिक शिक्षा उपलब्ध कराई गई।

झारखंड राज्य में प्राथमिक शिक्षा की अद्यतन स्थिति कैसी है इसे हम अगले पृष्ठ पर दिये गये तालिका के माध्यम से अवलोकन कर सकते हैं। तालिका से स्पष्ट होता है कि राज्य की शैक्षिक स्थिति अब भी संतोषजनक नहीं है और शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न अभियानों एवं कार्यक्रमों को और प्रभावी बनाने की जरूरत है।

झारखंड प्राथमिक शिक्षा का समेकित रिपोर्ट कार्ड 2008-09

संकेतक	प्राइमरी	प्राइमरी एवं अपर प्राइमरी	प्राइमरी/अपर प्राइमरी/सेकेंडरी हायर सेकेंडरी	अपर प्राइमरी	अपर प्राइमरी, सेकेंडरी एवं हायर सेकेंडरी	योग
वर्तमान में कुल स्कूल	27744	12243	664	118	1081	41850
पिछले वर्ष में कुल	28802	11296	594	213	1039	41944
कुल सरकारी स्कूल	27,057	11,491	315	102	803	39,768
कुल निजी स्कूल	687	752	349	16	278	2,082
कुल सरकारी स्कूल	26,227	10,933	251	95	663	38,169
कुल निजी स्कूल (ग्रामीण)	584	517	218	12	192	1,523
कुल नामांकन : पिछला	2,889,273	3,384,945	244,280	30,038	171,136	6719672
कुल नामांकन : सर.	2,456,695	3,272,688	142,609	15,741	114,789	6,002,522
कुल नामांकन : निजी	91,127	235,049	145,756	4,369	61,310	537,611
कुल नामांकनः सर. स्कूल (ग्रामीण)	2,390,585	3,031,338	111,068	15,490	96,005	5,644,486
कुल नामांकनः निजी स्कूल	72,542	151,464	71,053	2,400	38,755	336,214
कुल शिक्षक : पिछला सत्र	64041	68127	7277	1016	7861	148322
सरकारी शिक्षक	58,436	66,793	3,236	487	5,349	134,301
निजी शिक्षक	2,706	6,081	5,056	126	2,616	16,585

3. जनजातीय उपयोजना क्षेत्र एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

मिशनरियों का आगमन, आंदोलन और आधुनिक शिक्षा का आरंभ
आगमन : गोस्सनर मिशन - 1845-1900 ई.

रियासतें और सूबे

ब्रिटिश पीरियड में उनका शासन दो प्रकार से चलता था। रियासत जिनके शासक राजा थे। अंग्रेजों के साथ उनकी मित्रता भी थी और कुछ राशि सालाना चुकाते थे। आवश्यकता पड़ने पर सेना द्वारा मदद भी करते थे। क्योंकि उन्हें अपनी हिफाजत के लिए सेना रखने की अनुमति थी।

पूर्वी क्षेत्र में कोलकाता राजधानी थी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा मिलाकर बंगाल प्रेसीडेंसी के नाम से जाना जाता था। यहाँ अंग्रेजों का शासन था। कुछ छोटे रजवाड़े थे। बिहार और उड़ीसा मे राजाओं की संख्या ज्यादा थी। लेकिन दक्षिण बिहार में रामगढ़, छोटानागपुर, सराईकेला खरसाँवा और पोड़ाहाट की ही हस्ती थी। दक्षिणी बिहार अपने घनघोर जंगलों के कारण लगभग अविजित था। यह पूर्णतः छोटे जगीरदारों के हाथों में थी।

दूसरी बात यह है कि उस समय तक इस क्षेत्र से आर्थिक उपलब्धिं ही एकमात्र ध्येय था। इस क्षेत्र के विकास जैसे मुद्दे उनके नहीं थे। बल्कि वे इन क्षेत्रों में होने वाले विद्रोहों से परेशान थे। ऐसे समय ही सन् 1845 ई. में जर्मनी के चार मिशनरी कलकत्ता होते हुए राँची आ पहुँचे।

मिशनरियों का आगमन और उनके कार्य

मिशनरियों ने कहीं पर झारखंड के गरीब, पीड़ित लोगों की तस्वीर देखी थी। उनके प्रमुख ने इन गरीबों के बीच धर्म फैलाने और सेवा करने को भेजा था।

बीरू परगना

उस समय सिमडेगा क्षेत्र छोटानागपुर रियासत के बीरू परगने के रूप में जाना जाता था। कुरडेग, कोचेडेगा और कोलेबिरा थाना के कुछ अंश थे। उस समय

यहाँ के जागीरदार हुकुम सिंह बेहरा थे। उन्हें यह जागीर दुर्जन साल से मिली थी। हुकुम सिंह सिंहदेव के बाद क्रमशः हिम्बर सिंह देव, भीम सिंह देव, भीम सिंह सिंहदेव आदि हुए। भीम सिंह सिंहदेव छोटानागपुर के राजा को सिक्का लगान के रूप में देते थे।[19]

ईसाई मिश्नरी 1945 ई. के बाद चार वर्षों तक कुछ नहीं कर सके। जमींदरों ने धर्मांतरण का भारी विरोध किया। लेकिन इन मिश्नरियों ने इन्हें आदिवासी (थ्पतेज मजजसमत) माना। 1850 ई. में कुछ संदेह और असंतोष के बाद चार उराँव ईसाई बने। 1857 ई. तक 700 ईसाई बन चुके थे लेकिन मिश्नरियों के इस कार्य से जमींदार क्रोधित थे। उन्होंने 1857 ई. में चर्च पर हमला किया। ईसाई भागकर तिलमिंग गाँव के पास जंगल में छिप कर स्वयं को बचाया। जर्मन मिश्नरी कलकत्ता भाग गए।

बीरु परगना में काम

इस बीच (1845-1857) मिशनरियों ने स्वास्थ्य और शिक्षा को लेकर काफी काम कर लिया था। सिमडेगा जिला के घनघोर जंगलों के बीच जाकर-

1873 ई. में टकरमा गाँव (कोलेबिरा थाना)

1892 ई. में खुंटीटोली (कोचेडेगा थाना)

1899 ई. में किनकेल (कुरडेग थाना)

1903 ई. कोरोंजो (कोचडेगा थाना) [20]

में प्राथमिक विद्यालय स्थापित कर लिया था। स्वास्थ्य सेवाएँ दे रहे थे। उनके व्यवहार और मदद से आकर्षित होकर झुंड में लोग ईसाई धर्म ग्रहण कर रहे थे। यह याद रखना चाहिए। इन्हीं उतार-चढ़ाव के बीच 1875 ई. में बिरसा मुण्डा का जन्म हुआ था। उन्होंने ईसाइयत ग्रहरण की थी। खूँटी सबडिविजन के सलगा, बुड़जू और चाईबासा में शिक्षा ग्रहण की थी। चाईबासा में ही मिश्नरियों से मतभेद होने के कारण ईसाईयत भी त्यागा। सरवदा के चर्च पर और फादर हौफमेन पर हमला किया। बिरसा मुण्डा का विश्वास था कि फादर हौफमैन अंग्रेज शासकों में से एक थे। बिरसा मुण्डा के आन्दोलन का फल यह निकला कि वास्तव में आदिवासियों की जमीन छीनी जा रही थी। इसी के फलस्वरूप हौफमैन तथा सरकार ने मिलकर जमीन संबंधी एक्ट 'छोटानागपुर टेनेन्सी एक्ट 1908' तैयार किया।

मिश्नरी और आदिवासी भाषाएँ

मिश्नरियों ने धर्मप्रचार तथा लोगों से अधिक निकटता बनाने के लिए यहाँ की भाषाएँ सीखीं। राँची में ही जर्मन मिशनरियों ने बोर्डर और डे स्कीलरों को लेकर स्कूल खोले थे। छात्रावास में 110 लड़के थे। डे स्कोलरों में हिन्दू और मुस्लिम लड़के भी थे।

प्रथम बालिका विद्यालय

1893 ई. में ही 50 बालिकाओं के लिए एक स्कूल और छात्रावास खोला गया। यह आज का बेथेसदा स्कूल है। बेथेसदा का अर्थ होता है 'दया का घर'।[21]

इन मिश्नरियों ने अपने काम को सुचारू ढंग से अचलाने के लिए नाम मात्र के वेतन पर लोगों को लगाया था।

3 यूरोपियन मिश्नरी

2 स्थानीय पंडित

6 आदिवासी शिक्षक

स्थानीय पंडितों से छात्र भी पढ़ते थे और मिश्नरी भी पढ़ा करते थे।

उस समय के विद्यालयों को मिडिल वर्नाक्यूलर विद्यालय कहा जाता था।

मातृभाषा और शिक्षा का अन्तर्संबंध : अनौपचारिक शिक्षा

मिश्नरियों के द्वारा : सिमडेगा जिला में भी मिशनरी रहे। गोस्सनर एवंजेलिकल मिशन के द्वारा प्राथमिक उच्च प्राथमिक उच्चतर प्राथमिक विद्यालय स्थापित किए गए। इनमें शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रही।

क्रिश्चियन लिटरेरी सोसायटी की स्थापना : अनौपचारिक शिक्षा

जी.ई.एल चर्च ऑटोनोमस बन चुका था। अतः वहाँ स्तुति गीत एवं प्रार्थनाओं का अनुवाद किया जाने लगा। यह देखकर चर्च ने सन् 1945 ई. में क्रिश्चियन लिटरेरी सोसाइटी गठित किया। तब पादरी जिलो पी. तिग्गा अध्यक्ष थे। उनके पुत्र सोसायटी के अध्यक्ष बने। कुछ काम हुआ। मातृभाषाओं विशेष कर कुडुख, मुण्डारी, और खड़िया भाषाओं में गीत संग्रह क्रमशः कुडुख डंडी, मुंडारी

दुरङ, खड़िया आलोङ पुस्तकें छपीं। इसके अतिरिक्त बाइबल से लेकर यहाँ के परिवेश के अनुसार कहानियों के रूप में कुछ पुस्तकें मातृभाषाओं में छपीं। किन्तु ये अनौपचारिक धार्मिक शिक्षा के लिए प्रयुक्त हुई।[22]

आगे चलकर क्रिश्चियन लिटरेरी सोसायटी बंद हो गया। बंद होने के कारण आपसी विवाद था। कुछ नवयुवक थे जो मातृभाषा को पिछड़ापन मान रहे थे। जो भी हो इस छोटी-सी अवधि में किए गए काम ने जड़ पकड़ ली थी। जो उम्रदार लोग थे वे लगातार काम कर रहे थे।

स्वतंत्रता और मातृभाषा

15 अगस्त 1947 ई. को देश आजाद हुआ। इसके साथ ही मातृभाषाओं का समय पलटा। देश के अन्य भागों में दलित और वंचित लोगों के पिछड़ेपन को दूर करने की आवश्यकता हुई। विकास की नीतियों और क्रार्यक्रमों को लागू करने, अंतिम आदमी तक पहुँचाने का सफल माध्यम मातृभाषा ही चुना गया। पाया गया कि बिहार में आदिवासियों की संख्या अधिक है। उन्हें शिक्षित करने और राष्ट्रीय विकास में भागीदार बनाने के लिए उनकी मातृभाषाओं का सहारा लिया जाए। बिहार सरकार ने संताल बहुल संथाल परगने को 'होड़ संवाद' और छोटानागपुर को 'आदिवासी' नामक समाचार-पत्र और पत्रिका दिए।

'होड़ संवाद' और 'आदिवासी' पत्र-पत्रिका

'होड़ संवाद' संताली भाषा में दुमका से प्रकाशित होती थी। इसके प्रथम संपादक डोमन साहू 'समीर' और उनके बाद बाबू लाल मुर्मू संपादक बने।

छोटानागपुर में कई, जातियाँ-जनजातियाँ निवास करती हैं, इसलिए 'आदिवासी' बहुभाषिक पत्रिका रही। यथा खड़िया, मुंडारी, हो संताली, कुडुख, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया और कुरमाली। इन भाषाओं में सरकारी नीतियों और कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार होता था। इन भाषाओं में कहानी, कविता और लेख भी छपते थे। सिमडेगा जिला से नागपुरी, मुंडारी और खड़िया भाषा की रचनाएँ छपती थीं। इस पत्रिका में शोध से संबंधित आलेख भी प्रकाशित होते थे। उस समय सिमडेगा जिले से जो लेखक उभरे, वे हैं -

नागपुरीः- करमदयाल, रामजीत सेनापति, सोहन बड़ाईक, और आज के मुकुंद नायक। इन्होंने नागपुरी भाषा, गीत और नृत्य को विदेशों

में भी पहुंचाया।

खड़ियाः- प्यारा केरकेट्टा, अगुस्टीन डुंगडुंग, सरोज केरकेट्टा, रोज केरकेट्टा और आज की वंदना टेटे।

मुंडारीः- वीरसिंग मुंडा, सुलेमान बडिंग (आगे चलकर झारखड पार्टी की पत्रिका 'अबुआः झारखंड' के संपादक बने), सुलेमान बागे आदि।

कुडुखः- सिमडेगा जिले में तब तक कुडुख को कोई लेखक तैयार नहीं हुआ था।

सरकारी प्रयास (उपयोजनाएँ)

पूरे छोटानागपुर और संताल परगने के आदिवासियों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में उपयोजनाएँ बनीं। इसके तहत निम्न काम हुए -

1. आदिवासी सेवक संघ - 1940 ई. में बंगाल से कई राष्ट्रभक्त युवक बिहार आए थे। उन्होंने राँची स्थित निवारणपुर में डेरा डाला था। यहीं से उन्होंने आदिवासियों के बीच शिक्षा, स्वास्थ्य और राष्ट्रीयता से जोड़ने का काम आरंभ किया। एक विजय राय जो विजय दा के नाम से जाने जाते हैं उन्होंने गूंगों-बहरों के लिए विद्यालय खोला।

2. ब्रह्मचारी संघ विद्यालय - यह अब हाई स्कूल है। ये दोनों संस्थाएँ आज तक हैं।

3. युवक क्षितीशचंद्र राय ने 'आदिवासी सेवक संघ' की स्थापना की। इन्होंने तत्कालीन पूरे छोटानागपुर क्षेत्र को अपना कार्यक्षेत्र चुना। प्रत्येक जिले में अपन्ना साथी कर्मठ युवकों को बनाया। लेकिन 1948 ई. में क्षयरोग से इनकी मृत्यु हो गई।

क्षितीश चन्द्र राय की मृत्यु के बाद नारायण जी नामक युवक ने इस काम को आगे बढ़ाया। संस्था का नाम 'आदिम जाति सेवा मंडल' कर दिया गया। सिमडेगा एवं गुमला में आश्रम पद्धति से छात्रावास चलाए गए। बाद में यह 'भारतीय आदिम जाति सेवक संघ' से जुड़ गया।

अध्यक्ष का प्रभावः- इस संस्था के अध्यक्ष तत्कालीन और भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद थे। स्वाभाविक था कि संस्था को फलने-फूलने में देर नहीं लगी। पच्चीस-तीस रुपयों के वेतन पर कर्मठ युवक चुने गए। ये घने जंगलों के बीच जाकर कार्य कर रहे थे। काम था स्कूल खोलना, नेताओं की जयन्तियाँ

मनाना, प्रभात फेरी निकालना और कांग्रेस पार्टी का प्रचार करना।

व्यवस्थाः- आदिवासियों में जागृति लाने के लिए सदस्यता अभियान चला। तीन आजीवन सदस्य नारायण जी (मंत्री), प्यारा केरकेट्टा (सदस्य), भैयाराम मुंडा (सदस्य) बने। प्यारा केरकेट्टा को सिमडेगा जिला का प्रभार मिला। उन्होंने सिमडेगा जिला के दुर्गम स्थलों में स्कूल तो खोले, लेकिन शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रखा।

1947 ई. के जनवरी माह में जब सिमडेगा में कार्यारंभ किया तब श्री राय द्वारा स्थापित 'मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल' चलता था। तीन शिक्षक थे। रावेल केरकेट्टा (खुंटीटोली), स्टिफन बिलुंग और उड़ीसा के रथ महोदय जो हिन्दी और संस्कृत पढ़ाते थे। यही आज का सिमडेगा एस.एस. स्कूल है जिसमें प्लस 2 तक की पढ़ाई होती थी।[23]

ईसाई मिशन स्कूल

मिशन के विशेषकर रोम काथलिक मिशन के स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ाने पर विशेष बल दिया जाता था। इनमें विदेशी मिश्नरी भी शिक्षक और अधिकारी होते थे। विशेष बात यह है कि ये विदेशी मिशनरी सिमडेगा जिले की खड़िया, मुण्डारी और नागपुरी भाषाएँ सीखते थे। उसका उपयोग चर्च समूह को चलाने में करते थे।

फा. शांति पीटर नौरंगी

फादर शांति पीटर नौरंगी का जन्म सिमडेगा जिले के फरसाबेड़ा गाँव में हुआ था। वे पाँड़ (बुनकर) परिवार से थे। फादर बनने के बाद उनका निवास राँची कर दिया गया था। उन्होंने नागपुरी (सादरी) भाषा के लिए अथक परिश्रम किया। नागपुरी व्याकरण और नागपुरी शिष्ट साहित्य लिखा। उन्होंने काथलिक मिशन पर इतना दबाव बनाया कि उनके द्वारा रचे नागपुर गीत चर्चों में, प्रार्थना सभाओं में गाए जाने लगे। लेकिन शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही बनी रही।

प्रोटेंस्टंट मिशन स्कूल

इन स्कूलों में विदेशी मिशनरी नहीं थे। इन्होंने शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रखा।

बुनियादी विद्यालय

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की शिक्षा नीति के आधार पर सिमडेगा जिले में सन् 1948 में सिमडेगा सदर में बुनियादी विद्यालय आरंभ हुआ। इसके बाद दो और बुनियादी विद्यालय खोले गए। इनमें से एक टुकुपानी का बुनियादी विद्यालय है। सन् 1948 ई. में ही गाँधी जी की हत्या हो गई।

राजनीतिक कारणों से इसके बाद ये स्कूल ही उपेक्षित हो गए। तीनों विद्यालय टूटे-फूटे भवनों में चलते हैं। विद्यार्थियों की संख्या ठीक होती है। लेकिन पठन-पाठन की सामग्री उपलब्ध नहीं है।

इन विद्यालयों में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी है।

सरकारी स्तर पर स्वतंत्रता के बाद केन्द्र सरकार द्वारा जनजाति उपयोजना क्षेत्रों के सामाजिक एवं शैक्षणिक विकास के लिए अनेक कार्यक्रमों का संचालन होता है। इसके अन्तर्गत राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेश (के.शा.प्र.) को उनके प्रयासों के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता दी जाती है। सहायता मुख्यतः परिवार आधारित अर्थ उत्पादक क्षेत्रों जैसे - कृषि, बागवानी, सिचाई, भू संरक्षण, पशु पालन, वन, शिक्षा, कोआपरेटिव, मछली पालन तथा छोटे लघु उद्योगोंके लिए दी जाती है। राज्यों/के. शा.प्र. को सहायता धारा 275 (1) के अन्तर्गत जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासनिक सुधारों के लिए भी सहायता दी जाती है जिससे वहां प्रशासन राज्य के अन्य क्षेत्रों जैसा हो सके। फंड का कुछ हिस्सा जनजातीय विद्यार्थियों के लिए आवासीय स्कूल बनाने तथा शिक्षा पर खर्च किया जाता है।

आदिम जनजातीय समूहों के लिए योजना

पुरानी कृषि पद्धति, निम्न साक्षरता स्तर अथवा रूकी हुई जनसंख्या के आधार पर 15 राज्यों/के.शा.प्र. में 75 जनजातीय समूह पहचाने गए हैं जिन्हें आदिम जनजातीय समूह के वर्ग में रखा जाता है। वर्ष 1998-99 से एक नई केन्द्रीय योजना इन समूहों के विकास के लिए शुरू की गयी जिसके तहत समन्वित जनजाति विकास प्रस्ताव जनजाति शोध संस्थानों और गैर सरकारी संस्थाओं को वर्तमान प्रस्तावों/गतिविधियों के लिए जो कि किसी अन्य योजना के अन्तर्गत नहीं आता है को वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाएगी।

जनजाति शोध संस्थान

आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मणिपुर, एवं त्रिपुरा राज्यों द्वारा 14 जनजातीय शोध संस्थानों की स्थापना की गई है। इन संस्थानों का कार्य राज्य सरकार को योजना बनाने में सहायता, शोध करना एवं विकास का अध्ययन, पारंपरिक नियमों को कोडिफाई करना प्रशिक्षण देना, सेमिनार तथा कार्यशालाओं का आयोजन करना है। इन सब संस्थानों के पास जनजातीय हस्तशिल्प को दर्शाने के लिए म्युजियम भी हैं।

टी.एस.पी. क्षेत्रों में आश्रम स्कूल

यह केन्द्र प्रायोजित योजना 1990-91 में राज्य सरकारों तथा के.शा.प्र.को केन्द्रीय सहायता क्रमशः 50 प्रतिशत एवं 100 प्रतिशत देने के उद्देश्य से शुरू की गयी। वर्ष 1999-2000 के दौरान 36 आश्रम स्कूल बनाने के लिए फंड जारी किया गया।

जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसायिक प्रशिक्षण

यह केन्द्रीय योजना 1992-93 में जनजातीय युवा के क्षमता के विकास के लिए तथा स्वरोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से व्यवसायिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की गई। योजना राज्य सरकारों/के.शा.प्र. तथा गैर सरकारी संस्थानों द्वारा कार्यान्वित की जाती है। वर्ष 2000-2001 के दौरान पास किए गए केन्द्रों की संख्या 28 थी जबकि 1999-2000 के दौरान यह संख्या 33 थी।

निम्न साक्षरता क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति वालिकाओं के लिए शिक्षा

इस योजना की शुरुआत आठ राज्यों में जहां महिला साक्षरता दो प्रतिशत से कम है ऐसे 48 पहचाने गए जनजातीय क्षेत्रों में साक्षरता स्तर उठाने के लिए की गई। इस योजना का जुलाई 1998 में पुनर्निर्धारण किया गया तथा अब इसमें चौदह राज्यों के एक सौ चौतीस जिले हैं जहां महिला साक्षरता दर दस प्रतिशत से कम है

इसके तहत एक से पांच कक्षा तक के लिए आवासीय शैक्षणिक परिसर बनाने की योजना एवं इसका कार्यान्वयन राज्य सरकारों/के.शा.प्र. एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। वर्ष 1999-2000 के दौरान 86 तथा 2000-2001 के दौरान 24 परिसरों के लिए फंड जारी किया गया है।

4. झारखंड में बालिका शिक्षा

झारखंड में बालिकाओं की शिक्षा की स्थिति आरंभ से ही बेहद उपेक्षित रही है। महिलाओं के अस्तित्व-अस्मिता के संदर्भ में राज्य के सामाजिक ढांचे का मूल्यांकन किया जाये तो, यह स्पष्ट दिखेगा कि झारखंड अत्यंत पिछड़े राज्यों में से है। झारखंड में स्त्री-पुरुष अनुपात 941:1000 है। लड़कियों के विवाह की औसन उम्र लगभ अठारह वर्ष है। गांवों में अभी भी बाल-विवाह तथा बालिका मां (चाइल्ड मदर) की बात आम है। अभी भी पचास प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे है। मातृत्व मृत्युदर तथा शिशु मृत्युदर में कमी नहीं आयी है। इस सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ेपन के लिए काफी हद तक बालिका-शिक्षा का अभाव मुख्य कारण माना जायेगा। और यह कहना अतिशयाक्ति नहीं कि बालिका शिक्षा के पिछड़ेपन के लिए राज्य की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, लोगों की प्रवृतियां और पुरुषवादी मानसिकता अवरोधक तत्व हैं।[24]

स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी झारखंड में महिला साक्षरता की दर बहुत कम है (35.07 प्रतिशत) । इसमें भी अधिसंख्य साक्षर महिलाएं ऐसी हैं, जो मात्र हस्ताक्षर करने की स्थिति में हे। वे न तो पढ़ना जानती हैं और न लिखना। केवल चित्रांकन की तरह वे अपना हस्ताक्षर कर लेती हैं। ऐसी साक्षरता घातक है।

महिला साक्षरता और उसमें भी बालिकाओं की शिक्षा में पिछड़ापन के साथ-साथ सामाजिक धरातल पर व्याप्त विभेद को भी व्यक्त करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान के नीति-निर्माताओं ने शिक्षा में समता और समानता स्थापित करने के लिए शिक्षा के सार्वभौमीकरण पर विशेष बल दिया। 14 वर्ष की आयु तम निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने से संवैध ाानिक निर्देशों के अंतर्गत उच्चतम प्राथमिकता दी गयी। इन ससब प्रयासों के बावजूद यह पाया गया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 66 वर्षों के बाद भी स्कूलों में लड़कियों के दाखिले की स्थिति में सुधार नहीं है।

अधिक से अधिक बालिकाओं को दाखिला देने के लिए किये गये प्रयासों तथा महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था के बावूजद उनके शैक्षणिक स्तर में कोई सुधार नहीं आया है। अभी भी दाखिले की दर के मामले में बालकों का अनुपात बालिकाओं की तुलना में अधिक है। क्षेत्रीय तथा अंतर समूह में काफी विभिन्नताएं हैं।

सर्व शिक्षा अभियान, झारखंड के मुताबिक राज्य में प्राथमिक स्तर पर बच्चों की छीजन औसत दर 2010-2011 में 12% है। राज्य के कुछ जिलों में ड्रॉप आउट की यह दर 20% है। विशेषकर चतरा, गुमला, जामताड़ा और सिमडेगा में यह दर क्रमशः 20, 21, 24 और 19% है। चतरा को छोड़कर शेष तीनों जिले आदिवासी बहुल हैं और इससे पता चलता है कि राज्य के आदिवासी बच्चों में छीजन की औसत दर सबसे ज्यादा है। चिंता की बात यह है कि इसमें बालिकाओं की संख्या बालकों के मुकाबले अधिक है।

राज्य के 24 में से 20 जिलों में स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों की संख्या 3000 से ज्यादा है। इनमें से गिरिडीह, पाकुड़ और रांची में यह संख्या 10000 से भी ज्यादा है। गिरिडीह में 12 हजार 387, पाकुड़ में 12 हजार 208 और रांची में 10 हजार 603।[25]

2007-08 से 2010 तक राज्य में कक्षा 1 से और कक्षा 6 से 8 के आंकड़ों के अनुसार भी बालिका शिक्षा का कुल प्रतिशत लगभग 48% है। अर्थात् 52% बालिकाएं शिक्षा के प्रयासों से दूर हैं।

झारखंड में कक्षा 1 से 8 तक नामांकन 2009-2010 तक [26]

	कक्षा 1-5		**कक्षा 6-8**	
वर्ष	कुल नामांकन	बालिका %	कुल नामांकन	बालिका %
2007-08	5464268	49.02	1255404	46.39
2008-09	5166716	49.32	1436228	47.31
2009-2010	4939161	49.52	1584772	48.75

इसी प्रकार जब हम सामाजिक वर्ग के आधार पर नजर दौड़ाते हैं तो देखते हैं कि झारखंड राज्य में आदिवासियों के साथ-साथ अन्य समुदायों की बालिकाओं की शैक्षिक स्थित अच्छी नहीं है। निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होता है कि राज्य के दलित, अन्य पिछड़ा एवं मुस्लिम वर्ग की बालिकाओं का नामांकन दर कहीं से भी बेहतर नहीं है।

प्राइमरी एवं अपर प्राइमरी स्तर पर 2008-2009 सत्र [27]

में आदिवासी, दलित, अन्य पिछड़ा एवं मुस्लिम वर्ग बालिकाओं का नामांकन दर

	कुल		बालिका	
	प्राइमरी	अपर प्राइमरी	प्राइमरी	अपर प्राइमरी
आदिवासी	31.7	27.1	48.8	46.02
दलित	15.4	13.0	48.7	44.8
पिछड़ा	45.4	48.7	50	48.5
मुस्लिम	10.7	9.9	49.3	48.9

झारखंड राज्य के प्राथमिक शिक्षा का रिपोर्ट कार्ड (2008-09) बताता है कि बालिका शिक्षा के क्षेत्र में प्राइमरी स्तर पर छीजत दर 15.1% है जो कि ठहराव 8.8% के मुकाबले करीब दोगुना है। पहली कक्षा में कुल नामांकित बच्चों की संख्या 1411754 है जबकि बालिकाओं की संख्या इससे आधी से भी कम 700253 है। वहीं 8वीं कक्षा तक पहुंचने वाली बालिकाओं की संख्या 379577 (कुल बच्चों) के मुकाबले मात्र 177397 है। अर्थात् 46% से थोड़ा ज्यादा।

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि राज्य बनने के बाद से अब तक की स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है और लगभग 55 से 60 प्रतिशत बालिकाएं लगतार शिक्षा की पहुंच से बाहर बनी हुई हैं। जबकि इस दिशा में साक्षरता अभियान के शुरू होने के बाद से ही महिला समाख्या के अभिनव प्रयोग और राष्ट्रीय प्रारंभिक बालिक शिक्षा अभियान तथा कस्तूरबा गांधी बालिका शिक्षा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से भी कोई विशेष बदलाव नहीं आ पा रहा है। यह सोचने की बात है कि झारखंड राज्य में आदिवासी समाज में बालक और बालिका के बीच लैंगिक भेदभाव नहीं है। फिर भी बालिका शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। यदि भूख, गरीबी और आर्थिक कारण इस असफलता को स्थिर बनाने में भूमिका निभा रहे हैं, फिर मिड डे मील और साईकल बांटने जैसे प्रयासों का

मतलब क्या है? या फिर सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से अलग अन्य कारण भी हैं जो बालिका शिक्षा की सफलता में बाधा पहुंचा रहे हैं।

झारखंड में बालिका शिक्षा को इस अदृश्य गुत्थी को देखना और सुलझाना ही होगा। अन्यथा यह समस्या बनी रहेगी और बालिका शिक्षा के लक्ष्य को पाना असंभव बना रहेगा। वे कौन से कारक हैं जिसे हल करने में अभी तक बालिका शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अभियान एवं कार्यक्रम विफल रहे हैं।

झारखंड प्राथमिक शिक्षा का रिपोर्ट कार्ड 2008-09 [28]

कक्षा	नामांकन 2008-2009						
	कुल	बालिका	समावेशी		कुल	ठहराव	छीजन
			बालक	बालिका			
I	1,411,754	700,253	3,871	2,721	273,821	17.8	19.4
II	1,052,072	522,256	2,975	2,267	82,025	7.2	11.2
III	1,000,864	497,457	3,060	2,247	54,209	5.4	11.2
IV	886,369	434,372	2,835	1,995	37,280	4.1	9.8
V	815,657	393,902	2,612	1,888	28,418	3.6	23.8
VI	586,279	280,374	1,790	1,331	16,315	3.2	8.2
VII	470,372	221,699	1,632	1,143	10,824	2.6	9.4
VIII	379,577	177,397	1,174	812	7,446	2.3	N.A.
प्राइमरी 1-5	5,166,716	2,548,240	15,353	11,118	475,753	8.8	15.1

5. झारखंड में भाषायी आंदोलन और शिक्षा

झारखण्ड में कई आदिवासी समुदाय रहते हैं। इन सबकी अपनी-अपनी भाषा है। इनमें से पाँच बड़े आदिवासी समुदाय संथाल, मुण्डा, हो, उरांव और खड़िया हैं, जिनकी भाषाएँ हैं क्रमशः मुण्डारी, हो, संताली, खड़िया एवं कुडुख। भारत की केन्द्र एवं राज्य सरकारें, दोनों ही 1950 से आदिवासी भाषाओं की उपेक्षा करती आ रही है।

भंाषा, समाज एवं उनकी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। भाषा बिना समाज और संस्कृति की पहचान नहीं है। व्याकरण, लिपि, साहित्य एवं इतिहास समाज में उतना ही आवश्यक है, जितना की भाषा।

विगत वर्ष मार्च 2002 को संताल परगना कॉलेज में संताली सांस्कृतिक परिषद् की ओर से आयोजित 24 वें संताली साहित्य समारोह में निवर्तमान मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल मराण्डी ने झारखण्ड राज्य में जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से राजकीय विद्यालयों में पहली कक्षा से दसवीं कक्षा तक जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं की पढ़ाई एक विषय के रूप में करने की घोषणा की थी। जबकि जनजातीय भाषाओं की पुस्तकों की अनुपलब्धता, पाठ्यक्रमों के अभाव आदि कारणों से इस निर्णय को लागू करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। हर वर्ग को जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं की पढ़ाई करने का अवसर प्रदान करना झारखण्ड सरकार की प्राथमिकता भी सही प्रतीत नहीं हो रही है।

जबकि आदिवासी मातृभाषाओं में मुण्डारी, हो, संताली और कुडुख भाषाओं की पढ़ाई अनिवार्य रूप से शुरू करने के लिए 1953 में ही बिहार सरकार शिक्षा विभाग के संकल्प संख्या 645/ER/राँची/13 अगस्त 1958 को कहा गया था। फिर सरकारी संकल्प संख्या 7M-12-04/60-5508/पटना 11 अक्टूबर 1961, इसके बाद बिहार सरकार, शिक्षा विभाग पटना 7G/4C/55E दिनांक 20/12/1966 में भी शिक्षा देने का निर्देश दिया गया है। फिर अपर लोक शिक्षा, निदेशक पत्र संख्या 7/F-6-0/59-C 850 दिनांक 8/4/1976 और संकल्प संख्या 2844, दिनांक 23/12/1976 द्वारा भी बिहार सरकार ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि कुडुख, हो, संताली और मुण्डारी आदिवासी भाषाओं की शिक्षा देने की व्यवस्था किया जाय। किन्तु अब तक कोई कारगर कदम नहीं उठाया गया है। अल्पसंख्यक भाषाओं के छात्र-छात्राओं की शिक्षा प्राथमिक स्तर पर उनकी मातृभाषा में शिक्षा उपलब्ध

कराने का संवैधानिक खर्च से, जिसे मूर्त्तरूप देने के लिए बिहार सरकार 1996 में सरकारी खर्च से बिहार टेक्सट बुक कॉरपोरेशन की ओर से विभिन्न आदिवासी भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकें बनी, लेकिन उनका आज तक वितरण नहीं किया गया है। बिहार टेक्सट बुक कॉरपोरेशन की ओर से विभिन्न आदिवासी भाषाओं में प्राथमिक स्तर (वर्ग एक से पाँच) की शिक्षा के लिए पाठ्य पुस्तकें मुद्रित एवं प्रकाशित करायी गयी तथा सिलेबसों में भी इसकी स्वीकृति है।

एक महत्वपूर्ण एवं रोचक बात तो यह है कि 24/08/92 के हिन्दुस्तान टाइम्स, पटना में एक विज्ञापन पृष्ठ संख्या 10 पर छपा था, जिसमें पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद और बी.टी. बुक कॉरपोरेशन के मध्य चन्दूका राय के फोटो के साथ यह खबर थी, कि 1989-90 में रु. 417740.95 पैसे तथा 1990-91 में 7662, 171.95 रुपये की आदिवासी भाषाओं की पुस्तकें बेची गयी, जिसमें कक्षा 1 से 5 तक की पाठ्यपुस्तकें शामिल हैं। लेकिन अभी तक मातृभाषा की पढ़ाई शुरू नहीं हुई है।

प्राथमिक और मध्य विद्यालयों में जनजातीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के लिए क्रमशः राँची में कुड़ुख भाषा और मुंडारी भाषा के लिए पाँच विद्यालयों का चयन किया गया था। इसी प्रकार पश्चिमी सिंहभूम में हो भाषा के लिए 23-28 विद्यालयों का, पूर्वी सिंहभूम के 14, मुण्डारी-2, संताली-5, हो भाषा में 5, गुमला में कुड़ुख भाषा के लिए 10, लोहरदगा कुड़ुख भाषा के लिए 10, पलामू मेसो क्षेत्र में कुड़ुख भाषा के लिए 10, दुमका, साहिबगंज और गोड्डा में 15-15 संताली भाषा के लिए विद्यालयों का चयन किया गया था।

ज्ञातव्य है कि जैक द्वारा झारखण्ड क्षेत्र में 'मातृभाषा' आदिवासी भाषाओं की शिक्षा के लिए सिपर्फ 118 विद्यालयों का चयन किया गया था। जबकि झारखण्ड क्षेत्र में करीब 22 हजार ग्रामीण स्कूल हैं और क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक, राँची द्वारा जिला शिक्षा अधीक्षक राँची, प. सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, गुमला, लोहरदगा और पलामू मेसो क्षेत्र के लिए आदिवासी भाषा की पढ़ाई के लिए सिर्फ पत्रांक संख्या 180 दिनांक 13/12/1991 द्वारा कुल 72 हजार रुपये की राशि स्वीकृत की गयी थी। लेकिन आदिवासी भाषा की पढ़ाई के लिए एक भी पैसा खर्च नहीं किया गया।

सरकारी आँकड़ों के आधर पर 11,472 गाँवों में 50% से ज्यादा आदिवासी निवास करते हैं। जिसमें 55.48% आदिवासी बहुल गाँव हैं। इन गाँवों में आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं की पढ़ाई होनी चाहिए थी। सरकारी आदेश 53/56 के तहत यह कहा गया था कि जिन स्कूलों में 10 से ज्यादा आदिवासी छात्र पढ़ते हैं, उसमें भी एक आदिवासी भाषा के शिक्षक की नियुक्ति की जानी चाहिए। यह भी

निश्चित किया गया था कि जिस गाँव में 25% से ज्यादा आबादी आदिवासियों की है वहाँ भी आदिवासी भाषा की पढ़ाई होनी चाहिए। अगस्त 1998 के आँकड़ों पर अगर गौर किया जाय तो झारखण्ड में सिर्फ 428 आदिवासी भाषा के शिक्षक थे, जिसमें हो भाषा के 19, कुडुख भाषा के 95, मुण्डारी भाषा के 161 और संताली भाषा के 153 हैं।

झारखण्डी भाषा परिषद् राँची ने आरोप लगाया है कि कुडुख, हो, संताली, खड़िया और मुंडारी भाषाओं की नियुक्ति न कर राज्य सरकार ने मानवाधिकार का उल्लंघन किया है। झारखण्ड की नयी सरकार ने यह भी घोषणा कर दी है कि अब झारखण्ड में कक्षा एक से ही अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई शुरू की जाएगी, ताकि सरकारी स्कूलों के बच्चों के साथ प्रतियोगिता में साथ आ सकें। पहली कक्षा से अंग्रेजी की पढ़ाई अच्छा कदम कहा जा सकता है। परन्तु यह बात लोगों के मन में नहीं बैठ पा रहा है, कि एक ओर तो अंग्रेजी की पढ़ाई पर इतनी जोर दी जा रही है, परन्तु आदिवासी भाषाओं - जैसे मुण्डारी, हो, संताली, कुडुख और खड़िया की पढ़ाई पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। झारखण्ड की शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता है। झारखण्ड आन्दोलन के क्रम में झारखण्डी भाषाओं के विकास के बिना झारखण्डी भाषा, संस्कृति का विकास संभव नहीं है।

आदिवासी भाषाओं की पढ़ाई ग्रामीण स्तरों के किसी-किसी प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ाई चल रही है। किन्तु पाठ्य पुस्तकों की अनुपलब्धता के कारण तथा शिक्षकों की कमी के कारण भी छात्र-छात्राओं में पढ़ने की रूचि घटती जा रही है। राँची विश्वविद्यालयों के महाविद्यालयों में और विश्वविद्यालयों में आदिवासी भाषाओं की पढ़ाई चल रही है, किन्तु पाठ्यपुस्तकों की अनुपलब्धता के कारण पढ़ाई में नीरसता आ रही है। साथ ही साथ यह देखने को मिल रहा है कि आदिवासी भाषाओं में शोध कार्य नहीं के बराबर हो रहा है एवं व्याकरण की भी कमी है।

सबसे विचारणीय बात तो यह है कि आदिवासी भाषाओं में अब तक करोड़ों रुपये की पुस्तकें छापी जा चुकी है और राज्य सरकार व केन्द्र सरकार के प्रयास से कई कार्यशालाएँ लगातार आयोजित की जा रही हैं, परन्तु प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययन-अध्ययापन की दिशा में कोई भी कारगर कदम नहीं उठाया जा रहा है। प्राथमिक स्तर पर इसे लागू करनमें सरकार असमर्थ साबित हो रही है। और यह भी सत्य है कि झारखण्ड सरकार के गठन को 10 वर्ष हो गए हैं। राज्य के मुख्यमंत्री आदिवासी समाज से आते हैं पर अभी तक आदिवासी भाषाओं का उत्थान नहीं हो सका।

निष्कर्ष

1771 से लेकर 1947 तक झारखंड के आदिवासी विद्रोहों की एक सुदीर्घ परंपरा है। जल, जंगल और जमीन पर अपने हक को बरकरार रखने तथा स्वतंत्रता के लिए इतिहास में विभिन्न समय में ये विद्रोह हुए और आदिवासियों ने कभी भी गुलामी नहीं स्वीकार की। आजादी के बाद उन्होंने उम्मीद की थी कि लोकतांत्रिक सरकार उन्हें उन औपनिवेशिक अत्याचारों से मुक्त कराते हुए स्वतंत्रता के पूर्ण उपभोग का अवसर प्रदान करेगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जल्द ही आदिवासियों को अनुभव हुआ कि 'गोरे' मालिकों की जगह सिर्फ 'काले' शासक आ गए है और उनकी स्थितियों में कोई परिवर्तन की आशा नहीं है। इसी के बाद झारखंडी जनता के विक्षोभ ने पुनः नये सिरे से संगठित होना शुरू किया जिसकी परिणति झारखंड आंदोलन के रूप में हम देखते हैं।

झारखंड आंदोलन के लंबे कालखंड में जो विद्रोह और आंदोलन हुए, उनके दो सिरे थे। एक सिरा जंगल-जमीन जैसे जीवन यापन के मुद्दों की वजह से स्थानीय और प्रजाति विशेष के नेतृत्व से जुड़ा था और दूसरा सिरा सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों की वजह से आजादी के सार्वदेशिक आंदोलन का अनिवार्य हिस्सा बना। इसीलिए किसी भी आंदोलन में विशेष प्रजाति का बाहुल्य होने के बावजूद अन्य तमाम समुदायों ने उसमें भाग लिया और स्थानीय नेतृत्व होते हुए भी हर आंदोलन ने अपनी सार्वदेशिक छवि पेश करने की कोशिश की। झारखंड क्षेत्र में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ 150 साल में हुए विभिन्न आंदोलनों एवं विद्रोहों की एक-दूसरे से जुड़ी कड़ियों को देखे-समझे बिना न तो भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की व्याख्या ही की जा सकती है औ न ही उन आकांक्षाओं को समझा जा सकता है जो अलग झारखंड राज्य के मांग की मूल आत्मा रही है।

हालांकि आजादी के पूर्व ही 1900 के आसपास नीतिगत रूप से झारखंड में शिक्षा की शुरुआत अंग्रेजी राज ने ही की। आजादी के बाद केन्द्र और राज्य सरकार के द्वारा अनेक शैक्षिक कार्यक्रमों की रचना की गई। झारखंड को अविभाजित बिहार में जनजाति उपयोजना क्षेत्र का विशेष दर्जा देते हुए अनेक शैक्षिक गतिविधियों को संचालित किया गया। पर इन गतिविधियों का शत-प्रतिशत लाभ यहां के आदिवासी समुदायों को कभी नहीं मिल पाया। दरअसल बिहार सरकार और उसकी नौकरशाही ने हमेशा झारखंड के प्रति दोयम दर्जे का बरताव किया। राज्य के

प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और आदिवासियों के शोषण पर ही उनका जोर रहा। नतीजा हुआ कि झारखंड और यहां की जनता विकास के मानकों को कभी छू ही नहीं पाए।

आदिवासी मातृभाषाओं- मुण्डारी, हो, संताली, खड़िया और कुडुख भाषाओं में पढ़ाई की मांग को बिहार में सदैव लंबित रखा गया। 1953 से ही बिहार सरकार ने संविधान की 5वीं अनुसूची के अनुसार विभिन्न शासकीय आदेशों के द्वारा मातृभाषाओं में शिक्षा प्रदान करने तथा पाठ्य पुस्तकों के निर्माण, छपाई एवं उनके वितरण का संकल्प दोहराती रही। लेकिन अपने तमाम संकल्पों और आदेशों को उसने कभी नहीं लागू किया। 1996 में सरकारी खर्च से बिहार टेक्सट बुक कॉरपोरेशन की ओर से विभिन्न आदिवासी भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकें छापी भी गईं, लेकिन उनका वितरण नहीं किया गया। न ही ही भाषाई शिक्षकों की नियुक्ति की गई।

संदर्भ एवं स्रोत :

1. रोज केरकेट्टा का साक्षात्कार
2. मैथ्यू अरीपरम्पिल, अबुवः राज : स्वराज के लिए झारखंडियों का संघर्ष, पृष्ठ-36
3. रोज केरकेट्टा का साक्षात्कार
4. मैथ्यू अरीपरम्पिल, अबुवः राज : स्वराज के लिए झारखंडियों का संघर्ष, पृष्ठ-68
5. वंदना टेटे का साक्षात्कार
6. मैथ्यू अरीपरम्पिल, अबुवः राज : स्वराज के लिए झारखंडियों का संघर्ष, पृष्ठ-77
7. उपन्यासकार विनोद कुमार् का साक्षात्कार
8. झारखंडी इतिहासकार और आंदोलनकारी डॉ. विसेश्वर प्रसाद केशरी का साक्षात्कार
9. हेमंत, झारखंड, पृष्ठ-235, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, 2001
10. कुमार सुरेश सिंह, बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, पृष्ठ-37
11. डॉ. विसेश्वर प्रसाद केशरी, छोटानागपुर का इतिहासः कुछ सूत्र कुछ संदर्भ, पृष्ठ-118
12. नागेश्वर सिंह, ईसाई मिशनरियों का शैक्षिक एवं साहित्यिक अवदान, पृष्ठ-123
13. हेमंत, झारखंड, पृष्ठ-238
14. राँची कॉलेज निर्देशिका, 2001-02
15. हेमंत, झारखंड पृ-239
16. मानव संसाधन विभाग, झारखंड सरकार, जून 2003
17. एक रुपया देने की योजना भी आकर्षित नहीं कर पाई, प्रभात खबर, राँची 6 अगस्त 2003
18. मानव संसाधन विकास विभाग, झारखंड सरकार
19. बिहार एण्ड उड़ीसा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, टी. एस. मैफर्सन, 1917, पृष्ठ-243
20. रोज केरकेट्टा का साक्षात्कार
21. नागेश्वर सिंह, ईसाई मिशनरियों का शैक्षिक एवं साहित्यिक अवदान, पृष्ठ-123
22. ग्लोरिया सोरेंग, सिमडेगा का साक्षात्कार
23. रोज केरकेट्टा, प्यारा मास्टर, पृष्ठ-32
24. झारखंड : प्राथमिक शिक्षा हालात, पृष्ठ-11-12
25. उपरोक्त
26. मानव संसाधन विकास विभाग, झारखंड सरकार
27. उपरोक्त
28. उपरोक्त

पंचम अध्याय

झारखंड में सर्वशिक्षा अभियान

पंचम अध्याय

झारखंड में सर्वशिक्षा अभियान

1. उद्देश्य, कार्यक्रम एवं रणनीति

राज्य में सबको शिक्षा देने के लिए सर्व शिक्षा अभियान शुरू किया गया है। यह भारत सरकार की योजना है। 2010 तक सभी को शिक्षा देने का लक्ष्य तय किया गया है। 2001-02 में शुरू इस अभियान में झारखंड के सभी जिले शामिल है। धनबाद, बोकरो, गढ़वा, गुमला, सिमडेगा, पलामू, लातेहार, लोहरदगा, गोड्डा व इससे संबंधित सभी कार्यक्रमों का संचालन सर्व शिक्षा के नाम से शुरू किया जा रहा है। डीपीइपी (जिला प्राथमिक कार्यक्रम) में चतरा, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, हजारीबाग, कोडरमा, दुमका, जामताड़ा, रांची, सरायकेला-खरसावां में छठे से आठवें क्लास तक के छात्रों को पढ़ाने का कार्यक्रम केंद्र सरकार ने स्वीकृत किया है। यूएनओ की सहायता से देवघर, गिरिडीह, साहेबगंज व पाकुड़ में शिक्षा के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। जिसके तहत 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को शिक्षित करने का अभियान चलाया जा रहा है। इसके लिए गांव-गांव में विद्यालय खोल कर गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से लोगों को शिक्षित करने का काम किया जा रहा है, जिसका परिणाम बहुत उत्साहवर्द्धक रहा है। उल्लेखनीय है कि सर्व शिक्षा अभियान राज्य में विलंब से लागू किया गया। इसके राज्य सरकार को केंद्र की चेतावनी भी मिली। सरकार ने झारखंड ग्राम शिक्षा अभियान की शुरुआत की। नामकुम प्रखंड की कोनजारी गांव में इसका ऑनलाइन उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने किया था। बाद में इसे सर्व शिक्षा अभियान में शामिल कर लिया गया। अभियान के पहले वित्तीय वर्ष में प्राप्त 187.46 करोड़ 35 हजार में 111.27 करोड़ 95 हजार 700 रूपये ही खर्च किया जा सका। इसमे केंद्र सरकार ने 113.88 करोड़ 90 हजार व राज्य सरकार ने 37.18 करोड़ 96 हजार रुपयों का आवंटन जिलों में भेजा था। आवंटित राशि पूरी तरह से खर्च नहीं होने से इसका प्रभाव अभियान की प्रगति पर भी पड़ा।[1]

भारत में सर्व शिक्षा अभियान करीब 900 करोड़ की महत्वकांक्षी परियोजना थी। इसके तहत मार्च 2004 तक 17,001 शिक्षा केंद्र खोले जा चुके थे। वित्तीय वर्ष

2003-04 में कुल 5,487 केंद्र स्थापित किये गये। इस अभियान के तहत 31 मार्च 2004 तक शिक्षा केंद्रों में 6.54 लाख 437 बच्चों का नामांकन हो सका था। 2003-04 में 2.75 लाख 25 बच्चों का नाम लिखा गया था। सरकारी विद्यालयों में 14,213 सामुदायिक शिक्षकों को रखा गया है। इन्हें छात्र संख्या के आधार पर अभियान के तहत एक हजार व दो हजार का मानदेय प्रतिमाह दिया जाता है। 12,897 विद्यालयों के ग्राम शिक्षा समितियों का गठन किया गया । इनके माध्यम से 30,242 राजकीयकृत मध्य विद्यालयों में शिक्षकों को शिक्षण सामग्री के लिए अनुदान भी दिया गया। अब तक शिक्षा समिति के 36,138 सदस्यों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। गणित, अंग्रेजी व विज्ञान विषय में 17,620 अनौपचारिक शिक्षकों को प्रशिक्षण पा रहे हैं। अनुसूचित जाति-अनुसूचित जनजाति के छात्र-छात्राओं को पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक एनसीइआरटी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें निःशुल्क दी जाती हैं। इस वर्ष सभी कोटि के छात्र-छात्राओं को आठवीं तक निःशुल्क पुस्तकें देने की घोषणा राज्य सरकार द्वारा की गयी है। इसके लिए करीब 40 करोड़ रुपये खर्च किया जा रहा है सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत सेतु पाठ्यक्रम भी चलाया जा रहा है। इसमें अधिक उम्र के बच्चों को भी शामिल किया गया है। 4,383 सेतु केंद्र में 96,456 बच्चे नामांकित हैं। साथ ही 879 पूर्व बालपन केंद्र भी खोले गये हैं। तीन से छह वर्ष के बच्चों को इससे लाभ पहुंचाया जा रहा हे।

महत्वाकांक्षी सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य 2010 तक सभी को शिक्षा देना है। कहा जाता है कि जितने परिश्रम व सक्रियता की आवश्यकता है, वह देखने को नहीं मिल रहा है। चाहे वह सरकार के स्तर पर हो या फिर परियोजना के स्तर पर हो अथवा जिला सतर पर। सभी जगहों पर सक्रियता व लगनशीलता का अभाव झलकता है। राज्य के मानव संसाधन विकास विभाग व परियोजना के अधिकारियों को अभियान की हर गतिविधि पर लगातार नजर रखनी पड़ेगी, मार्गदर्शन देना पड़ेगा तथा निरीक्षण भी करना पड़ेगा, ताकि उपलब्ध राशि का समय पर पूरा उपयोग किया जा सके।

प्राथमिक शिक्षा को व्यापक परिवेश में देखें, तो राज्य में इसकी स्थिति बेहद खराब है, स्थिति यह है कि पूर्णतः केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजना का लाभ भी राज्य सरकार ठीक से नहीं उठा पायी और न ही उठा पा रही है। इन योजनाओं में मुसलिम लड़कियों की शिक्षा की व्यवस्था, वयस्क लड़कियों की शिक्षा, शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों एवं लड़कियों की शिक्षा, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बच्चों की शिक्षा में केन्द्र सरकार क्षरा मिलनेवाल धनराशि की

उपयोग भी राज्य सरकार नहीं कर पायी।

झारखंड सरकार द्वारा झारखंड शिक्षा परियोजना परिषद् के तत्वावधान में कई शैक्षिक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इसी के तहत सर्वशिक्षा अभियान वर्ष 2001-02 में प्रारंभ किया गया और इस कार्यक्रम के अंतर्गत राज्य के सभी 22 जिले आच्छादित हैं। सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हस्तक्षेपों से कई एक हस्तक्षेप ऐसे हैं जो जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम एवं यू.एन. से सहायता प्राप्त कार्यक्रम के अंतर्गत पूव से ही क्रियान्वित किए जा रहे हैं। इस प्रकार राज्य के मात्र आठ जिले हैं (धनबाद, बोकारो, गुमला, सिमडेगा, पलामू, लातेहार, लोहरदगा एवं गोड्डा) ऐसे जिले हैं, जहाँ सभी कार्यक्रमों का संचालन सर्व शिक्षा अभियान शीर्ष से किया जा रहा है। डी.पी.ई.पी के नौ जिलों (चतरा, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, हजारीबाग, कोडरमा, दुमका, जामताड़ा राँची एवं सरायकेला-खरसवां) सं फिलहाल उच्च प्राथमिक शिक्षा (वर्ग 6-8) के सर्वव्यापीकरण हेतु भारत सरकार द्वारा कार्यक्रम स्वीकृत किए गए हैं डी.पी.ई.पी जिलों के अनुरूप ही यू.एन. से सहायता प्राप्त जिलों में उच्च प्राथमिक शिक्षा के सार्वजीनकरण हेतु कार्यक्रम स्वतीकृत किए गए हैं। साथ ही इन जिलों मे फोकस ग्रुप के बच्चों के बीच निःशुल्क वितरण हेतु पाठ्य-पुस्तकों का क्रय, सिविल वर्क्स आदि हेतु प्रावधान सर्वशिक्षा अभियान शीर्ष के अंतर्गत रखा गया है।

'सर्वशिक्षा अभियान' के चार प्रमुख अवयव हैं- नियोजन, आच्छादन, क्षमता विकास और गुणवत्ता विकास। इन अवयवों सुदृढ़ीकरण की दिशा में कई गतिविधियाँ भी जारी हैं। इन गतिविधियों में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण हेतु परिवार सर्वेक्षण के आधार पर संदर्श-योजना (2002-07) तैयार करना, सवेवित बस्तियों में विद्यालयी सुविधा प्रदान करना, औपचारिक विद्यालयों के विकेंन्द्रीकृत प्रबंधन हेतु सभी प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों में ग्राम शिक्षा समिति का गठन, औपचारिक एवं अभियान विद्यालयों के रखरखाव एव आकस्मिकता व्यय हेतु रु. 2000/- प्रति विद्यालय प्रतिवर्ष की दर से अनुदान, अभियान विद्यालय एवं औपचारिक विद्यालयों की ग्राम शिक्षा समिति के सदस्यों का प्रशिक्षण, शिक्षण सामग्री की व्यवस्था हुतु अनुदान और अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति एवं सभी बालिकाओं (वर्ग 1-8) के लिए निःशुल्क पाठ्य-पुस्तक प्रमुख हैं। 31 मार्च 2003 तक सर्वशिक्षा अभियान के मद में आवंटित 6375.77 लाख रुपये में से 2173.53 लाख रुपये व्यय किए गए।[2]

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम -- प्राथमिक शिक्षा के सबों के लिए सुलभ बनाने के उद्देश्य से अविभाजित बिहार द्वारा 2 अक्तूबर, 1997 से शुरू किया गया जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (DPEP)। इस कार्यक्रम के तहत अभी झारखंड के नौ जिले (दुमका, जामताड़ा, चतरा, राँची, पूर्वी सिंभूम, पश्चिमी सिंहभूम, सरायकेला-खरसवां, हजारीबाग एवं कोडरमा) प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम को आगे बढ़ा रहे है। क्च्न्च भारत सरकार द्वारा प्रायोजित एवं विश्व बैंक द्वारा पोषित योजना है, जिसमें केन्द्रांश एवं राज्यांश क्रमशः 85% तथा 15% है। इस योजना का निरीक्षण प्रत्येक छह महीने पर भारत सरकार एवं विश्व बैंक के संयुक्त दल द्वारा किया जाता है।

डी.पी.ई.पी के मुख्य अवयय और गतिविधियाँ कई प्रकार की हैं। इसके प्रमुख अवयव हैं- अच्छादन, ठहराव गुणवत्ता और क्षमता विकास। इन अवयवों के मुताबिक भिन्न-भिन्न गतिविधियां हैं। आच्छादन के अंतर्गत असेवित बस्तियों में विद्यालय की सुविधा उपलब्ध करवाना। ठहराव अवयव के तहत जो गतिविधियाँ हैं, वे हैं- विद्यालयों की भौतिक अवस्था में सुधार लाने हेतु आवश्यक उपाय करना, इसके अंतर्गत भवनहीन विद्यालयों के लिए भवन, विद्यालयों में अतिरिक्त कमरों का निर्माण, विद्यालयों में पेयजल/शौचालय की सुविधा, विद्यालय के रखरखाव एवं आकस्मिकता खर्च हेतु रु. 2000/- प्रति विद्यालय प्रति वर्ष की दर से अनुदान और विकेन्द्रीकृत विद्यालय प्रबंधन हेतु ग्राम शिक्षा समितियों का गठन प्रमुख है। गुणवत्ता अवयव के तहत शिक्षकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण शिक्षण सामग्री की व्यवस्था हेतु रु. 500/- प्रति शिक्षक/वर्ष की दर से अनुदान, वर्ग एक से पाँच तक नामांकित सभी अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति एवं बालिकाओं हेतु निःशुल्क पाठ्यपुस्तक, वर्ग एक से पाँच के बच्चों का निःशुल्क वार्षिक मूल्यांकन एवं नवाचारी कार्यक्रम मुख्य हैं। क्षमता विकास की गतिविधियों के लिए प्रखण्ड संसाधन केन्द्र की स्थापना, संकुल संसाधन केन्द्र की स्थापना और ग्राम समिति के सदस्यों का प्रशिक्षण है।

अप्रैल 2002 से मार्च 2003 के बीच प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्यों को शामिल करने के लिहाल से झारखंड सरकार के मानव संसाधन विकास विभाग ने जिन कार्यों को पूरा किया है, उनका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है।

1. सर्वव्यापी पहुँचः सभी गाँव/टोलों जहाँ बच्चों की संख्या 15 या उससे अधिक है, को एक कि.मी की परिधि में विद्यालय सुविधा उपलब्ध कराने हेतु ग्राम शिक्षा अभियान/ शिक्षा गारंटी योजना के तहरत 5667 विद्यालय स्थापित किए गए हैं।[3]

बाल जगजगी केन्द्र - 325	**किशोरी मंच- 156**
जगजगी केन्द्र- 276	**ब्रिज कोर्स- 56**
कैंप विद्यालय - 23	**महिला शिक्षण केन्द्र - 05**

2. सर्वव्यापी नामांकनः विद्यालय से बाहर (6-14 वर्ष) रहने वाले बच्चों में से कुल दो लाख 23 हजार 992 बच्चों को 31 मार्च, 2003 तक विद्यालयों में नामाकित कराया गया।

3. बालिका शिक्षाः अनामांकित या विद्यालय छोड़ चुकी किशोरियों की शिक्षा हेतु विशेष व्यवस्था के रूप में कैम्प विद्यालय, ब्रिज कोर्स, जगजगी केन्द्र, बाल जगजगी आदि की व्यवस्था की गई है।

4. सर्वव्यापी ठहरावः बच्चों का विद्यालय में ठहराव कुछ हद तक विद्यालय में भौतिक एवं शैक्षणिक परिवेश पर निर्भर है। विद्यलाय परिवेश में सुधार लाने हेतु विद्यालयों को विकास अनुदन उपलब्ध कराने के अतिरिक्त विद्यालयों को भवन, कमरा, शौचालय, चांपाकल आदि की सुविधा प्रदान की गई। अप्रैल 2002 से मार्च 2003 तक की उपलब्धि निम्नवत है-

(क) विद्यालय विकास अनुदानः मार्च 2003 तक कुल 14,026 विद्यालयों का अनुदान उपलब्ध कराया गया।

(ख) विद्यालय में भौतिक सुविधाओं के विस्तान के क्रम में मार्च 2003 तक 231 विद्यालयों के भवन का निर्माण, विद्यालयों में 401 अतिरिक्त कमरे, 248 विद्यालयों में शौचालय तथा 155 विद्यालयों में पेयजल की व्यवस्था की गई है।

निर्माणधीन भवनों, अतिरिक्त कमरों, शौचालय की संख्या क्रमशः 227,372 एवं 192 है। विद्यालयों की सुविधाओं में विस्तार हेतु पूर्ण निर्माणधीन सुविधाओं को आगे एक रेखाचित्र से भी देखा जा सकता है।

5. शिक्षण गुणवत्ता विकासः शिक्षण की गुणवता में सुधार हेतु समुदाय आधारित विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के अलावा राजकीय विद्यालयों के शिक्षको के लिए प्रशिक्षण, शिक्षकों को शिक्षण सामग्री हेतु अनुदान, विज्ञान एवं गणित शिविर, बच्चों के लिए एक्सपोजर विजिट का आयोजन किया गया है एवं विद्यालय में पुस्तकालय की स्थापना की जा रही है।

(क) विद्यालय में शिक्षण समग्री की व्यवस्था हेतु इस वित्तीय वर्ष में 31 मार्च 2003 तक 20,155 शिक्षकों को रु. 500/- प्रति शिक्षक की दर से अनुदान उपलब्ध कराया गया।

(ख) ग्राम शिक्षा अभियान/ शिक्षा गारंटी योजना के अंतर्गत स्थापित विद्यालयों के कुल 4653 कर्मियों को दस दिवसीय प्रशिक्षण दिया गया।

(ग) एक सौ चौरासी शिक्षकों को अंग्रेजी विषय का तथा एक सौ तिरानवे शिक्षकों को गणित विषय का प्रशिक्षण दिया गया।

6. फोकस ग्रुप के बच्चों को निःशुल्क पाठ्य-पुस्तकों की आपूर्तिः झारखंड में पुस्तकों की आपूर्ति का मामला काफी चर्चित और विवादित रहा है। कक्षा एक से एन.सी.ई.आर.टी की किताबें सी.बी.एस.ई. की तर्ज पर पढ़ाए जाने का आदेश जारी किया गया। साथ ही अंग्रेजी को कक्षा एक से अनिवार्य कर दिया गया। इसके पक्ष में यह तर्क दिया गया कि हमें राष्ट्रीय मानकों पर खरा उतरने के लिए हम सी.बी.एस.ई. पाठ्यक्रम के अनुरूप एन.सी.आर.टी की पुस्तकें पढ़ा रहे हैं। इसी तरह अंग्रेजी की अनिवार्यता के पक्ष में दलील दी गई कि आगे बढ़ने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान जरूरी है। यहाँ यह ख्याल बिसरा दिया गया कि बच्चा अपने परवेश के संदर्भ में ही अपने परिवेश के बाहर की दुनिया को जान-समझ पाता है। अब यह कौन बताए कि एन.सी.ई.आर.टी झारखंड को ध्यान में रखकर ही किताबें नही छापता और इस प्रदेश में कई भाषा-भाषी और अलग-अलग समुदायों के लोग बसते हैं। साथ प्राथमिक कक्षाओं में मातृभाषा में सीखना ज्यादा सहज होता है। इतना ही नहीं एक साथ पहली से दसवी कक्षा तक की पुस्तकें बदल दी गई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि छात्रों को जितनी पुसतकें मिनी चाहिए थीं, उतनी आपूर्ति एन.सी.ई.आर.टी से करवाने में असमर्थ रही झारखंड सरकार। फलसवरूप, मैट्रिक की परीक्षा का परिणाम बड़ा बुरा रहा, मुश्किल से 30% के आसवास विद्यार्थी ही परीक्षा में उतीर्ण हो सके। अभी यहाँ की जनजातीय एवं अन्य स्थानीय भाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन की योजना का आश्वासन दिया गया हैं यह कब तक और कितनी जल्दी अमल में आ पाता है।

बहरहाल, झारखंड सरकार के मानव संसाधन विभाग ने निःशुल्क पाठ्य-पुस्तकों का वितरण और आपूर्ति न होने के कारणो को बताते हुए का है, 'विश्व बैंक द्वारा प्रारंभ में एन.सी.ई.आर.टी से सीधे क्रय की अनुमति नहीं दिए जाने के कारण उनके पत्रांक शून्य दिनांक 14 जून, 2002 के आलोक में थोक-विक्रेताओं से पुस्तक क्रय करने का प्रयास किया गया। उपर्युक्त प्रक्रिया में हो रहे विलंब को देखते हुए पुनः सीधे एन.सी.ई.आर.टी से पुस्तक क्रय करने की अनुमति देने का अनुरोध विश्व बैंक से पत्रांक 7221 दिनांग 3.10.2002 द्वारा किया गया। विश्व

बैंक ने अपने पत्रांक शून्य दिनांग 13 नवंबर, 2002 द्वारा अनुमति प्रदान की। तदनुसार, एन.सी.ई.आर.टी नई दिल्ली को इस कार्यालय में पत्रांक 1365 दिनांक 13 नवंबर 2002 द्वारा आपूर्ति संबंधी अनुरोध किया गया। वर्ष 2002-2003 के लिए एन.सी.ई.आर.टी द्वारा पुस्तकों की आपूर्ति कर दी गई है। वर्ष 2003-04 के लिए आपूर्ति आदेश एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली को दिया जा चुका है। और अग्रिम के रूप में कुल रुपये 19 करोड़ का भुगतान किया गया है'।[4]

'शिक्षण की गुणवता में सुधार करन के विशेष प्रयास के रूप में इस विषय पर विशिष्ट कार्यशाला आयोजित कर 'गुणवत्ता के सूचक' चिन्हित किए गए हैं और इसके अनुरवण हेतु उपयुक्त 'प्रपत्र' एवं तरीका निर्धारित किया गया है।'

जनजातीय भाषा में अब तक शिक्षण सामग्री छात्रों शिक्षकों को उपलब्धता नहीं हो पाई है। इसकी प्रक्रिया अभी भी जारी है। सरकारी स्तर पर जो सूचना दी गई उसके अनुसार, जनजातीय भाषा में शिक्षण-सामग्री का विकास पाँच प्रमुख जनजातीय भाषाओं में सहायक शिक्षण सामग्री विकसित की जा रही है। संथाली भाषा में पांडुलिपि तैयार की गई और प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण आयोजित किया गया।

क्षमता विकास के लिए झारखंड सरकार के मानव संसाधन विभाग ने डी. पी.ई.पी कार्यक्रम के अंतर्गत 55 प्रखंड संसाधन केन्द्र एवं कुल 674 संकुल संसाधन केन्द्र स्थापित किए हैं। इसके अलावा ग्राम शिक्षा समितियों के क्षमता विकास हेतु उनके प्रशिक्षण का नया माड्यूल तैयार किगया गया है। मार्च, 2003 तक कुल 11,999 सदस्यों को प्रशिक्षित किया गया। जबकि लक्ष्य 26,865 सदस्यों के प्रशिक्षण का था।

यूनिसेफ एवं अन्य यू. एन. एजेंसी से सहायता प्राप्त कार्यक्रम

प्रारंभिक स्तर पर मानव संसाधन के विकास के लिए यूनिसेफ एवं संयुक्त राष्ट्रसंघ की अन्य एजेंसियों की सहायता से भी झारखंड में कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। झारखंड सरकार की सूचना के मुताबिक इस कार्यक्रम के अंतर्गत राज्य के पाँच जिले-देवघर, गिरिडीह, साहेबगंज पाकुड़ एवं गढ़वा अच्छादित है। प्रारंभ में यह कार्यक्रम पाँच वर्ष (1998-99 से 2002-03) के लिए स्वीकृत किया गया था। इस कार्यक्रम के अवधि विस्तार हेतु भारत सरकार से अनुरोध किया गया था और भारत

सरकार ने दो वर्ष के अवधि विस्तार की सवीकृति प्रदान कर दी है। विस्तारित अवधि के कार्य-योजना एव (2003-04 से 2004-05) पर स्वीकृति भारत सरकार के विचाराधीन है।

कार्यक्रम का उद्देश्य मुख्य रूप से सामुदायिक सशक्तीकरण, शिक्षक सशक्तीकरण एवं महिला सशक्तीकरण रहा है जिसके अंतर्गत मुख्य हस्तक्षेप निम्नवत् है तथा शेष हस्तक्षेप इन जिलों में सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत है।

सामुदायिक सशक्तीकरणः इसके अंतर्गत जो गतिविधियाँ की जा रही है। उनमें पंचायत को इकाई मानकर कार्यक्रम से आच्छादित प्रखण्डों में 20 दिवसीय सूक्ष्म स्तरीय नियोजन एवं सामुदायिक सहभागिता के आधार पर सभी विद्यालयों के लिए ग्राम शिक्षा समितियों का गठन, प्रचायत शिक्षा समितियों का गठन, सूक्ष्म स्तरीय नियोजन के क्रम में चिन्हित असेवित बस्तियों में समुदाय आधारित विद्यालय (ब्ै) खोलना एवं उसे अनुदान उपलब्ध कराना और ग्राम शिक्षा समितियों को विद्यालय विकास अनुदान उपलब्ध कराना।

शिक्षक सशक्तीकरण के तहत सभी शिक्षकों को दस दिवसीय सेवाकालीन प्रशिक्षण और शिक्षकों को ज्स्ड (शिक्षण अधिगम सामग्री) हेतु 500/- प्रति शिक्षक अनुदान जैसी गतिविधियाँ हैं महिला सशक्तीकरण के लिए प्रमुख तौर पर की जाने वाली गतिविधियाँ हैं- ग्राम शिक्षा समितियों में एक तिहाई पर महिला सदस्यों के लिए और अधिक उम्र वाली बालिकाओं के लिए सेतु विद्यालय एवं कैम्प विद्यालय की स्थापना।

31 मार्च, 2003 तक झारखड सरकार ने इस कार्यक्रम के तहत जो उपलब्धियाँ अपने नाम दर्ज की है, उनका विवरण इस प्रकार है-[5]

सामुदायिक सशक्तीकरण-(क) कुल 98 पंचायतों में 20 दिवसीय सूक्ष्म स्तरीय नियोजन का कार्य पूरा किया गया, (ख) कुल 693 औपचारिक विद्यालयों में ग्राम शिक्षण समिति का गठन किया गया, (ग) ग्राम शिक्षा समिति के 4,115 सदस्यों को प्रशिक्षित किया गया, (घ) 2,247 ग्राम शिक्षा समितियों का विद्यालय विकास हेतु अनुदान उपलब्ध कराया गया और (च) कुल 416 असवित बस्तियों में समुदाय आधारित विद्यालय स्थापित किए गए।

शिक्षक सशक्तीकरण की उपलब्धियाँ हैं- (क) औपचारिक विद्यालयों के 2,371 शिक्षकों को दस दिवसीय सेवाकालीन प्रशिक्षण दिया गया और (ख) औपचारिक विद्यालय के 2,332 शिक्षकों को शिक्षण सामग्री के लिए अनुदान उपलब्ध कराया गया।

महिला सशक्तीकरण में कुल 122 माता समितियों के गठन की उपलब्धि दर्ज की गई।

विकलांग बच्चों की शिक्षा की दिशा में-

(क) विकलांग बच्चों के परीक्षण हेतु चिकित्सकीय कैंप का आयोजन किया गया,

(ख) कुल 159 विकलांग बच्चों को विद्यालय में नामांकित कराया गया।

उपर्युक्त मद में यूनिसेफ कार्यालय, पटना से चार किश्तों में कुल 2,79,76,840.00 रुपये प्राप्त हुए।

प्रारंभिक शिक्षा के विकास की दिशा में जो कार्य हुए हैं। उनका संक्षिप्त विवरण हम देख चके हैं। इसके साथ ही झारखंड प्रदेश में साक्षरता कार्यक्रम को भी जारी रखा गया है। इस हेतु झारखंड में 'राज्य साक्षरता मिशन प्राधिकरण का गठन/निबंधन दनिांग 22.03.2003 को हुआ। निदेशक, प्राथमिक शिक्षा, झारखंड, प्राधिकरण के सदस्य सचिव के रूप कार्य संपादन हेतु अधिकृत किए गए हैं।

प्राधिकरण का मुख्य उद्देश्य निर्धारित किया गया है कि राज्य के विभिन्न जिलों के उच्चतर साक्षरता दर की प्राप्ति में सहयोग प्रदान करना एवं समय-समय पर आवश्यक दिशा निर्देंश प्रदान करना।

राज्य के 22 जिले साक्षरता कार्यक्रम के निम्न चरणों में हैं-

(क) सम्पूर्ण साक्षरता अभियान वाले जिले (कुल 12): पाकुड़, गुमला, बोकारो, कोडरमा, देवघर, गिरीडी, लोहरदगा, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, गढ़वा, पलामू एवं सिमडेगा।

(ख) उतर साक्षरता कार्यक्रम वो जिले (कुल 4): साहेबगंज, गोड्डा, धनबाद एवं चतरा।

(ग) सतत शिक्षा कार्यक्रम वाले जिले (कुल 4): जामताड़ा, दुमका, हजारीबाग एवं राँची (हजारीबाग तथा राँची में सतत शिक्षा कार्यक्रम के संचालन की सवीकृति हेतु भारत सरकार को परियोजना प्रस्ताव प्रेषित)।

(घ) अन्य दो जिलों की स्थिति निम्नवत् हैं-

(1) लातेहार- उत्तर साक्षरता कार्यक्रम हेतु परियोजना प्रस्ताव समर्पित करने का निर्देश दिया गया है। प्रस्ताव प्राप्त होते ही अग्रतर कार्रवाई प्रारंभ होगी

(2) सरायकेला-खरसवां- जिला साक्षरता समिति का गठन हो चुका है,

निबंधन की कार्रवाई प्रक्रियाधीन है। संपूर्ण साक्षरता अभियान हेतु परियोजना प्रस्ताव समर्पित करने का निर्देश दिया गया है।

झारखंड सरकार द्वारा जारी प्राथमिक शिक्षा से संबंधित आँकड़ें

क्रम	*शिक्षा संबंधी विवरण*	*संख्या*
1	सरकारी विद्यालयों की कुल संख्या	20,377
2	प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या	16,322
3	मध्य विद्यालयों की कुल संख्या	4,055
4	नए प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या	955
5	शिक्षकों के स्वीकृत पदों की संख्या	65,999
6	कार्यरत शिक्षकों की संख्या	53,996
7	असेवित बस्तियों की कुल संख्या (यथा 1.4.2002)	13,217
8	असेवित बस्तियों की कुल संख्या (यथा 31.3.2003)	1,703
9	शिक्षा गारंटी केन्द्र की कुल संख्या (यथा 1.4.2002)	612
10	शिक्षा गारंटी केन्द्र कुल संख्या (यथा 31.3.2003)	11,514
11	6-11 वर्ग के कुल बच्चों की सख्या (यथा 1.4.2002)	39,56,115
12	सरकारी विद्यालयों (नए प्राथमिक विद्यालय सहित) में 6-11 आयु समूह के नामांकित कुल बच्चों की संख्या (यथा 30.9.2002)	25,21,417
13	गैर-सरकारी विद्यालयों में 6-11 आयु समूल के नामांकित बच्चों की कुल संख्या (यथा 30.9.2002)	5,73,583
14	शिक्षा गारंटी केन्द्र में 6-11 आयु समूह के नामांकित बच्चों की कुल संख्या (यथा 31.3.2003)	3,73,412
15	11-14 आयु समूह के कुल बच्चों की संख्या (यथा 1.4.2002)	15,81,366
16	सरकारी विद्यालयों में 11-14 आयु समूह के नामांकित बच्चों की कुल संख्या (यथा 30.9.2002)	7,59,634
17	गैर-सरकारी विद्यालयों में 11-14 आयु समूह के नामांकित कुल बच्चों की संख्या (यथा 30.9.2002)	3,04531
18	विद्यालय से बाहर बच्चों की कुल संख्या (6-11) (यथा 30.9.2002)	8,61,015
19	विद्यालयों से बाहर बच्चों की कुल संख्या (6-11) (यथा 31.3.2003)	
20.	विद्यालय से बाहर बच्चों की कुल संख्या (11-14) (यथा 1.4.2002)	4,78,058 [6]

झारखंड में संचालित साक्षरता कार्यक्रमों की दृष्टि

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्राधिकरण का गठन 5 मई, 1988 को किया गया। अपने स्थापना काल से ही इसने निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया :

वर्ष 2004 तक पांच स्थायी प्रकृति की साक्षरता दर प्राप्त करना।

15-35 आयु वर्ग के निरक्षरों को कार्यात्मक साक्षर बनाना, जिसमें शामिल है:

अंक और अक्षर का ज्ञान।

अपने वंचित होने के कारणों के प्रति जागरूकता आना।

कौशल विकास द्वारा आर्थिक रूप से मजबूत होना।

राष्ट्रीय महत्व की बातों की पहचान करने में समर्थ होना। [7]

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा अभियान का रास्ता अपनाया गया और निम्न चरणों में इसे प्राप्त करने का लक्ष्य बनाया गयाः

संपूर्ण साक्षरता अभियान।

उत्तर साक्षरता कार्यक्रम।

सतत् शिक्षा कार्यक्रम।

साक्षरता अभियान।

संपूर्ण साक्षरता अभियान निरक्षरता की जड़ता को समाप्त कर एक गतिशील समाज का निर्माण करना है। स्वयंसेवी आधार पर इसका संचालन जिला साक्षरता समिति, गैर सरकारी संस्थाओं तथा समाज के सभी वर्गो के सहयोग से होता है 15-35 आयु वर्ग के निरक्षरों के लिए चलाया जानेवाला यह अभियान क्षेत्र विशेष (जिला स्तर) तथा निश्चित अवधि (12-18 माह) तक चलाया जाता है। व्यावहारिक रूप में प्रशासनिक स्तर से भी इसे सहयोग प्राप्त होता है।

साक्षरता अभियान के पठन-पाठन प्रक्रिया के आईपीएल प्रणाली द्वारा विकसित तीन प्राइमरों के द्वारा 200 घंटे में साक्षर होने की अपेक्षा की जाती है। शब्द विधि आधारित इस प्राइमर में अभ्यास, स्वमूल्यांकन, जांच तथा प्रमाण पत्र एक साथ समाहित रहते हैं। चिन्हित किये गये शिशुओं को पढ़ाने के लिए स्वयंसेवक शिक्षक प्रशिक्षित किये जाते है। पढ़ने-पढ़ाने हेतु उपयुक्त माहौल तैयार किया जाता है तथा अधिक से अधिक समूहिक जन भागीदारी सुनिश्चित करने से पूर्व के

पठन-पाठन की उपलब्धि तथा कार्यक्रम के कार्यान्वयन का मूल्यांकन किया जाता है।

उत्तर साक्षरता कार्यक्रम

साक्षरता अभियान का दूसरा कदम उत्तर साक्षरता कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम मे नवसाक्षर हुए शिशुओं तथा ड्रॉप-आउट एवं छूटे हुए निरक्षरों को शामिल किया जाता है। उत्तर साक्षरता कार्यक्रम में शिशु लगातार शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया से जुड़ कर अपने ज्ञान और दृष्टिकोण को विस्तृत करने का प्रयास करता है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है-पढ़ने-पढ़ाने हेतू उचित माहौल बनाने के लिए ग्रामीण पुस्तकालयों की स्थापना, नवसाक्षर नयी दक्षता प्राप्त कर के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सके तथा सामूहिक गतिविधियों का बढ़ावा देकर स्वयं सहायता समूह का गठन भी कर सके।

विशेष महिला साक्षरता अभियान

2001 की जनगणना रिपोर्ट में झारखंड राज्य में साक्षरता हेतु किये गये प्रयास सामने आये। साक्षरता दर में राष्ट्रीय दशकीय वृद्धि 13% के मुकाबले झारखंड राज्य में 12.7% की वृद्धि दर्ज की, जो कम नहीं है। राज्य में 2001 की जनगणन के अनुसान कुल साक्षरता दर 54.13% है, जो पुरूष एवं महिला में क्रमशः 67.94% एवं 39.98% है। बावजूद इसके राज्य के पांच जिलों में महिला साक्षरता दर 30% से कम है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन कने पूरे देश में 45 ऐसे जिले चिन्हित किये, जहां महिलाओं में साक्षरता दर 30 प्रतिशत से कम है। एसेसे जिलों में झारखंड राज्य के भी पांच जिले हैं। ये जिले हैं- गढ़वा, गिरिडीह, पाकुड़, साहेबगंज एवं गोड्डा। इन जिलों में महिलाओं की स्थिति बदलने तथा उन्हें साक्षर करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्राधिकरण के महानिदेशक, झारखंड सरकार के शिक्षा सचिव तथा पांच जिलों के उपायुक्तों की उपस्थिति में 30 प्रतिशत से कम महिला साक्षरता दर वाले जिलों के लिए एक कार्ययोजना तैयार की गयी।

इस कार्ययोजना के मुख्य बिंदु थेः

जिले में निरक्षर महिलाओं को चिन्हित कर उन्हें पढ़ाई-लिखाई के कार्य से जोड़ना तथा पढ़ाई-लिखाई को छह महीने में समाप्त कर लिया जाये।

महिलाओं को पढ़ाई के साथ-साथ कुछ आर्थिक गतिविधियों (स्वयं सहायता समूह का गठन कर) से भी परिचित कराया गया।

सघन, अनुश्रवण, कार्यक्रम का प्रमुख पक्ष होगा। इन पांच जिलों के अनश्रवण हेतु एक रिसोर्स-सह-रिपोर्ट ग्रुप का गठन करना। [8]

उपर्युक्त कार्ययोजना के सफलतापूर्वक कार्यान्वियन हेतु राज्य संसाधन केंद्र, आद्री के तत्वावधान में रिसोर्स- सह-सपोर्ट ग्रुप का गठन किया गया, जो जिला स्तर प्रशिक्षण एवं कार्यक्रम के कार्यान्वियन में सहयोग करने का कार्य करता है। 2003 के अगस्त महीने में सभी जिलों में कार्य प्रारंभ हो गया। रिसोर्स-सह-सपोर्ट ग्रुप के सदस्यों के उग्रवाद प्रभावित जिले गढ़वा और गिरिडीह में कार्यक्रम में थोड़ा विलंब हुआ, लेकिन उत्पन्न समस्याओं का हल कर लिया गया। रिसोर्स-सह सपोर्ट ग्रुप के सदस्यों के द्वारा कार्यक्रम के प्रत्येक पहलू का अनुश्रवण किया जाने लगा तथा जिला साक्षरता समिति के सदस्यों के साथ मिल कर कार्य तज करने का प्रयास किया गया। प्रायः सभी जगहों पर महिला स्वयंसेविका तथा उनके शिशिक्षुओं में इस कार्यक्रम के प्रति उत्साह देखा गया। इस विशेषज्ञ महिला साक्षरता अभियान हेतु जिलों में महिला कोर ग्रुप, महिला अनुश्रवण दल आदि का भी गठन किया गया। जो गांवों में घूम-घूम कर महिलाओं में साक्षरता की बात कर सकें। जिलों में वहां के उपायुक्त के प्रयास से अल्पसंख्यक समुदाय के धर्मगुरुओं तथा संताल परगना में प्रधानों की बैठक आयोजित कर उनसे भी मदद ली गयी। गढ़वा जिले में अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं तथा साहेबगंज में ईसाई मिशनरी भी स्वेच्छा के साथ इस कार्य से जुड़े। वर्तमान में विशेष महिला साक्षरता अभियान के अंतर्गत सभी पांच जिलों के प्रायः जगहों पर शिशिक्षुओं के द्वारा प्राइमर-1 समाप्त कर लिया गया है। गोड्डा जिले में कार्यक्रम का समवर्ती मूल्यांकन का कार्य संपन्न हो चुका है तथा पाकुड़, गढ़वा, साहेबगंज और गिरिडीह में समवर्ती मूल्यांकन वर्ष 2004 के जून माह तक किये जाने की बात कही गयी।

उत्तर साक्षरता का कार्यक्रम में नवसाक्षर शिशिक्षुओं के लिए पठन-पाठन हेतु सिर्फ एक प्राइमर तथा निरक्ष्जर शिशिक्षुओं के लिए टीएल के तीन प्राइमरों से पढ़ने-पढ़ाने का कार्य किया जाता है इसके अतिरिक्त पुस्तकालायों की स्थापना एवं सुचालन पठन-पाठन के अंतर्गत होता है। लेकिन मुख्य रूप से इस कार्यक्रम के अंतर्गत दक्षता विकास एवं रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण तथा महिला स्वयं सहायता समूह की स्थापना पर विशष बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या तथा विकास शिक्षा को व्यापक बनाना तथा वैज्ञानिक सोच एवं दृष्टिकोण का विकास करना भी

कार्यक्रम का एक हिस्सा है। इस कार्यक्रम की अवधि 12 माह है तथा समाप्त होने से पूर्व कार्यक्रम का प्रभाव, व्यापकता तथा सफलता की जानकारी हेतु मूल्यांकन किया जाता है।

सतत् शिक्षा कार्यक्रम

सतत् शिक्षा की कल्पना शिक्षित या साक्षर समाज के निर्माण के उद्देश्य से की गयी है। इसलिए इस कार्यक्रम में लाभार्थी कार्यात्मक साक्षरता प्राप्त कर चुके नवसाक्षर एवं छूटे निरक्षर तो होते ही हैं, साथ ही साथ स्कूल एवं कॉलेज के छात्रों के अतिरिक्त समाज के वे सभ वर्ग शामिल होते हैं, जो आजीवन शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखते हों। यहीं कारण है कि इस कार्यक्रम के अंतर्गत गतिविधियां थोड़ी भिन्न होती है। जैसे- समकक्षता कार्यक्रम, आय उत्पादक कार्यक्रम, जीवन की गुणवता सुधार के कार्यक्रम, भविष्योन्मुखी कार्यक्रम आदि।

एक सतत् शिक्षा केंद्र की स्थापना 2000 - 2500 जनसंख्या पर की जाती है, जबकि 10-15 सतत् शिक्षा केंद्रों पर एक नोडल सतत् केंद्र बनाया जाता है। इसे पूरे कार्यक्रम की अवधि पांच वर्षो की है। पहले तीन वर्षों में कार्यक्रम को भारत सरकार के द्वारा शत-प्रतिशत अनुदान मिलता हे। जबकि आगे के दो वर्षों में राज्य सरकार तथा भारत सरकार की हिस्सेदारी 50-50 प्रतिशत होती है। वास्तव में इसके पीछे सोच यह है कि पांच वर्षों के उपरांत के केंद्र आत्मनिर्भर हो जायें। इस कार्यक्रम के कार्यान्वियन के पीछे रणनीति यह होती है कि पढ़ाई की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार की हो, जो नवसाक्षरों को अपना लें। निचले स्तर पर विकास के कार्यक्रमों में ज्यादा से ज्यादा जुड़ाव हो। यही कारण है कि जिला स्तर पर कार्यक्रम के कार्यान्वियन तथा अनुश्रवण में पंचायती राज संस्थान, राज्य संसाधन केंद्र, राष्ट्रीय मुक्त विद्याालय, जिला शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान आदि प्रमुख रूप से सहायक संस्था के रूप में कार्य करते हैं।

2. झारखंड में राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम

झारखण्ड के आदिवासी समाज में लड़की के पैदा होने पर मातम नहीं छाता, न भ्रूण हत्या की समस्या है। महिलाओं की जन आन्दोलनों में ऐतिहासिक भागीदारी रही है और आज भी ग्रामीण महिलायें जागरूकता के कार्यक्रमों में हिस्सा लेती हैं। मगर आश्चर्य होता है कि इसी समाज में लड़की को शिक्षित होने से रोकने वाली अनेक शक्तियाँ, प्रवृत्तियाँ व मजबूरियाँ मौजूद हैं। आदिवासी समाज में महिलाओं को जो स्थान प्राप्त है उसे देखते हुए किसी को भी लग सकता है कि यहाँ महिलायें शत-प्रतिशत साक्षर होंगी। मगर सत्य यह है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी झारखंड की महिला आबादी संपूर्ण रूप से साक्षर नहीं है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अवरोधों से जूझते आदिवासी समाज की महिलाओं की एक बड़ी जनसंख्या के लिए शिक्षा अभी भी दूर है।[9]

हालांकि देश में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए केंद्र सरकार ने कोई सराहनीय कदम उठाया है। इसके पहले भी विभिन्न स्तरों पर कई योजनाओं को लागू किया जाता रहा है। शिक्षा के अधिकार (राइट टू ऐजुकेशन), मिड डे मिल, आर्थिक रूप से कमजोर छात्रों के लिए स्कॉलरशिप जैसी स्कीमें काफी कारगर सिद्ध हो रही हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों की सरकारों की तरह झारखंड सरकार भी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए केंद्रीय स्कीमों के अलावा अपने स्तर पर कार्य कर रही हैं। जिसके उत्साहवर्धक परिणाम सामनें आए हैं। यही कारण है कि आजादी के बाद से देश में शिक्षा के स्तर में लगातार वृद्धि दर्ज की जाती रही है। 1931 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर महज 7.2% था जबकि 1947 में यह बढ़कर 12.2% हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1951 में प्रथम जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर 18.33% तक पहुंच गई। जबकि 1961 में 28.30%, 1971 में 34.45% और 1981 की जनगणना के अनुसार देश की साक्षरता दर 43. 57% हो गई। 1991 में पहली बार देश की साक्षरता दर पचास प्रतिशत को पार कर गई और यह 52.21% तक पहुंच गई। 2001 में 64.84% तथा 2011 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता की दर 74.04% हो गई।[10]

बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा हर संभव प्रयास किए जा रहे हैं। इसके लिए विश्व बैंक से भी आर्थिक सहायता ली जा रही है। हर साल बजट में शिक्षा के लिए एक बड़ी राशि दी जाती है। पढ़ने वालों

के लिए केंद्र सरकार छात्रवृति तथा बैंकों से भी लोन उपलब्ध कराए जा रहे हैं। लेकिन इसके बावजूद बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए जिस तरह से योजनाएं चलाई जा रही हैं, उसका शत-प्रतिशत परिणाम देखने को नहीं मिल पा रहा है। इसका एक उदाहरण झारखंड है। जहां शिक्षा की लौ अब भी धीमी है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इस राज्य में साक्षरता की दर 2011 की जनगणना के अनुसार 67.63% है जो देश की औसत साक्षरता दर 74.04% से कुछ ही कम है। राज्य की कुल आबादी तीन करोड़ 29 लाख 66 हजार 238 है। इनमें 78.45% पुरुष जबकि 56.21% महिलाएं साक्षर हैं। लेकिन साक्षरता की यह दर हकीकत से कोसों दूर है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि साक्षरता का पैमाना इस आधार पर तैयार किया जाता है कि अगर कोई व्यक्ति अपना नाम लिख और पढ़ सकता है तो उसे साक्षर मान लिया जाता है।

झारखंड एक आदिवासी बहुल राज्य है और यहां की अधिकांश जनसंख्या गांवों में रहती है। 2011 की जनगणना के मुताबिक राज्य की लगभग 76% (25036946) आबादी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है। झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में 7 वर्ष से ऊपर की आयु में साक्षर ग्रामीणों की संख्या 12973765 है। इसमें ग्रामीण महिलाओं की साक्षर संख्या 5069447 अर्थात् मात्र 49.75 फीसदी ही है।

यहां के गांवों में प्राथमिक विद्यालय तो जरूर हैं, जिससे सरकार का शिक्षा के प्रति लगाव नजर आता है। लेकिन इन विद्यालयों की दशा अच्छी नहीं है। अगर स्कूल हैं तो शिक्षक नही। वहीं दूसरी तरफ नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में यह स्थिति और भी खराब है। नक्सलियों द्वारा बहुत से स्कूल भवनों को उड़ा देने तथा अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों को अर्द्धसैनिक एवं पुलिस कैम्प बना से यहां शिक्षा की व्यवस्था चरमरा गई है। उनके खौफ से शिक्षक इन क्षेत्रों में पढ़ाने से डरते हैं जिससे बच्चों को पूरी शिक्षा नहीं मिल पाती है। इसके अतिरिक्त गांवों में उच्च विद्यालयों की कमी से भी छात्र ऊंची शिक्षा हासिल करने से महरूम रह जाते हैं। आर्थिक तंगी के कारण बहुत से अभिभावक अपने बच्चों को हाई स्कूल पढ़ने के लिए दूसरे जिलों में भेजने में असमर्थ होते हैं। ऐसे में छात्र-छात्राओं का भविष्य मिडिल स्कूल में ही आकर खत्म हो जाता है। ऐसा रूझान बालिका शिक्षा में ज्यादा देखने को मिलता है। हालांकि राज्य सरकार की तरफ से आदिवासी लड़कियों में शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के मकसद से कई योजनाएं शुरू की गई हैं।

सरकार ने लड़कियों के हकों की खातिर सशक्तिकरण के लिए शिक्षा का नारा दिया है लेकिन नारा देना जितना आसान लगता है, लक्ष्य प्राप्ति उतना ही

मुश्किल हो रहा है क्योंकि देश में 50% लड़कियां स्कूल नहीं जा पाती हैं। आखिरी जनगणना के अनुसार, भारत की 49.46 करोड़ महिलाओं में से सिर्फ 53.67% साक्षर हैं। मतलब 22.91 करोड़ महिलाएं निरक्षर हैं। एशिया महाद्वीप में भारत की महिला साक्षरता दर सबसे कम है। स्वयंसेवी संस्था क्राई के अनुसार, भारत में 5 से 9 साल की 53% लड़कियां पढ़ना नहीं जानतीं। इनमें से अधिकतर रोटी के चक्कर में घर या बाहर काम करती हैं। यहां वे यौन-उत्पीड़न या दुर्व्यवहार की शिकार बनती हैं। 4 से 8 साल के बीच 19% लड़कियों के साथ बुरा व्यवहार होता है। इसी तरह 8 से 12 साल की 28% और 12 से 16 साल की 35% लड़कियों के साथ भी ऐसा ही होता है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड्स ब्यूरो को पता चलता है कि बलात्कार, दहेज प्रथा और महिला शोषण से जुड़े मुकदमों की तादाद देश में सालाना 1 लाख से ऊपर है। देश में महिलाओं की कम होती संख्या मौजूदा संकटों में से एक बड़ा संकट है। समय के साथ महिलाओं की संख्या और उनकी स्थितियां बिगड़ती जा रही हैं। जहां 1960 में 1000 पुरुषों पर 976 महिलाएं थीं, वहीं आखिरी जनगणना के मुताबिक यह अनुपात 1000 : 927 ही रह गया। यह उनके स्वास्थ्य और जीवन-स्तर में गिरावट का अनुपात भी है। कुल मिलाकर, सामाजिक और आर्थिक संतुलन गड़बड़ा चुका है।

सरकार ने लड़कियों की शिक्षा के लिए तमाम योजनाएं बनायी हैं। जैसे- घरों के पास स्कूल खोलना, स्कॉलरशिप देना, मिड-डे-मील चलाना और समाज में जागरूकता बढ़ाना। इसके अलावा, ग्रामीण और गरीब लड़कियों के लिए कई ब्रिज कोर्स चलाए गए हैं। बीते 3 बरसों में प्राथमिक स्तर पर 2000 से अधिक आवासीय स्कूल मंजूर हुए हैं। राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के तहत 31 हजार आदर्श स्कूल खुले जिनमें 2 लाख शिक्षकों को लैंगिक संवेदनशीलता में ट्रेनिंग दी गई। इन सबका मकसद शिक्षा व्यवस्था को लड़कियों के अनुकूल बनाना है। ऐसी महात्वाकांक्षी योजनाएं सरकारी स्कूलों के भरोसे हैं। लड़कियों की बड़ी संख्या इन्हीं स्कूलों में है, इसलिए स्कूली व्यवस्था में सुधार से लड़कियों की स्थितियां बदल सकती हैं लेकिन समाज का पितृसत्तात्मक रवैया यहां भी रुकावट खड़ी करता है। एक तो क्लासरूम में लड़कियों की संख्या कम रहती है और दूसरा उनके महत्व को भी कम करके आंका जाता है। हर जगह भेदभाव की यही दीवार होती है। चाहे पढ़ाई-लिखाई हो या खेलकूद, लाइब्रेरी हो लेबोरेट्री या अन्य सुविधाओं का मामला। दीवार के इस तरफ खड़ी भारतीय लड़कियां अपनी अलग पहचान के लिए जूझती हैं। हमारा समाज भी उन्हें बेटी, बहन, पत्नी, अम्मा या अम्मी के दायरों से बाहर निकलकर नहीं देखना

चाहता। दरअसल, इस गैरबराबरी को लड़कियों की कमी नहीं, बल्कि उनके खिलाफ मौजूद हालातों के तौर पर देखना चाहिए। अगर लड़की है तो उसे ऐसा ही होना चाहिए, ऐसी सोच उसके बदलाव में बाधाएं बनती हैं। एक तरफ स्कूल को सशक्तिकरण का माध्यम माना जा रहा है और दूसरी तरफ ज्यादातर स्कूल औरतों के हकों से बेपरवाह हैं।

पाठ्यपुस्तकों में ही लिंग के आधार पर भेदभाव की झलक देखी जा सकती है। ज्यादातर पाठों के विषय, चित्र और चरित्र लड़कों के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। इन चरित्रों में लड़कियों की भूमिकाएं या तो कमजोर होती हैं या सहयोगी। ऐसी बातें घुल-मिलकर बच्चों के दिलो-दिमाग को प्रभावित करती हैं, फिर वह पूरी उम्र परंपरागत पैमानों से अलग नहीं सोच पाते। कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जिनकी गली, मोहल्लों और घरों में महिलाओं के साथ मारपीट होती है। इसके कारण उनके दिलो-दिमाग में कई तरह की भावनाएं या जिज्ञासाएं पनपती हैं लेकिन स्कूलों में उनके सवालों के जवाब नहीं मिलते, जबकि ऐसे मामलों में बच्चों को जागरूक बनाने के लिए स्कूल मददगार बन सकता है। दरअसल, हमारी शिक्षा प्रणाली में ही अभद्र भाषा, पिटाई और लैंगिक-भेदभाव मौजूद है, इसलिए स्कूलों के मार्फत समाज को बदलने के पहले स्कूलों को बदलना चाहिए। आज भी कई जगहों पर लड़कियों की सुरक्षा के लिए चारों तरफ दीवार का होना जरूरी माना जा रहा है। दीवारें बनने के बाद दीवारों के समर्थक हो सकता है गार्डों की तैनाती को जरूरी मानने लगें। दरअसल, हमारे स्कूल उस समाज से घिरे हुए हैं, जहां लड़कियों को सुरक्षा के नाम पर कैद करने का रिवाज है। आज भी ज्यादातर लड़कियों के लिए शिक्षा का मतलब केवल साक्षर बनाने तक ही है। बचपन से ही उनकी शिक्षा का कोई मकसद नहीं होता। इसलिए लड़कियों की शिक्षा को लेकर रचनात्मक ढंग से सोचना जरूरी है। गांधीजी ने कहा था- एक महिला को पढ़ाओगे तो पूरा परिवार पढ़ेगा। उन्होंने 23 मई, 1929 को 'यंग इंडिया' में लिखा-

'जरूरी यह है कि शिक्षा प्रणाली को दुरुस्त किया जाए। उसे आम जनता को ध्यान में रखकर बनाया जाए। गांधीजी मानते थे- ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जो लड़कों-लड़कियों को खुद के प्रति उत्तरदायी और एक-दूसरे के प्रति सम्मान की भावना पैदा करे। लड़कियां के भीतर अनुचित दबावों के खिलाफ विद्रोह पैदा हो। इससे तर्कसंगत प्रतिरोध होगा, इसलिए महिला आंदोलनों को तर्कसंगत प्रतिरोध के लिए अपने एजेंडा में लड़कियों की शिक्षा को केंद्रीय स्थान देना चाहिए। महिलाओं की अलग पहचान के लिए भारतीय शिक्षा- पद्धति, शिक्षक और पाठ्यक्रमों की

कार्यप्रणाली पर नए सिरे से सोचना भी जरूरी है।'[11]

भारत सरकार द्वारा 2004 में अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग की बालिकाओं के लिए सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय उच्च प्राथमिक विद्यालय की स्थापना के लिए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना का शुभारंभ किया गया था। कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की शुरुआत प्रथम दो वर्ष तक एक अलग योजना के रूप में सर्व शिक्षा अभियान, बालिकाओं के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा दिलाने का राष्ट्रीय कार्यक्रम व महिला समाख्या योजना के साथ सामंजस्य बैठाते हुए शुरू की गई थी, लेकिन 1 अप्रैल, 2007 से इसे सर्व शिक्षा अभियान में एक अलग घटक के रूप में विलय कर दिया गया।

झारखंड : साक्षरता दर 2011 [12]

जिला	कुल%	पुरुष %	महिला %
गढ़वा	62.18	74.00	49.43
चतरा	62.14	71.85	51.91
कोडरमा	68.35	81.25	54.77
गिरिडीह	65.12	79.08	50.33
देवघर	66.34	79.13	52.39
गोड्डा	57.68	69.56	44.90
साहिबगंज	53.73	62.65	44.31
पाकुड़	50.17	59.02	41.23
धनबाद	75.71	85.68	64.70
बोकारो	73.48	84.50	61.46
लोहरदगा	68.29	78.62	57.86
पूर्वी सिंहभूम	76.13	84.51	67.33
पलामू	65.50	76.27	53.87
लातेहार	61.23	71.80	50.26
हजारीबाग	70.48	81.15	59.25

राष्ट्रीय बालिका प्रारम्भिक शिक्षा कार्यक्रम [13]

बालिका शिक्षा को अनिवार्य मानते हुए बालिकाओं के लिए शिक्षा का एक अलग कार्यक्रम बनाया गया है। यह कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत अलग एवं विशेष जेंडर कम्पोनेन्ट योजना के रूप में 1 से 8 कक्षा तक की सुविधावंचित बालिकाओं की शिक्षा के लिए है।

झारखंड राज्य में इस कार्यक्रम की शुरुआत 22 सितम्बर 03 को राँची जिले के बिन्दा गाँव के फील्ड सेंटर का उद्घाटन कर किया गया।

बालिका शिक्षा कार्यक्रम क्यों?

सर्व शिक्षा अभियान का एक प्रभाग

जेंडर गैप कम करने के लिए

वैसी बालिका जो शिक्षा से वंचित है उन्हें सपोर्ट करने के लिए

कार्य क्षेत्र

राष्ट्रीय बालिका प्रारम्भिक शिक्षा कार्यक्रम राज्य के सभी जिलों के वैसे प्रखण्ड में कार्यान्वित है जो शैक्षिक रूप से पिछड़े हैं। इसके अलावा वैसे प्रखण्ड भी लिए गए हैं। जहाँ कम से कम 5% अनुसूचित जाति/जनजाति हैं एवं महिलाओं का साक्षरता दर 10% से कम है। साथ ही साथ कुछ चयनित शहरी झुग्गी-झोपड़ी वाले क्षेत्रों में भी यह कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

उद्देश्य

बालिकाओं का शिक्षा के क्षेत्र में अधिक से अधिक सहभागिता, पहुँच के लिए सुविधा का निर्माण। शिक्षा में सुधार एव सशक्तिकरण के लिए बालिकाओं की शिक्षा तथा गुणवत्ता पर जोर।

लक्ष्य

विद्यालय से बाहर की बालिकाएँ

बालिकाएँ जिन्होनें विद्यालय छोड़ दिया हो

अधिक उम्र की बालिकाएँ, जिन्होनें प्रारम्भिक शिक्षा पूरी नही की हो

काम काजी बालिकाएँ
अभिवंचित वर्ग की बालिकाएँ
कम उपस्थिति(अनियमित) वाली बालिकाएँ
कम स्तर की उपलब्धि वाली बालिकाएँ

बालिका शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत पहुँच

बालिका शिक्षा के लिए समुदाय को मोबलाइज करना तथा समुदायिक सहायता का निर्माण।

लिंग संवेदनशीलता से जुड़ी शिक्षण सामग्री को सुनिश्चित करना।

शिक्षकों तथा शिक्षा प्रशासी को लिंग संवेदनशीलता पर प्रशिक्षण देना है।

स्थानीय भाषा में शिक्षण सामग्री के विकास व स्थानीय गतिविधियों के रिसर्च, एक्सटेंशन व विकास के लिए संस्थानों/संस्थानों से नटवर्क।

प्राथमिक शिक्षा में बालिकाओं का भागीदारी का बढ़ाने के लिए आवश्यक सहायता सुनिश्चित करने हेतु संबंधित लोगो से समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करना।

प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए योजना, प्रबंधन एवं मूल्यांकन हेतु राष्ट्रीय राज्य एवं जिला स्तर के संस्थानों एवं संस्थाओं की समक्षता को मजबूत करना।

एक ऐसा मजबूत प्रबंधन संचरता का निर्माण करना जो कि बालिका शिक्षा के चैलेंज का जवाब देने में सक्षम हो।

राष्ट्रीय बालिका प्रारम्भिक शिक्षा कार्यक्रम के अर्न्तगत हस्तक्षेप

1) गाँव सर्वेक्षणः

कार्यक्रम के तहत हर जिले में सर्वेक्षण का कार्य होना है। इसके दौरान गाँव में बच्चों, बालिकाओं की स्थिति, स्कूल आदि का सर्वेक्षण किया जाना है।

2) संकुल निर्माणः

5-10 गाँवों को मिलाकर सक संकुल का निर्माण करना है। इस तरह

से प्रत्येक ब्लॉक में कुल 5 संकुल का निर्माण करना है।

3) माता समिति का गठनः

सामुदायिक मोबलाइजेशन को बालिका शिक्षा की सफलता की कुंजी माना गया है। उतः महिलाओं को महतवपूर्ण मानते हुए माता समिति गठन किया जाना है।

4) मॉडल संकुल विद्यालयः

चयनित प्रखण्डों में संकुल स्तर पर एक मॉडल संकुल विद्यालय चयन करते हुए एक अतिरिक्त वर्ग कक्ष का निर्माण किया जाना है। इन विद्यालयों में सारी सुविधायें निर्माण किया जाना हे। इन विद्यालयों में सारी सुविधायें, जैसे- शिक्षण अधिगाम सामग्री, पुस्तक आदि होंगे। साथ ही इसके अन्तर्गत स्कूलों को उनके उपलब्धि के आधार पर आवार्ड भी दिया जाना है। मुख्य उद्देश्य बालिकाओं की उपलब्धि को बेहतर करना, उनके अंदर शिक्षा के लिए अभिरूचि करना और समुदाय में बालिका शिक्षा के महत्व का बढ़ाना है।

5) पूर्व बालपन केन्द्रः

3 से 6 वर्ष के बच्चों को विद्यालय भेजने के पूर्व की तैयारी हेतु पूर्व बालपन केन्द्र खोलना है। इन केन्द्रो में बच्चों को विद्यालय पूर्व तैयारी करायी जाती है ताकि बाद में वे अपने को आसानी से स्कूल मं समायोजित कर सके। इन केन्द्रों का संचालन करने वाली बालमित्र कहलाती है तथा 10 केन्द्रों पर 1 ए.एस.आर.जी.होती है। जो केन्द्रों का अनुश्रवण करती है।

6) कैम्प विद्यालय/ए.आई.ई.सेन्टरः

किशोरियों के लिए कैम्प विद्यालय तथा ए.आई.ई.सेन्टर खोले जाने हैं। जहाँ से इन्हें मुख्यधारा मे जोड़ा जाना है।

7) राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय से बालिकाओं को जोड़नाः

बालिकाओं को मुख्यधारा में लाने हेतु एक महत्वपूर्ण कदम, उन्हें राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय से जोड़ना है। मुख्यतः वैसी बालिकाएं जिनकी उम्र अधिक है। जो स्कूल नहीं जा सकती, उन्हें लक्ष्य बनाना है।

8) प्रशिक्षणः

कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य, जिला प्रखण्ड, संकुल स्तर पर कार्यक्रम

की समझ तथा कार्यान्वियन पर प्रशिक्षण किया जाना है। ताकि कार्यक्रम संचालन अच्छी तरह हो सके।

9) अन्य हस्तक्षेपः

माता समिति के प्रशिक्षण में सरस्वती वहिनी, स्वयं सहायता समूह, बालिका शिक्षा, पूर्व बालपन शिक्षा, केस आदि का भी जानकारी दी जानी है जिससे कि महिलाओं को इन सभी चीजों की उचित जानकारी हो तथा वे इन क्षेत्रों में अपनी सहभागिता दिखा सके।

जिला संरचना

जिला जेन्डर समन्वयक

सभी कार्यक्रम तथा प्रभाग को देखना तथा आपसी समन्वय स्थापित करना।

जिला जेन्डर यूनिट (जेन्डर समन्वयक, संसाधन व्यक्ति, सहायक स्टाफ)

आवश्यक संसाधन एवं प्रशिक्षण सहायता प्रदान करना।

जिला जेन्डर समन्वयन कमिटी (एम.टी.एस के नॉमिनी, महिला मोटिवोटर ग्रुप, महिला समाख्या संघ, एसटी/एससी संस्थायें, राज्य जेंडर संसाधन समूह)

कार्यक्रम की जाँच तथा कार्यान्वियन की देख-रेख के लिए साल में दो बार बैठक करना।

प्रखण्ड संरचना

कार्यक्रम कार्यान्वियन तथा अनुश्रवण

शिक्षकों तथा शिक्षा प्रशासी का प्रशिक्षण

समुदाय मोबलाइजेशन

बालिका का स्कूल से जुड़ाव, स्कूल पूरा करना तथा उपलब्धि का दैनिक अनुश्रवण

बालिका शिक्षा के लिए समुदाय की मदद से उपयुक्त रणनीति तैयार करना।

कोरटीम(सेवा निवृत शिक्षक, एन.जी.ओ के प्रतिनिधि)

जिला जेन्डर यूनिट के साथ समन्वयन तथा सामंजस्य

सर्वेक्षण तथा गाँव स्तर पर योजना बनाने के लिए समुदाय की भागीदारी बनाना

योजना के कार्यान्वियन का अनुश्रवण

बालिकाओं को विद्यालय से जुड़ाव तथा रिटेन्शन की प्रगति का अनुश्रवण

हस्तक्षेप योजना निमार्ण मे भी ई.सी.तथ एम. टी.ए. की भागीदारी का बढ़ाना

संकुल संरचना

संकुल स्तरीय समन्वयक

कोर ग्रुप/महिला सामाख्या फेडेरेशन (महिला कार्यकर्ता/स्वयंसेवी/अभिभावक)

सामुदायिक मोबलाईजेशन

बालिकाओं का विद्यालय से जुड़ाव/रिटेनश्न तथा उपलब्धि का दैनिक अनुश्रवण

कोर समूह तथा समुदाय की मदद से परियोजना के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए रणनीति तैयार करना

गाँव स्तरीय संरचना

महिला सामाख्या संघ, एमटी.ए.पी.टी.ए. माता समिति, महिला मोटिभेटर समूह, भी.ई.सी.

स्कूल से बाहर की लड़कियों के सर्वेक्षण में मदद करना

बालिकाओं को विद्यालय से जोड़ने में भागीदारी

स्कूल से संबंधित कार्यों की सूचना रखना

ग्रामीण महिलाओं के बैठक हेतु खुला मंच प्रदान करना।

जब 2003-04 में झारखंड में सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत की गई थी उस समय विभिन्न राज्यों का शैक्षिक परिदृश्य निम्नांकित था -

विभिन्न राज्यों के बीच शैक्षिक स्थिति [14]

राज्य	**प्रा. शिक्षा प्राप्त कर चुके 10 वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चे**	**प्राथमिक एवं मा. विद्यालयों में लड़के-लड़कियों का अनुपात**		**छात्र-शिक्षक अनुपात**		**प्रा. व मा. शिक्षा (6 से 10 वर्ष के बच्चों) पर प्रति व्यक्ति खर्च**
		2001-02	2002-03	2001-02	2002-03	रुपये में
झारखंड	34.17	0.70	0.60	24	26	4.80
बिहार	22.93	0.60	0.70	18	20	15.80
छत्तीसगढ़	25.61	0.80	0.90	31	32	6.40
उत्तरांचल	44.40	1.00	1.00	35	38	-
महाराष्ट्र	46.74	-	-	-	-	32.60
पंजाब	38.92	-	-	-	-	30.10
प. बंगाल	40.66	0.90	0.90	31	30	17.80
ओड़िसा	31.36	0.70	0.90	18	17	14.90
तमिलनाडु	65.36	-	-	-	-	30.60
भारत		**0.77**	**0.80**	**21**	**22**	

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि राज्य में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे 10 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों का प्रतिशत मात्र 34.17 ही था। इसका मतलब

हुआ राज्य के 66% स्कूली शिक्षा से बाहर थे। यह ध्यान देने की बात है कि जितनी कम आयु में बच्चा प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी करता है, उतना अधिक ही उच्च स्तर पर विद्यालय की पढ़ाई की संभावना अधिक होती हे।

तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि 2001-02 और 2002-03 में झारखंड के प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में दाखिला लेने वाली लड़कियों का अनुपात लड़कों के मुकाबले लगातार घटा है। यह गिरता हुआ क्रम राज्य के सामाजिक विकास के लिए अच्छा संकेत नहीं है। पूरे देश के स्तर पर राष्ट्रीय अनुपात जहां 0.77 से बढ़ कर 0.80 हो गया, वहीं झारखंड में यह 0.70 से घटकर 0.60 हो गया। इससे साफ है कि राज्य में आदिवासी संस्कृति के अनुरूप समतामूलक समाज होने के बावजूद लिंगगत भेदभाव 'बाहरी सांस्कृतिक' प्रभावों के कारण निरंतर बढ़ रहा है।

जहां तक छात्र-शिक्षक अनुपात की स्थिति है तो वह भी संतोषजनक नहीं है। तालिका के अनुसार सबसे खराब छात्र-शिक्षक अनुपात उत्तरांचल में है जहां 35 छात्रों पर मात्र 1 शिक्षक उपलब्ध है। जबकि झारखंड के छात्र-शिक्षक अनुपात में बहुत हल्का-सा सुधार हुआ है, जो राज्य के शैक्षिक विकास के लिए अच्छे संकेत नहीं हैं।

सबसे बुरी स्थिति प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के प्रत्येक बच्चे पर झारखंड द्वारा किया जाने वाला खर्च हे। बिहार में जहां इस मद में प्रत्येक बच्चे पर 15.80 रुपये खर्च किया गया वहीं झारखंड में यह खर्च उसका चौथाई ही है।

इस प्रकार सर्व शिक्षा अभियान के शुरु होने और राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के प्रारंभ होने के समय झारखंड राज्य की शैक्षिक स्थिति बहुत बेहतर नहीं थी। इसीलिए इन कार्यक्रमों के जरिए प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में सुधार के इस प्रयास को गति दी गई।

सर्व शिक्षा अभियान, झारखंड के प्रोजेक्ट अप्रूवल बोर्ड (PAB) की 12 मार्च 2008 को हुई बैठक में बताया गया कि 2002 में 13.8 लाख बच्चे स्कूल से बाहर थे। इनमें से 2008 तक 12.37 बच्चों को प्राथमिक एवं अन्य शैक्षिक गतिविधियों से जोड़ने में सफलता मिली और यह घटकर 1.43 लाख रह गई है। सत्र 2007-08 में 1.41 लाख बच्चों को शिक्षा से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया था, जिनमें से 46965 बच्चों का नामांकन हो पाया है। चिल्ड्रेन विथ स्पेशल नीड श्रेणी के 33746 बच्चों का नामांकन स्कूलों में कराया गया और 7238 बच्चों को शैक्षिक सुविधा प्रदान की गई।

अगले पृष्ठ पर वर्ष 2007-08 के संकेतकों एवं प्राथमिक शिक्षा की भौतिक स्थिति तथा उसके निदान के लिए झारखंड सरकार के सर्व शिक्षा अभियान द्वारा वर्ष 2008-09 हेतु तय किये गये लक्ष्य को दर्शाया गया है। उक्त तालिका से मालूम होता है कि 2008 के मार्च तक प्राइमरी स्तर पर किसी भी तरह के स्कूल एवं शिक्षा से राज्य के 209662 बच्चे वंचित हैं। बालिकाओं की शिक्षा की दृष्टि से यह ज्ञात होता है कि प्राइमरी स्तर पर सिर्फ 49054 प्रतिशत बच्चों का ही नामांकन संभव हो पाया था और अभी भी 50 प्रतिशत से ज्यादा बालिकाएं शिक्षा के अधि ाकार से बाहर हैं।

तालिका यह भी बताती है कि 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग में नामांकित बच्चों की कुल संख्या में प्राइमरी स्तर पर महज 31.66 प्रतिशत आदिवासी एवं 14. 98 प्रतिशत दलित बच्चों को ही शिक्षा से जोड़ा जा सका। अपर प्राइमरी स्तर पर यह प्रतिशत और भी कम है अर्थात् आदिवासी बच्चे 26.36 प्रतिशत एवं दलित बच्चे 12.68 प्रतिशत ही शिक्षा से जुड़ पाए।

प्राथमिक शिक्षा के संकेतक और लक्ष्य [15]

(वर्ष 2007-08 एवं वर्ष 2008-09)

संकेतक	2007-2008 में भौतिक स्थिति	2008-2009 के लिए लक्ष्य
6-14 आयु वर्ग के बच्चे जो किसी भी स्कूल अथवा शैक्षिक गतिविधि से बाहर हैं	209662	43143
नामांकित बच्चे	प्राइमरी : 53.4 लाख अपर प्राइमरी : 53.4 लाख	प्राइमरी : 54.2 लाख अपर प्राइमरी:11.04 लाख
प्राइमरी से अपर प्राइमरी स्तर पर उत्क्रमित विद्यालयों का अनुपात	3.75 : 1	2.75 : 1
सभी स्तर के एवं होम बेस्ड विद्यालयों में नामांकित समावेशी बच्चों की संख्या	32296	45114
समुदाय एवं लिंगगत स्तर पर प्राइमरी एवं अपर प्राइमरी विद्यालयों में बालिकाओं का नामांकन का प्रतिशत	प्राइमरी : 49.59 अपर प्राइमरी : 45.24	प्राइमरी : 49 अपर प्राइमरी : 47.7
6-14 आयु वर्ग में प्राइमरी एवं अपर प्राइमरी स्तर पर भागीदारी का % आदिवासी बच्चे	प्राइमरी : 31.66 अपर प्राइमरी : 26.36	जनसंख्या के अनुपात में 26.30 प्रतिशत
दलित बच्चे	प्राइमरी : 14.98 अपर प्राइमरी : 12.68	जनसंख्या के अनुपात में 1.8 प्रतिशत
प्राथमिक स्तर पर प्राइमरी से अपर प्राइमरी तक बच्चों की पहुंच का दर	77.76 प्रतिशत	87 प्रतिशत
प्राइमरी स्तर पर रिटेंशन	71.28 प्रतिशत	85 प्रतिशत
प्राथमिक स्तर पर रिटेंशन	कक्षा 1 से 8 तक 38%	50 प्रतिशत

निष्कर्ष

राज्य में सबको शिक्षा देने के लिए सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत 2001-02 में हुई और इस अभियान में झारखंड के सभी जिले शामिल हैं। यह भारत सरकार की योजना है। इस अभियान के तहत 2010 तक सभी को शिक्षा देने का लक्ष्य तय किया गया था। उल्लेखनीय है कि सर्व शिक्षा अभियान राज्य में विलंब से लागू किया गया। इसके लिए राज्य सरकार को केंद्र की चेतावनी भी मिली। सरकार ने झारखंड ग्राम शिक्षा अभियान की शुरुआत की। नामकुम प्रखंड की कोनजारी गांव में इसका ऑनलाइन उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने किया था। बाद में इसे सर्व शिक्षा अभियान में शामिल कर लिया गया। अभियान के पहले वित्तीय वर्ष में प्राप्त 187.46 करोड़ 35 हजार में 111.27 करोड़ 95 हजार 700 रूपये ही खर्च किया जा सका।

शिक्षा के क्षेत्र में सर्व शिक्षा अभियान संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्वीकृत मिलेनियम विकास लक्ष्यों को पाने का ही एक कार्यक्रम है जिसे अलग-अलग देश अलग-अलग तरह से लागू कर रहे है। भारत ने दसवीं पंचवर्षीय योजना में इन्हे राष्ट्रीय विकास लक्ष्य के तौर पर स्वीकार किया था, जिसके तहत सरकार ने 2003 तक सभी बच्चों की स्कूल में भर्ती सुनिश्चित करने और 2007 तक प्राथमिक शिक्षा पूरी करने की गारंटी दी थी। यह लक्ष्य तय समय में पूरा होता नहीं दिखता। भारत में ऐतिहासिक कारणों से दलित और आदिवासी शिक्षा से वंचित रहे है। इसके परिणामस्वरूप अन्य समुदायों के मुकाबले उनकी साक्षरता दर कम और स्कूल छोड़ने की दर बहुत ज्यादा है। दलित और आदिवासी पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य से अभी काफी दूर है। भारत सरकार के सन 2001 के आंकड़ों के अनुसार अन्य समुदायों की साक्षरता दर 68. 8 प्रतिशत के मुकाबले दलितों और आदिवासियों की साक्षरता दर क्रमशः 54.7 और 47.1 फीसदी थी। दलितों और आदिवासियों की स्कूल छोड़ने की दर क्रमशरू 41. 47 और 53.37 थी। हाईस्कूल तक पहुंचते-पहुंचते दलितों के 71.92 और आदिवासियों के 80.29 फीसदी बच्चे स्कूल छोड़ने को मजबूर हो जाते है। संविधान के अनुच्छेद 45 में शिक्षा के नीतिगत सिद्धांतों में कहा गया है कि संविधान के लागू होने के दस सालों के अंदर 14 साल तक के सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए। 1950 से अब तक की सभी सरकारों के तमाम प्रयासों के बावजूद यह लक्ष्य सिर्फ कागजों तक सीमित रह गया है। दलित और आदिवासी बच्चे और अधिक पिछड़ते जा रहे है। नेशनल कौंसिल आफ एजूकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग के पांचवें शिक्षा सर्वे

के मुताबिक पांचवीं कक्षा तक अनुसूचित जाति के 1.47 करोड़ बच्चों ने दाखिला लिया था, जो छठे सर्वे में बढ़कर 1.90 करोड़ ही हो पाए। प्राथमिक शिक्षा में आदिवासियों के 88 लाख बच्चों ने हिस्सा लिया, जो कि कुल बच्चों का मुश्किल से नौ प्रतिशत है। यह दर सामान्य श्रेणी के दाखिल बच्चों से काफी कम है। मिडिल और सेकेंड्री स्तर की कक्षाओं में भी दलित और आदिवासी बच्चों के दाखिले की स्थिति बेहतर नहीं है।

सर्व शिक्षा अभियान, झारखंड के प्रोजेक्ट अप्रूवल बोर्ड (PAB) की 12 मार्च 2008 को हुई बैठक में बताया गया कि 2002 में 13.8 लाख बच्चे स्कूल से बाहर थे। इनमें से 2008 तक 12.37 बच्चों को प्राथमिक एवं अन्य शैक्षिक गतिविधियों से जोड़ने में सफलता मिली और यह घटकर 1.43 लाख रह गई है। सत्र 2007-08 में 1.41 लाख बच्चों को शिक्षा से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया था, जिनमें से 46965 बच्चों का नामांकन हो पाया है। चिल्ड्रेन विथ स्पेशल नीड श्रेणी के 33746 बच्चों का नामांकन स्कूलों में कराया गया और 7238 बच्चों को शैक्षिक सुविधा प्रदान की गई।

राज्य में साक्षरता एवं महिला व बालिका शिक्षा के तमाम कार्यक्रमों और अभियानों के बावजूद स्थिति खराब बनी हुई है और लगभग 60 प्रतिशत बालिकाएं अभी भी शिक्षा से वंचित हैं। इस वंचना के मूल कारणों की पहचान जब तक नहीं की जाएगी और उसके हल की दिशा में ईमानदार प्रयास नहीं होंगे बालिका शिक्षा के लक्ष्य को पाना झारखंड के लिए हमेशा असंभव बना रहेगा। क्योंकि झारखण्ड के आदिवासी समाज में लड़की के पैदा होने पर मातम नहीं छाता, न भ्रूण हत्या की समस्या है। महिलाओं की जन आन्दोलनों में ऐतिहासिक भागीदारी रही है और आज भी ग्रामीण महिलायें जागरूकता के कार्यक्रमों में हिस्सा लेती हैं। मगर आश्चर्य होता है कि इसी समाज में लड़की को शिक्षित होने से रोकने वाली अनेक शक्तियाँ, प्रवृत्तियाँ व मजबूरियाँ मौजूद हैं। आदिवासी समाज में महिलाओं को जो स्थान प्राप्त है उसे देखते हुए किसी को भी लग सकता है कि यहाँ महिलायें शत-प्रतिशत साक्षर होंगी। मगर सत्य यह है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी झारखंड की महिला आबादी संपूर्ण रूप से साक्षर नहीं है। बड़ी संख्या में आदिवासी बालिकाएं शिक्षा से जुड़ने की बजाय पलायन और अन्य कई तरह के शोषण का शिकार हो रही हैं।

संदर्भ एवं स्रोत :

1. झारखंड : प्राथमिक शिक्षा हालात, पृष्ठ-10-11
2. मानव संसाधन विकास विभाग, झारखंड
3. उपरोक्त
4. उपरोक्त
5. उपरोक्त
6. झारखंड शिक्षा परियोजना की वेबसाइट से
7. झारखंड : प्राथमिक शिक्षा हालात, पृष्ठ-51
8. उपरोक्त, पृष्ठ-52
9. वंदना टेटे का साक्षात्कार
10. जनगणना निदेशालय, भारत सरकार
11. कृष्ण कुमार, राज, समाज और शिक्षा, पृष्ठ-112
12. 2011 की जनसंख्या का प्रोविजनल आंकड़ा, जनसंख्या निदेशालय, झारखंड
13. बालिकाओं की प्रारंभिक स्तर पर शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान का दस्तावेज
14. झारखंड : प्राथमिक शिक्षा हालात, पृष्ठ-20-23
15. सर्व शिक्षा अभियान वेबसाइट से

षष्ठ अध्याय

सिमडेगा जिला और बालिका शिक्षा

षष्ठ अध्याय

सिमडेगा जिला और बालिका शिक्षा

सामान्य परिचय

आदिवासी बहुल जिला होने के कारण शुरू से ही इस जिले में आदिवासियों की अपनी परंपरागत सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था रही है। आज भी यहां के मुख्य आदिवासी समुदाय खड़िया के साथ-साथ अन्य दो आदिवासी समुदाय - मुंडा और उरांव अपने परंपरागत खुंटकटी व्यवस्था को कायम रखे हुए हैं। खड़िया आदिवासी समुदाय के सर्वोच्च राजनीतिक संगठन 'डोकलो सोहोर' की कई ईकाइयां इस पूरे खड़िया अंचल में सक्रिय है।

राजनीतिक रूप से सिमडेगा का इतिहास अत्यंत लड़ाकू रहा है और यहां के खड़िया सहित सभी आदिवासी समुदायों व सदान जातियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रही हैं। अंग्रेजी राज और जमींदारी शोषण के खिलाफ खड़िया लोगों ने तेलंगा खड़िया के नेतृत्व में 1880 ई. में ऐतिहासिक संघर्ष किया। वहीं, स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में यहां गंगा विष्णु रोहिल्ला और प्यारा केरकेट्टा जैसे लोग हुए। विशेषकर, खड़िया समुदाय के प्यारा केरकेट्टा ने ही यहां के आदिवासियों की आवाज को पहले आदिवासी महासभा में और बाद में कांग्रेस पार्टी के साथ जुड़कर राजनीतिक चेतना की मशाल जलायी।[1]

इस खड़िया क्षेत्र में अंग्रेजी राज के दिनों में जमींदारी व्यवस्था के लागू हो जाने के बाद बिरू परगना में रजवाड़ी व्यवस्था और आजादी के समय से विभिन्न राजनीतिक विचारों वाले दलों की गतिविधियां प्रारंभ हुई। शुरुआत में मुख्य रूप से आदिवासी महासभा, जो बाद में झारखंड पार्टी बनी, और कांग्रेस का इस इलाके में बोलबाला रहा। कालांतर में अनेक झारखंडी नामधारी पार्टियां आईं। हिंदूत्ववादी भारतीय जनता पार्टी का भी सिमडेगा में विस्तार हुआ। लम्बे समय तक इस जिले से कांग्रेस, झारखंड पार्टी ओर झामुमो के लोग जीत कर विधानसभा और ससंद पहुंचते रहे। वर्तमान में इस जिले में 2 विधानसभा क्षेत्र हैं सिमडेगा और कोलेबिरा। ये दोनों विधानसभा क्षेत्र खूंटी लोकसभा संसदीय क्षेत्र में शामिल हैं। दोनों विधानसभा क्षेत्र आदिवासियों के लिए आरक्षित है। खूंटी लोकसभा संसदीय क्षेत्र भी आदिवासी सीट है।[2]

सिमडेगा जिला : प्रखंडवार जनसंख्या वितरण[3]

प्रखंड	ग्रामीण/शहरी	कुल आबादी	पुरुष	महिला
पाकरटांड़	ग्रामीण	37562	18942	18620
केरसई	ग्रामीण	39276	19593	19683
बांसजोर	ग्रामीण	25527	12853	12674
सिमडेगा	ग्रामीण	72203	36063	36140
कुरडेग	ग्रामीण	48049	23900	24149
बोलबा	ग्रामीण	30666	15181	15485
ठेठई टांगर	ग्रामीण	87426	43513	43913
कोलेबिरा	ग्रामीण	71368	35947	35421
जलडेगा	ग्रामीण	64324	32175	32149
बानो	ग्रामीण	80479	39881	40598
नगर पंचायत	ग्रामीण	42933	21857	21076
सिमडेगा जिला	**कुल**	**599813**	**299905**	**299908**
	कुल ग्रामीण	556880	278044	278832
	कुल शहरी	42933	21857	21076

आजादी के बाद से इन सभी सीटों पर इस क्षेत्र के आदिवासी विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय पार्टियों से चुनाव जीतते रहे हैं। वर्तमान में सिमडेगा विधानसभा क्षेत्र से भाजपा की विमला प्रधान प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

2. इतिहास, भाषा-संस्कृति और सामाजिक-आर्थिक संरचना

इतिहास

झारखंड जंगलों पहाड़ों से आच्छादित होते हुए भी बाह्य जगत से सर्वथा कटा हुआ कभी नहीं रहा। अनन्त काल से देश के अन्य भागों से इसका जातीय और सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा है। फिर भी, प्रबल भौगोलिक प्रभाव के कारण यह क्षेत्र भारत के अन्य भागों से ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बहुत कुछ भिन्न रहा है।[4] यहाँ एक विशिष्ट सभ्यता का प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ जिसने बाह्य प्रभावों के बावजूद अपनी एकात्मकता को अक्षुण्ण बनाए रखा। इसके वनों और पर्वतों ने भारतीय आदिम निवासियों के समुदायों को शरण दी, जैसे मुण्डा, हो, उराँव, संताल चेरो तथा खरवार आदि। द्रविड़ों और आर्यों द्वारा अधिक उपजाऊ प्रदेशों से निकाल जाने पर ये यहीं आकर बस गए। यहाँ उत्तरपाषाण युग के अनेक अवशेष पाए गए हैं। यहाँ की आदिम जातियों की संख्या दिन-प्रति दिन क्षीण होती जा रही है, परन्तु फिर भी इनके रहन-सहन में एक ऐसी सभ्यता का परिचय मिलता है जो आर्यों के पहले से अब तक थोड़ा-बहुत परिवर्तनों के साथ ज्यों-का त्यों चली आ रही है। पुनः ऐतिहासिक युग में यहाँ पर कांकाजोल शासकों, नागवंशियों, सिंहों, रक्सेलों तथा चेरों राजाओं के प्रायः छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य ही रहे हैं।

पुरातत्त्ववेत्ताओं ने खोज करके बतलाया है कि झारखंड की आदिवासी आबादी जनसंख्या प्रारंभ से ही स्थायी रही है। ये लोग भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थानांतरित होते रहे और अंततः झारखंड में स्थायी रूप से बस गए। इनका प्रारम्भिक इतिहास उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों पर आधारित है। लोक-कथाओं से भी थोड़ी-बहुत सहायता मिलती है। फिर भी ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में इनकी प्रारम्भिक अवस्था का क्रमबद्ध वर्णन करना कठिन है।

इस क्षेत्र में नवपाषाणकालीन सांस्कृतिक प्रभाव दो बार क्रम से आया होगा। संभवतः पहला सांस्कृतिक अतिक्रमण 1500 ई0पू0 के लगभग और दूसरा इससे भी पहले हुआ होगा। इसी युग में आस्ट्रोलॉयड आर्थात् मुख्य रूप से मुंडा-भाषी जनजातियाँ झारखंड में आयी होंगी। आर्यों के आगमन के बाद द्रविड़,

उराँव आदि जातियाँ उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों से स्थानांतरित होकर झारखंड आदि क्षेत्रों में पहुँची और वहाँ की प्रोटो- आस्ट्रेलॉयड जनसंख्या को कुछ हद तक प्रभावित किया। खड़िया, बिरहोर तथा असुर झारखंड की प्राचीनतम जनजातियाँ हैं। मुंडा-उराँव, हो जनजातियाँ बाद की और कोरवा प्राचीनतम एवं बाद की जनजातियों के बीच की हैं। चेरो, खरवार, भूमिज तथा संताल आदि और परवर्ती काल की हैं।[5]

झारखंड की प्राचीनतम जनजातियों में एक खड़िया है। वे अभी सिंहभूम तथा मानभूम में बहुत कम संख्या में बच रहे हैं। छोटानागपुर खास में उनकी अपनी बस्तियाँ हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ स्थिति दक्षिण कोयल नदी के निकट की बस्तियों में हैं। प्राचीनकाल में ये रोहतास से लेकर पाटलिपुत्र तक फैले हुए थे। वहाँ से निकाले जाने पर वे दक्षिण कोयल क्षेत्र में चल आये। उनकी सर्वप्रथम बस्ती दक्षिण कोयल के तट पर पोरा नामक स्थान में बसी, वहाँ से वे छोटानागपुर के अन्य भागों में फैल गये। पोरा के बीरू केसलपुर में इनकी दूसरी बस्ती बसी। कहा जाता है कि रोहतास-पटना क्षेत्र में भी दक्षिण भारत की ओर से आये थे। उनकी बहुत सारी मान्यतायें भी मुंडाओं की बजाय द्राविड़ों से अधिक मिलती-जुलती हैं। अतः संभव है कि दक्षिण भारत से विंध्य श्रेणियों को पारकर मगध क्षेत्र होते हुए वे छोटानागपुर में प्रविष्ट हुए होंगे।[6]

खड़िया जाति ने अपने निवास के लिए मध्य भारत के पठारी भाग को ही चुना, जहाँ ऊँची पहाड़ियाँ, घने जंगल और पहाड़ी नदियाँ तथा झरने हैं। इन पहाड़ों की तराइयों में, जंगलों के बीच समतल भागों और ढलानों में इनकी घनी आबादी है। इनके साथ आदिवासियों के अतिरिक्त कुछ दूसरी सदान जातियाँ तुरी, चीक बड़ाईक, लोहरा, कुम्हार, घाँसी, गोंड, भोगता आदि भी बसी हुई हैं। शरत्चन्द्र राय के अनुसार खड़िया लोगों की आबादी बंगाल के बाँकुड़ा, मिदनापुर, बीरभूम और पुरूलिया जिलों में, बिहार के सिंहभूम, लोहरदगा और गुमला जिलों में, मध्यप्रदेश के रायगढ़, सारंगगढ़, शक्ति, छिंदवाड़ा, दुर्ग, बिसालपुर, जयपुर और उदयपुर में अधिक हैं। इनमें से अधिकांश स्थानों के खड़िया लोगों ने हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत या अन्य जन जातियों में अपने को विलय कर लिया है।[7]

भाषा-संस्कृति

भाषा की दृष्टि से यहां खड़िया लोग खड़िया, मुंडा लोग मुंडारी और उरांव लोग कुड़ुख बोलते हैं। सदान वर्ग के सदस्यों के बीच नागपुरी या सादरी का प्रचलन

है। बाहर से आ कर बस गए लोगों के बीच हिंदी मुख्य भाषा है। राजकाज की भाषा हिंदी के प्रचलन से पहले सदान और आदिवासी समुदायों के संपर्क भाषा के रूप में भी नागपुरी का व्यापक प्रचलन रहा है जिसके प्रभाव में आदिवासी समुदायों की भाषा के क्षरण की प्रवृति बढ़ी। लेकिन अब भी आदिवासी समुदायों के बीच अपनी-अपनी भाषा के प्रति लगाव है और नागपुरी व हिंदी के व्यापक प्रचलन के बावजूद उनकी भाषाओं का अस्तित्व सुरक्षित है।

आदिवासी संस्कृति में जंकोर, खद्दी, बा, सरहुल, कदलेटा, नवाखानी, करम और सोहराई पर्व प्रमुख त्योहार हैं। वहीं सदानों की नागपुरिया संस्कृति में सरहुल, नवाखानी, करम और सोहराई के साथ-साथ ईन्द, फगुवा आदि उत्सवों को विशेष महत्व दिया जाता है। सदानों का मुख्य पर्व होली, दशहरा, दिवाली के साथ ही साथ, सरहुल कदलेटा करमा और सरना पूजा भी है। राजाओं और जमीन्दारों की ओर से प्रत्येक सरना में प्रत्येक पर्व में पूजा की जाती थी जिसके लिए पाहान नियुक्त किये जाते थे। सरना पूजा तो अभी तक भी चल रही है।

झूमर, फगुवा, उधवा, दादर, बंगला, खेमटा, अगनई, डमकच, लाईर-झाँझइर इनका मुख्य गीत है। वैसे तो बहुत सी बातें उड़ीसा और नागपुर की एक-सी हैं। उड़ीसा की रासलीला, पाला नाच और डाँड़ धारा नाच भी सिमडेगा में प्रसिद्ध है।

पर्यटन की दृष्टि से भी सिमडेगा को भुटकूरिया और टोंगरी गुफाओं के लिए पूरे विश्व में जाना जाता है। इन गुफाओं के अलावा भी यहां कई पर्यटक स्थल हैं जिनकी सैर करना पर्यटकों को बहुत पसंद आता है। इन पर्यटक स्थलों में काली बंगाली बकरी फार्म, राम रेखा धाम, केलाघाघ बांध, दानगाड़ी और केतुंगा प्रमुख हैं। यह सभी पर्यटक स्थल बहुत खूबसूरत हैं और पर्यटकों की इनकी सैर करना बहुत पसंद आता है।

सामाजिक-आर्थिक संरचना

वर्तमान सिमडेगा जिला ऊँची पहाड़ियों, घने जंगलों और पहाड़ी नदियों तथा झरनों के प्राकृतिक मनोरम दृश्यों से सजा है। इन पहाड़ों की तराइयों में, जंगलों के बीच समतल भागों और ढलानों में खड़िया समुदाय की घनी आबादी है। इनके साथ उरांव व मुंडा आदिवासियों के अतिरिक्त कुछ दूसरी सदान जातियाँ तुरी, चीक बड़ाईक, लोहरा, कुम्हार, घाँसी, गोंड, भोगता आदि भी बसी हुई हैं।

जिले में निवास करने वाले सभी समुदायों का सामाजिक-आर्थिक जीवन

पूरी तरह से कृषि एवं जंगल पर आधारित है। यहां के खड़िया व अन्य आदिवासी समुदाय मुख्यतः खेतिहर समुदाय हैं। इनका एक हिस्सा आहार-संग्रह अवस्था में है। शिकार, मधु, रेशम के कोये, रस्सी और फल तथा जंगली कन्दों पर इनकी जीविका आधरित है। जंगल साफ करके खेती द्वारा गोंदली, मडुवा, उरद, धान आदि पैदा कर लेते हैं।[8]

खेती-किसानी और जंगली वनोपज के अलावा सरकारी एवं गैर सरकारी नौकरियां, दिहाड़ी मजदूरी, छोटा-मोटा व्यवसाय तथा स्थानीय हाट-बाजारों में क्षेत्रीय उत्पादनों का विक्रय ही अब मुख्य रूप से आर्थिक गतिविधियां हैं। विस्थापन एवं अन्य सामाजिक-राजनीतिक दबावों के चलते पलायन कर बहुत से लोग रोजगार एवं आजीविका के लिए रांची एवं दिल्ली, पंजाब आदि शहरों में जा रहे हैं।

3. शैक्षणिक इतिहास और शिक्षा की वर्तमान स्थिति

झारखंड के आदिवासी समुदायों में धुमकुरिया, गीतिओड़ा और अखड़ा एक प्रकार के सांस्कृतिक- सामाजिक शिक्षा के मुख्य केन्द्र थे। व्यवसायिक शिक्षा मूलतः पारिवारिक पृष्ठभूमि में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती थी। गृह-निर्माण, किलाबंदी, युद्ध-विद्या आदि से यहाँ के लोग भली-भाँति अवगत थे, यद्यपि उनके पास विकसित उपकरण नहीं थे। अंग्रेजों के आने के बाद सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक पैटर्न बदलने लगे और साहबी ठाठ-बाट की पढ़ाई शुरू हुई। इस नयी शिक्षा की शुरुआत 1831 ई. के कोल-विद्रोह के बाद हुई। अंग्रेजों को यह वहम था कि यदि यहाँ के लोगों को अपने ढंग से शिक्षित नहीं किया गया तो ये विद्रोही बने रहेंगे। दूसरी ओर जनमत यह था कि सरकार बच्चों को इसलिए मुफ्त पढ़ाना चाहती है कि उन्हें पढ़ा-लिखा कर कलकत्ता भेज देगी।[9]

ऐसी स्थिति में आधुनिक प्रणाली की शिक्षा के प्रचार-प्रसार में यहाँ के अधिकारियों को पर्याप्त अवरोधों का सामना करना पड़ा। किसी तरह 1834 ई. में किसुनपुर (राँची) में एक स्कूल खोला गया जिसमें मुश्किल से 29-30 छात्र पढ़ते थे। सरकार की ओर से भी उपेक्षा ही थी। विलकिन्सन साहब स्वयं अपनी ओर से 50 रु. प्रति माह दे कर इस स्कूल को चलाते थे। बहुत लिखा-पढ़ी के बाद 20 जून 1829 ई. को हजारीबाग, मानभूम, सिंहभूम और किसुनपुर यानी राँची में चार स्कूल चलाने के लिए 210 रु. मासिक व्यय के लिए सरकार ने स्वीकृति दी। शिक्षा के नाम पर जो प्रगति थी, वह नितांत असंतोषजनक थी। 1970-71 ई. में हजारीबाग जिले में मात्र 8 स्कूल थे और छात्रें की संख्या सिर्फ 344 थी। उनकी वास्तविक स्थिति इस प्रकार थी - गौरमेन्ट इंगलिश स्कूल 1, गौरमेन्ट वरनाकुलर स्कूल 4 और एडेड् इंगलिश स्कूल 3।

आजादी के पूर्व आज के झारखंड का सिमडेगा रांची जिला का अंग था। बाद में यह गुमला जिला के अंतर्गत रहा और 2001 में झारखंड अलग राज्य बनने के बाद स्वतंत्र जिला बना। अगर हम सिमडेगा इलाके में शैक्षणिक विकास की बात करें तो, सन 1902 ई. के आस-पास मिशनरी लुकीश ने शंख नदी के किनारे कोरोंजो गांव में लुथेरान मिशन स्टेशन खड़ा किया। इसी के साथ यहां एक माध्यमिक विद्यालय की भी स्थापना मिशनरियों ने की। आगे चलकर कोंडरा, टकरमा, किंकेल और खूंटीटोली में चर्च के साथ स्कूलों की स्थापना हुई। 1909 में रेंगारी में भी

मिशनरियों ने विद्यालय खोला।

शैक्षणिक विकास के संदर्भ में सिमडेगा-गुमला-खूंटी क्षेत्र में खड़िया समुदाय के प्यारा केरकेट्टा का योगदान उल्लेखनीय है। गांधी, ठक्कर बापा और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सम्पर्क में आने के बाद 1947 ई. की जनवरी में इन्होंने स्कूल छोड़ दिया और आदिम जाति सेवक संघ के सदस्य बन कर सिमडेगा आ गए। 1949 ई. में उन्होंने एस. एस. हाई स्कूल की स्थापना की और कल्याण विभाग के सहयोग से नये छात्रावास की शुरुआत की।

इसके बाद तो उन्होंने सिमडेगा में प्राइमरी स्कूलों का जाल-सा बिछा दिया। आदिम जाति सेवा मंडल के अंतर्गत सिमडेगा-गुमला इलाके में उन्होंने इतने स्कूल खोले, जितने शायद सरकारी प्रयास से अभी भी नहीं खुले हैं। इन स्कूलों में उन्होंने सभी वर्गों और जातियों से शिक्षक लिए थे। सुदूर ग्रामीण इलाकों में अपनी पुरानी हरक्युलिस साईकिल से रात-दिन घूमा करते। स्कूलों के निरीक्षण के साथ-साथ शिक्षकों और छात्रों की समस्या पर भी समान रूप से ध्यान देते।

स्कूल खोलने का काम उन्होंने 1936 ई. में ही किया। अपने गांव कसीरा के निकट भालूकोना में प्राथमिक विद्यालय खोला था। अभी उसे बोअस गंझू हाई स्कूल कर दिया गया है। लड़बा (कोलेबिरा), चापाबारी (सिमडेगा) तथा कोरोमियां (ठेठईटांगर) में इन्होंने मिडिल स्कूल खड़ा किया। केरसई मिडिल स्कूल को इन्होंने हाई स्कूल बनाया। बालिकाओं को शिक्षा मिले इसके लिए उन्होंने अपने निवास के बगल में बालिका छात्रवास खोला। उनके अच्छे मित्र रिक्शा चालकों ने इसे 'प्यारा हॉस्टल' नाम दे दिया। यह हॉस्टल आज भी चल रहा है। आगे चल कर सारे स्कूल और छात्रावास सरकार के संरक्षण में ले लिए गए। उनके संरक्षण में खुले स्कूलों और पढ़े-बढ़े लड़कों की लम्बी सूची है।

सिमडेगा का कन्या पाठशाला, राज्य सम्पोषित बालिका माध्यमिक विद्यालय भी प्यारा केरकेट्टा की देन है। वे चाहते थे कि लड़कियों को भी लड़कों के समान ही शिक्षा का अवसर मिले। सिमडेगा कॉलेज की स्थापना में इनकी भूमिका उल्लेखनीय है। यह कॉलेज प्यारा की देख-रेख में ही एस. एस. हाई स्कूल में खुला था। अपनी सक्रियता के अंतिम दिनों में सिमडेगा में महिला कॉलेज की स्थापना के लिए भी इन्होंने काफी प्रयास किया।

स्कूलों और छात्रों की संख्या में दिनानुदिन वृद्धि का एक अंदाजा तत्कालीन राँची जिले (सिमडेगा भी इसी में शामिल है) के इस आंकड़े से लगाया जा सकता है -

समय	स्कूल	छात्र
1931 - 32 ई.	1507	58468
1941 - 42 ई.	1593	65202
1951 - 52 ई.	1790	109265
1961 - 62 ई.	2510	238810
1963 - 64 ई.	2717	251292 [10]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा आदि के कारण स्कूलों एवं छात्रों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च सभी विद्यालयों की संख्या काफी बढ़ी है। शिक्षा के प्रति अभिरूचि भी विकसित हुई है। वर्तमान में सिमडेगा जिला में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति इस प्रकार है -

सिमडेगा जिले में वर्तमान शैक्षणिक सुविधाएं (वर्ष 2011) [11]

विभाग	शिक्षण संस्थान	संख्या
शिक्षा विभाग सर्व शिक्षा अभियान	सरकारी प्राथमिक विद्यालय	540
	वित्त रहित प्रा. विद्यालय	159
	सरकारी माध्यमिक विद्यालय	313
	वित्त रहित अल्पसंख्यक मा. विद्यालय	51
	सरकारी बेसिक विद्यालय	5
	नवोदय विद्यालय	1
	केन्द्रीय विद्यालय	1
	सरकारी उच्च विद्यालय	33
	वित्त रहित उच्च विद्यालय	17
	प्रोजेक्ट विद्यालय	3
	कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालय	7
कल्याण विभाग	आवासीय आदिवासी माध्यमिक विद्यालय	2
उच्च शिक्षा	इंटर/डिग्री कॉलेज	13

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि सिमडेगा जिला की शैक्षणिक स्थिति लगातार प्रगति की ओर अग्रसर है।

प्रखंडवार सभी प्रकार के विद्यालयों की स्थिति निम्नवत है[12] -

सिमडेगा जिले में प्रखंडवार विद्यालयों की स्थिति (वर्ष 2011)

Sr. No.	BLOCK	Govt. School	Govt. Aided incuding Minority	Tribal/Social Welfare School	Local Body	Madarsa	Makhtab	Unaided Private		Total
								Recog.	Unrecog.	
1	KURDEG	977	37	0	1			2	5	1152
2	KOLEBIRA	771	24	0	2			8	24	918
3	BOLBA	349	12	1	0			4	0	396
4	SIMDEGA	1118	46	4	2			23	46	1429
5	THETHAITANGER	713	41	0	0			4	7	874
6	BANO	810	45	6	0			13	15	988
7	JALDEGA	853	31	0	1			2	1	970
	TOTAL :	5591	236	11	6			56	98	6727

सिमडेगा जिले के सरकारी, अभियान एवं अल्पसंख्यक विद्यालयों की संख्या (वर्ष 2011-2012)

प्रखंड	आयु वर्ग	कक्षा 1-5			कक्षा 6-8			कक्षा 10		
		बालक	बालिका	कुल	बालक	बालिका	कुल	बालक	बालिका	कुल
बानो	6-10+	4907	4851	9758	204	214	418	0	0	0
	11-13+	397	440	837	1597	1737	3334	0	0	0
	6-13+	5304	5291	10595	1801	1951	3752	0	0	0
	सभी आयु	**6405**	**6389**	**12794**	**2124**	**2311**	**4435**	**299**	**345**	**644**
बांसजोर	6-10+	1689	1513	3202	61	53	114	0	0	0
	11-13+	156	147	303	483	419	902	0	0	0
	6-13+	1845	1660	3505	544	472	1016	0	0	0
	सभी आयु	**2021**	**1813**	**3834**	**633**	**557**	**1190**	**70**	**79**	**149**
बोलबा	6-10+	2222	2064	4286	67	89	156	0	0	0
	11-13+	152	187	339	516	446	962	0	0	0
	6-13+	2374	2251	4625	583	535	1118	0	0	0
	सभी आयु	**2802**	**2667**	**5469**	**709**	**698**	**1407**	**83**	**134**	**217**
जलडेगा	6-10+	4095	4070	8165	90	161	251	0	0	0
	11-13+	386	305	691	1248	1436	2684	0	0	0
	6-13+	4481	4375	8856	1338	1597	2935	0	0	0
	सभी आयु	**5100**	**4892**	**9992**	**1578**	**1852**	**3430**	**262**	**261**	**523**
केरसई	6-10+	2601	2500	5101	139	155	294	0	0	0
	11-13+	159	108	267	715	863	1578	0	0	0
	6-13+	2760	2608	5368	854	1018	1872	0	0	0
	सभी आयु	**3360**	**3230**	**6590**	**1071**	**1153**	**2224**	**211**	**209**	**420**

कुरडेग	6-10+	4358	4372	8730	222	226	448	0	0	0
	11-13+	557	500	1057	1968	1743	3711	0	0	0
	6-13+	4915	4872	9787	2190	1969	4159	0	0	0
	सभी आयु	**5785**	**5833**	**11618**	**2539**	**2383**	**4922**	**550**	**353**	**903**
कोलेबिरा	6-10+	3251	3008	6259	44	100	144	0	0	0
	11-13+	319	351	670	855	896	1751	0	0	0
	6-13+	3570	3359	6929	899	996	1895	0	0	0
	सभी आयु	**4127**	**4009**	**8136**	**1194**	**1365**	**2559**	**218**	**238**	**456**
पाकरटांड़	6-10+	2360	2479	5109	41	47	88	0	0	0
	11-13+	186	161	347	599	618	1217	0	0	0
	6-13+	2816	2460	5456	640	665	1305	0	0	0
	सभी आयु	**3168**	**3001**	**6169**	**771**	**791**	**1562**	**40**	**49**	**89**
सिमडेगा	6-10+	7386	6734	14120	225	172	397	0	0	0
	11-13+	717	1065	1782	2777	3237	6014	0	0	0
	6-13+	8103	7799	15902	3002	3409	6411	0	0	0
	सभी आयु	**9380**	**8641**	**18021**	**3835**	**4248**	**8083**	**1114**	**1125**	**2239**
ठेठईटांगर	6-10+	5761	5322	11083	168	138	306	0	0	0
	11-13+	605	746	1351	2219	2112	4331	0	0	0
	6-13+	6366	6068	12434	2387	2250	4637	0	0	0
	सभी आयु	**7579**	**7058**	**14637**	**2734**	**2673**	**5407**	**411**	**435**	**846**
कुल योग	**सभी आयु**	**49727**	**47533**	**97260**	**17188**	**18031**	**35291**	**3258**	**3228**	**6486**

4. सिमडेगा जिला में बालिका शिक्षा की स्थिति

"महिलाएं शिक्षित होगी तभी पूरा परिवार सुशिक्षित होगा।" इसी अवधारणा को लेकर झारखंड के प्रत्येक जिले में बालिका शिक्षा कार्यक्रम पर विशेष जोर दिया जा रहा है ताकि राज्य के प्रत्येक आंगन तक शिक्षा की लौ पहुंचायी जा सके और अज्ञानता का अंधेरा दूर भागे। इसके लिए सिमडेगा जिला में भी बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी, दोनों ही स्तरों पर अनेक शैक्षणिक कार्यक्रमों को संचालित किया जा रहा है।

2011 की जनगणना के अनुसार सिमडेगा जिला में महिला साक्षरता दर 59.38 प्रतिशत है। इसमें 6 वर्ष तक के बालिकाओं की संख्या शामिल नहीं है। 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों की कुल संख्या 91297 है जो कि जिले की कुल आबादी का 15.22 प्रतिशत होता है। इसमें बालिकाओं की संख्या 45067 है।[13]

महिला साक्षरता और उसमें भी बालिकाओं की शिक्षा में पिछड़ापन किसी भी समाज के लिए चिंता का विषय है। यह आर्थिक पिछड़ेपन के साथ-साथ सामाजिक भेदभाव को भी व्यक्त करता है। इस दृष्टि से आदिवासी बहुल सिमडेगा जिला की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। बालिका एवं किशोरी पलायन की दर राज्य में यहां सबसे ज्यादा है। आर्थिक कारणों के अलावा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव इस पलायन का प्रमुख कारण है।

सिमडेगा जिले में बालिका शिक्षा

आधुनिक शिक्षा जब से लागू हुई है सिमडेगा जिले में शिक्षा को सह-शिक्षा के रूप में अपनाया गया है। इसके कई कारण हैं-

1. आदिवासी समाज में पर्दा-प्रथा नहीं है। आदिवासी-सदान जातियों में रिश्तों की मर्यादा के तहत ज्येष्ठ (जेठ, भैंसुर) और ससुर के साथ दूरी बरतते हैं। सदान जाति की स्त्रियाँ सिर ढँकती हैं। आदिवासी जातियों मे सिर ढँकने का रिवाज नहीं है।

2. कार्य क्षेत्र- पितृसत्तात्मक समाज यहाँ भी है किन्तु काम का क्षेत्र एक ही है। खेतों और वनों में सारे स्त्री-पुरुष समान रूप से काम करते है। कुछ राजपूत, ब्राह्मण और मुस्लिम महिलाएँ वन नहीं जातीं।

परन्तु मुस्लिम महिलाएँ चूड़ी आदि बेचने के लिए हाट जाती हैं।

3. पारिवारिक निर्णय- कई निर्णय माता लेती है। अतः माता की भूमिका बेटी के सहयोग करने में महत्वपूर्ण होती है।

4. कक्षा 3 तक की बच्चियाँ माँ को शिक्षा के माध्यम से अधिक सहयोग करती हैं। वे छोटे भाई या बहन को शिक्षा के माध्यम से अधिक सहयोग करती हैं। वे छोटे भाई या बहन को स्कूल लेकर जाती हैं। इस समय तक घरेलू काम निपट जाता है।

(यह सुविधा सरकारी स्कूलों में व्यवस्था प्रदान करती है। सरकारी दुर्गम स्कूलों में अभी सिर्फ दो शिक्षक काम कर रहे हैं।)

इस स्तर पर भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी है।

माध्यमिक शिक्षा

सिमडेगा जिले में बालिका शिक्षा हेतु कई कार्यक्रम चल रहे हैं। सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तर पर अनेक सराहनीय प्रयास हुए हैं और हो रहे हैं लेकिन माध्यमिक शिक्षा तक पहुँचते-पहुँचते बालिकाओं का छीजन होने लगता है।

सिमडेगा जिला में अभी तक सिर्फ एक राजकीयकृत बालिका उच्च विद्यालय है। इसके अलावा सिमडेगा, ठेठईटांगर, कुरडेग, बोलबा, कोलेबिरा, बानो और जलडेगा प्रखंडों में एक-एक सरकारी प्राथमिक या मध्य विद्यालय हैं। संपूर्ण जिले में सभी स्तरों पर संचालित अल्पसंख्यक बालिका विद्यालयों की कुल संख्या 12 है।

सिमडेगा जिले में संचालित अल्पसंख्यक बालिका विद्यालय[14]

प्रखंड	बालिका विद्यालय
बानो	1
बोलबा	1
जलडेगा	2
कोलेबिरा	2
कुरडेग	2
सिमडेगा	3
ठेठईटांगर	1

प्लस टू एवं डिग्री महाविद्यालयों की संख्या 13 है। महिला महाविद्यालय सिर्फ एक है। जाहिर है ऐसी स्थिति में आर्थिक अभावों से जूझते आदिवासी परिवार चाह कर भी अपनी बालिकाओं को शिक्षा नहीं दिला पाते हैं। परिणाम यह होता है कि अर्द्धशिक्षित बालिकाएं दलालों के चंगुल में फंस कर पलायन करने को राजी हो जाती हैं।

जिले में बालिका शिक्षा की स्थिति कैसी खराब है, यह इसी बात से पता चलता है कि प्राथमिक से ले कर उच्च शिक्षा तक में वर्ष 2008-09 तक मात्र 49.32 बालिकाएं ही अध्ययनरत थीं। इनमें से बानो प्रखंड में 49.57 प्रतिशत, बोलबा प्रखंड में 50.85 प्रतिशत, जलडेगा प्रखंड में 49.50 प्रतिशत, कोलेबिरा प्रखंड में 49.49 प्रतिशत, कुरडेग प्रखंड में 49.62 प्रतिशत, सिमडेगा प्रखंड में 49.49 प्रतिशत और ठेठईटांगर प्रखंड में अध्ययन करने वाली बालिकाएं मात्र 49.57 प्रतिशत हैं। इससे स्पष्ट है कि लगभग 52 प्रतिशत बालिकाएं अभी भी शिक्षा से वंचित हैं। (देखें तालिका अगले पृष्ठ पर)[15]

राज्य में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों का मानना है कि अशिक्षा के कारण बालिकाएं दलालों के बहकावे में आ जाती हैं। इस संबंध में उनका कहना है कि नौ प्रतिशत बिचौलिये के बहकावे में, तीन प्रतिशत पारिवारिक दवाब में, 37 प्रतिशत दोस्तों/सहेलियों के साथ, शेष 51 प्रतिशत परिवार के अन्य सदस्यों के साथ पलायन करते हैं। सर्वाधिक पलायन करने वालों में 67 प्रतिशत 20 वर्ष से कम आयु वर्ग की, 15 प्रतिशत 20 से 25 तथा 18 प्रतिशत 25 से अधिक आयु वर्ग के होते हैं। इनमें से 10 फीसदी महिलाएं महिलाएं लौट कर नहीं आतीं। या यों कहे, उनका कुछ अता-पता नहीं चलता। शेष महिलाएं किसी न किसी रूप में शारीरिक व मानसिक शोषण की शिकार होती हैं। नौकरी की तलाश में जाने वाली हजारों महिलाएं अस्मत लूटा कर आती है। दिल्ली इन महिलाओं के खरीदार की सबसे बड़ी मंडी है। इसके अलावा मुंबई, यूपी, कोलकाता, उड़ीसा आदि राज्यों में भी इनकी बोली लगती है।[16]

यह संतोष की बात है कि इस चिंताजनक हालात से निपटने के लिए सन् 2003 में संपूर्ण झारखंड में राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत की गयी। बालिका शिक्षा को अनिवार्य मानते हुए बालिकाओं के लिए शिक्षा का यह एक अलग कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत अलग एवं विशेष जेंडर कम्पोनेंट योजना के रूप में। एक से आठ कक्षा तक की सुविधा वंचित बालिकाओं की शिक्षा के लिए है।

बालिका शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने के लिए प्रारंभ की गई

विभिन्न स्कूलों में बालिका शिक्षा का प्रतिशत

	School Categories						
Block Name	Primary Only	Primary with Upper Primary	Primary with UP &Sec/H.Sec.	Upper Primary Only	Upper Primary with Sec./H.Sec.	No Response	All Schools
Academic Year:	2008-09						
BANO	49.93	48.80	43.95	0.00	56.65	0.00	49.57
BOLBA	50.46	50.19	0.00	0.00	58.22	0.00	50.85
JALDEGA	49.34	48.90	0.00	0.00	55.55	0.00	49.50
KOLEBIRA	49.46	49.69	47.97	0.00	48.80	0.00	49.49
KURDEG	46.53	49.46	0.00	0.00	51.99	0.00	47.62
SIMDEGA	49.05	49.82	41.68	0.00	53.85	0.00	49.49
THETHAITANGER	49.94	48.42	49.34	0.00	68.68	0.00	49.57
Total	**49.04**	**49.28**	**44.64**	**0.00**	**54.38**	**0.00**	**49.32**

इस योजना को सर्वशिक्षा अभियान के एक प्रभाव के रूप में स्वीकृत किया गया है। झारखंड के सभी जिलों के वैसे प्रखंड जो कि शैक्षिक रूप से पिछड़े हैं, उनमें जेंडर गैप को कम करने तथा वैसी बालिकाएं जो शिक्षा से वंचित हैं, उन्हें सपोर्ट करने के लिए इस कार्यक्रम को लागू किया गया है। इसमें उन प्रखण्डों को भी लिया गया है जहां दलित एवं आदिवासी की महिलाओं की साक्षरता दर 10 प्रतिशत से भी कम है।

इस संदर्भ में प्राइवेट स्कूलों की भी भूमिका महत्वपूर्ण है। सिमडेगा जिला में प्राइवेट स्तर पर संचालित अनेक विद्यालय है जिनमें छात्राओं की उपस्थिति है। अपने अध्ययन के क्रम में मैंने सिमडेगा और ठेठईटांगर, दो प्रखंडों में चल रहे दो प्राइवेट स्कूलों का अवलोकन किया। इन दोनों स्कूलों में छात्र-छात्राओं की संख्या इस प्रकार थी -

विद्यालय का नाम	**प्रखंड**	**छात्र**	**छात्राएं**
आदिवासी उत्थान संघ	ठेठईटांगर	63	39
जुनियर कैम्ब्रिज स्कूल खैरनटोली	सिमडेगा	60	43

इसी प्रकार, ईसाई मिशन द्वारा संचालित स्कूलों में भी बड़ी संख्या में बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिल रहा है। ईसाई मिशन द्वारा संचालित स्कूलों में बालिकाओं के नामांकन की स्थिति क्या है, इसे जानने के लिए हमने कुछ विद्यालयों का भ्रमण किया। अपने भ्रमण में मैंने पाया कि ईसाई मिशनरियों के स्कूलों में भी बालिका छात्रों की स्थिति संतोषजनक है। प्रस्तुत है कुछ ईसाई मिशन संचालित स्कूलों में छात्र-छात्राओं की उपस्थिति -

विद्यालय का नाम	**प्रखंड**	**छात्र**	**छात्राएं**
आर.सी.पी.एस., भंवरपानी	ठेठईटांगर	46	37
जी.एल.पी.एस., भेड़ीकुदर	सिमडेगा	36	44
आर.सी.पी.एस., विधन्इनटोली	ठेठईटांगर	106	96
जी.एल.एम.एस., कोचेडेगा	ठेठईटांगर	136	131
आर.सी.पी.एस., जमुनाखैर	ठेठईटांगर	80	75

5. राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम द्वारा बालिका शिक्षा में हस्तक्षेप

राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य है बालिकाओं का शिक्षा के क्षेत्र में अधिक से अधिक सहभागिता, पहुंच एवं ठहराव के लिए सुविधा का निर्माण करना। शिक्षा में सुधार एवं सशक्तिकरण के लिए बालिकाओं की शिक्षा तथा गुणवत्ता पर जोर देना। मातृभाषा में शिक्षण इस कार्यक्रम के प्रमुख उपकरणों में एक है। राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए मातृभाषा की प्रभावी भूमिका का इसमें उपयोग एक पहल है। जिसके सार्थक परिणाम भी देखने को मिल रहे हैं। छीजन को रोकने तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, मातृभाषा के प्रयोग के पीछे ये दो मुख्य कारण हैं।

बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान का एक अलग विभाग है ताकि हर बालिका तक शिक्षा की पहुँच बनायी जा सके एवं बालक तथा बालिका की साक्षरता में अन्तर को कम किया जा सके।

झारखंड राज्य के परिप्रेक्ष्य में महिला साक्षरता के विशेष मायने हैं क्योंकि झारखंड में महिला साक्षरता का प्रतिशत 33.57 है जबकि राष्ट्रीय औसत 54.16 प्रतिशत का है।

झारखंड में महिला एवं पुरुषों का अनुपात 921 महिला प्रति 1000 पुरूष है। ज्ञातव्य हो कि सन 1901 में यह औसत 1060 महिला प्रति 1000 पुरुष था।

सिमडेगा जिला में बालिका शिक्षा का हस्तक्षेप

यह सर्वविदित है कि समाज में महिलाओं एवं बालिकाओं की स्थिति में सुधार के लिये शिक्षा की अहम भूमिका है। लिंग भेद को खत्म करना और सीखने की प्रवृति को बनाये रखना सर्व शिक्षा अभियान एवं बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है।

इसी उद्दश्य के तहत सिमडेगा जिला में वर्ष 2003-04 के दौरान बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम निम्नांकित जगहों के लिये स्वीकार किया गया -

1. ग्रामीण प्रखण्ड जहाँ का शिक्षा स्तर कम है। बालिका शिक्षा

राष्ट्रीय औसतन शिक्षा (46.13 प्रतिशत) से कम है एवं पुरुष-महिला साक्षरता अन्तर राष्ट्रीय औसत (21.7 प्रतिशत) से अधिक है।

2. ऐसे प्रखण्ड, जहाँ अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या कम से कम 5 प्रतिशत हो और उनमें महिलाओं की शिक्षा दर 10 प्रतिशत से कम हो।

3. चुने हुए शहरी झोपड़पट्टियों में जिनका चुनाव 2001 के जनगणना पर आधारित है।

कार्यनीति

शैक्षिक रूप से पिछड़े प्रखंड में बालिकाओं की शिक्षा से सबंधित निम्नांकित पहलुओं पर कार्य करना -

क) संकुल आधारित योजना निर्माण।

ख) जेंडर सम्बन्धी शिक्षण सामग्री प्रदान करना।

ग) शिक्षक एवं प्रशासन को जेंडर के प्रति संवेदनशील बनाना।

घ) संस्थाओं से मिलकर स्थानीय भाषाओं में शिक्षण सामग्रियों का निर्माण।

ङ) बालिका शिक्षा में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए समुदाय की भागीदारी से एक ढांचा तैयार करना।

उद्देश्य

बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य निम्नांकित है-

6 से 14 वर्ष की सभी बालिकायें विद्यालय में नामांकित हो। इसके लिए अभिभावक, शिक्षक-छात्रों के बीच मातृभाषा में लगातार संवाद स्थापित हो। उनके लिए पठन-सामग्री उपलब्ध कराना, ताकि मन शिक्षा में लगे।

नामांकित बालिकायें प्रारंभिक शिक्षा की पढ़ाई पूरी होने से पहले विद्यालय को बीच में न छोड़ें।

ऐसी बालिकाएँ जो किन्हीं कारणों से विद्यालय में नामांकित नहीं है

उनके लिये पढ़ाई की विशेष व्यवस्था करना।

सशक्तिकरण हेतु बालिकाओं की शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित करना।

शिक्षा में बालिकाओं एवं महिलाओं की समान भागीदारी सुनिश्चित करना।

विशेष फोकस

बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम का विशेष फोकस निम्नांकित है -

6 से 7 साल उम्र तक की सभी बालिकाओं को विद्यालय में नामांकन करवाना

बड़ी उम्र की अनामांकित छिजनग्रस्त बालिकाओं को ब्रिज कोर्स के माध्यम से पढ़ाई पूरी करने हेतु प्रोत्साहित करना

कक्षा 5वीं पास करने वाली सभी बालिकाओं को कक्षा 6ठीं में नामांकन करवाना।

ऐसी बालिकायें जो 5वीं पास करने के बाद 6ठीं में नामांकन न हो पायें उन्हें ओपन स्कूल के माध्यम से शिक्षा पूर्ण करवाना।

समीक्षा एवं मॉनिटरिंग

गठित समूहों द्वारा कार्यक्रम की विभिन्न गतिविधियों की नियमित मॉनिटरिंग एवं समीक्षा की जाती है। समूह के सदस्य देखेंगे कि -

सभी बालिकायें विद्यालय में नामांकित हैं या नहीं, गांव स्तर पर इसकी जांच की जा ती है या नहीं।

नामांकित बालिकायें नियमित रूप से शाला में उपस्थित हो रही है या नहीं - नहीं हो रही है तो क्यों नहीं?

गुणवत्ता युक्त शिक्षा : गांव के लोगों से वार्त्तालाप के आधार पर। क्या निरंतरता टूट रही है?

समय पर पाठ्यपुस्तकें, यूनिफॉर्म इत्यादि प्राप्त हो रही है या नहीं, नहीं तो इस पर पहल करना।

उक्त समस्त बिन्दुओं पर नियमित समीक्षा, समस्या की पहचान, समाधान एवं उसके आधार पर आगे की कार्ययोजना बनायी जाती है।

प्रमुख गतिविधियाँ

मॉडल क्लस्टर विद्यालय बनाना : प्रखंड स्तर पर शर्तें

क) 1. बालिका शिक्षा की दृष्टि से प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय जिसमें बालिकाओं का नामांकन अपेक्षाकृत अधिक हो, 2. विद्यालय की अपनी पर्याप्त जमीन हो, 3. अनुसूचित जाति / जनजाति / अन्य पिछड़ा वर्ग / अल्पसंख्यक की बालिकाओं की संख्या अधिक हो को मॉडल विद्यालय बनाया जाता है।

ख) मॉडल क्लस्टर विद्यालय में अतिरिक्त कक्ष निर्माण के लिए 2 लाख रुपये का अनुदान दिया जाता है, इस राशि से विद्यालय में शौचालय, बिजली की व्यवस्था एवं पेयजल की व्यवस्था भी की जाती है।

ग) बालिकाओं के लिए उनकी रूचि के अनुरूप व्यावसायिक प्रशिक्षण।

घ) 'स्व-रक्षा' एवं कौशल विकास संबंधी प्रशिक्षण। जिसके लिए अतिरिक्त कक्ष का उपयोग किया जाएगा।

ङ) इस कक्ष का उपयोग संकुल की नामांकित या अनामांकित सभी कर सकती हैं। मीना मंच की बैठक, माता समिति की बैठक, माँ बेटी मेला की पूर्व तैयारी, उपचारात्मक शिक्षा, आवासीय प्रशिक्षण आदि के लिए भी उपयोग कर सकती हैं।

शिक्षण अधिगम सामग्री - प्रत्येक के लिए संकुल को एक मुश्त अनुदान के रूप मे रु. 30000/- (रूपये तीस हजार) दिया जाता है।

हरेक संकुल को 60000.00/- (रुपये साठ हजार) एक वर्ष में दिया जाता है।

जिसे इस प्रकार खर्च किया जाता है -

आवर्ती अनुदान प्रत्येक संकुल को सालाना रु. 20000/- निम्नलिखित कार्यक्रमों के लिए

विशेष शिक्षक/प्रशिक्षकों के लिए (मानदेय के रूप में अधिकतम रु.

1000/- मासिक तीन माह तक के लिए) 1000 X 3 = 3000 विद्यालय के मरम्मत के लिए।

विद्यालयों के लिए पुरस्कार (प्रति वर्ष) रु. 5000/-

संकुल के किसी एक विद्यालय को जिसमें की पोषक क्षेत्र की बालिकाओं का 90 प्रतिशत नामांकन हो गया हो, उनकी उपस्थिति एवं उपलब्धि अच्छी हो को 5000 रु. (नगद में नहीं) का पुरस्कार प्रति वर्ष दिया जा सकता है। इस राशि का
उपयोग बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने वाली किसी सामग्री की क्रय में किया जा सकता है।

उपचारात्मक शिक्षा/ब्रिज कोर्स/वैकल्पिक विद्यालय रु. 20000/-

उपचारात्मक शिक्षा

विद्यालय में नामांकित बालिकाएँ जिनकी शिक्षा का स्तर वर्गवार नहीं बढ़ रहा है को आवश्यकतानुसार दक्षता प्राप्त कराने हेतु उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यालय के प्रत्येक वर्ग की वार्षिक परीक्षा का विश्लेषण संकुल-स्तर पर कराया जाय एवं पिछड़नेवाली बालिकाओं को विद्यालयवार चिन्हित कर उनके उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाय।

उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था विद्यालय शिक्षा समिति के माध्यम से की जा सकती है। विद्यालय शिक्षा समिति इस हेतु अलग से उपचारात्मक शिक्षक / शिक्षिका की व्यवस्था करेगी जो विद्यालय के शिक्षक नहीं होंगे। उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था विद्यालय अवधि के बाद एवं पूर्व में दो घंटे के लिये की जायेगी जो रात्रि अवधि में नहीं होगी एवं यह व्यवस्था छुट्टी के दिनों में भी संचालित होगी। उपचारात्मक शिक्षण हेतु विद्यालय परिसर का उपयोग किया जा सकता है। संकुल के किसी दो विद्यालय में उपचारात्मक शिक्षक की व्यवस्था की जा सकती है।

गैरआवासीय ब्रिज कोर्स

बच्चों को अपनी उम्र के मुताबिक औपचारिक स्कूल में उचित कक्षा में प्रवेश पाने के लिये तैयार करना।

ऐसी टोलों में जहाँ कम से कम 20 बच्चे विद्यालय से बाहर हैं।

3 माह की अवधि के लिये संचालित किये जा सकते हैं। यह अवधि बच्चों की उम्र व उनके स्तर पर निर्भर करेगी, ब्रिज कोर्स के बच्चे अंततः विद्यालय में ही नामांकित करवाये जायेंगे।

प्राथमिकता के आधार पर विद्यालय में यदि स्थान की कमी हो तो समुदाय द्वारा प्रदान किये गये स्थान पर चलाया जायेगा।

ब्रिज कोर्स के लिये स्थानीय स्तर पर एक स्वंयसेवक/ स्वंयसेविका समुदाय द्वारा रखा जायेगा जिसे 1000 रु. प्रतिमाह मानदेय अधिकत्तम तीन माह तक दिया जायेगा, प्रतिमाह बच्चों के मूल्यांकन के आधार पर मानदेय देय होगा।

स्वंयसेवक/सेविका की शैक्षणिक योग्यता न्यूनत्तम 12वीं पास होगी। किन्तु अपेक्षाकृत अधिक पढ़े लिखे व्यक्ति/महिला को प्राथमिकता दी जाएगी।

वैकल्पिक विद्यालय

आवश्यकता पड़ने पर सर्व शिक्षा अभियान के वैकल्पिक नवाचारी शिक्षा के तहत उपलब्ध राशि से बालिकाओं के अपने टोले, मुहल्ले में उनके अपने ही समुदाय से किसी १द्रवीं कक्षा पास महिला शिक्षिका का (मानदेय रु. 1000/-) चयन कर वैकल्पिक विद्यालय की स्थापना की जा सकती है।

मुक्त विद्यालयों द्वारा अधिगम (प्रति वर्ष) 5000/-

उच्च प्राथमिक स्तर की वह बालिकाएं जो किसी कारणवश नियमित रूप से स्कूल नहीं जा पाती है को मुक्त विद्यालय से जोड़ने का भी छच्म्ळम्स् में प्रावधान है। बालिकाओं के ऐसे प्रत्येक समूह को फीस के भुगतान और राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय या राज्यीय मुक्त विद्यालय की सहायता से अनुपूरक शिक्षण के प्रावधान के लिए प्रतिवर्ष 5000/- रु. की अधिकतम राशि प्रदान की जा सकती है। इसके लिए अल्पकालिक आवासीय पाठ्यक्रमों का भी आयोजन किराया जा सकता है।

जेंडर संवेदनशीलता पर प्रशिक्षण - (20 शिक्षकों हेतु रु. 4000/-)

प्रत्येक संकुल केन्द्र में कक्षा 8 तक के सभी शिक्षकों/शिक्षिकाओं / पंचायत शिक्षक/शिक्षिकाओं को जेण्डर संवेदनशीलता पर प्रशिक्षण दिया जाना है ताकि वे बालिकाओं को विद्यालय तक लाने तथा उनका ठहराव बनाए रखने में मददगार साबित हों। इस क्रम में पहले वर्ष संकुल के 20 शिक्षकों/शिक्षिकाओं को

जेंडर संवेदनशीलता पर प्रशिक्षित किया जाएगा तथा अगले वर्ष बचे हुए 20 शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाएगा।

बाल देख-रेख केन्द्र खोलना - रु. 6000/-

जहाँ आंगनवाड़ी केन्द्र न हो वहाँ बालिकाओं के साथ आने वाले उनके छोटे भाई-बहनों को पूर्व प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था देने के लिए संकुल के किसी 2 विद्यालय में बाल देख-रेख केन्द्र की स्थापना की जानी है।

3-5 आयु वर्ग के कम से कम 25 शिशुओं के लिए यह बाल देख-रेख केन्द्र स्थापित किया जाएगा जिसका संचालन एवं अवकाश का समय विद्यालय के अनुरूप होगा।

इन केन्द्रों हेतु दीदी (शिक्षिका) का चयन एवं उनके मानदेय रु. 500/- प्रतिमाह की व्यवस्था वर्ष में दस माह तक के लिये किया जाना है।

इन केन्द्रों को रु. 500/- का स्वास्थ्य किट एवं रु. 500/- का खेल किट के अलावा स्थापना मद में रु. 200/- की राशि दी जाएगी।

अतिरिक्त प्रोत्साहन

बालिकाओं को मुफ्त पुस्तकें उपलब्ध कराते हेतु सर्वशिक्षा अभियान के द्वारा प्रति बालिका 150/- रु. की राशि प्रतिवर्ष दी जाती है। पुस्तकें उपलब्ध कराने के उपरांत इस 150/- रु. से बची हुई राशि का उपयोग विद्यालय शिक्षा समिति चाहे तो बालिकाओं के लिये शिक्षा सुलभ कराने हेतु किसी सामग्री के क्रय में या बालिकाओं के लिये व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कोई व्यवस्था करने में कर सकती हैं।

सामुदायिक मोबलाइजेशन

प्रत्येक संकुल में प्रशिक्षण, बालिका नामांकन, उपस्थिति, उपलब्धि आदि के अनुश्रवण में समुदाय की सहभागिता द्वारा सामुदायिक मोबलाइजेशन हेतु पहले वर्ष के लिए 3500/- (रुपये पैंतीस हजार), दूसरे एवं तीसरे वर्ष के लिए 20000/- (रुपये बीस हजार) एवं चौथे एवं पांचवें वर्ष के लिए 10000/- (रुपये दस हजार) की राशि का प्रावधान है। उक्त प्रावधान में प्रबंधन एवं सूचना तंत्र एवं दस्तावेजीकरण

का व्यय, जिला साधन समूह का मानदेय तथा यात्रा भत्ता, संयोजिकाओं का यात्रा भत्ता आदि व्यय सम्मिलित है।

संरचना

संकुल स्तर पर

संयोजिका

हर संकुल में एक संयोजिका होगी जिसका कार्य संकुल की अनामांकित बालिकाओं को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ना होगा साथ ही वह आदर्श संकुल विद्यालय के लिए निर्धारित सारी गतिविधियों का संचालन सुनिश्चित करेंगी। संयोजिका संकुल के सभी बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से जोड़ने में सहयोग करेगी।

संकुल कोर ग्रुप

आदर्श संकुल विद्यालय स्तर पर एक कोर ग्रुप का गठन किया जाना है जिसके सदस्य इस प्रकार होंगे -

आदर्श संकुल विद्यालय के प्रधानाध्यापक

संकुल संसाधन केन्द्र समन्वयक

आदर्श संकुल विद्यालय की एक शिक्षिका

आदर्श संकुल विद्यालय के विद्यालय शिक्षा समिति द्वारा मनोनीत दो सदस्य

संबंधित पंचायत की एक महिला प्रतिनिधि।

प्रखंड स्तर पर

प्रखंड जेन्डर कोऑर्डिनेटर

प्रखण्ड स्तर पर एक महिला शिक्षिका को प्रखण्ड जेंडर कोआर्डिनेटर के रूप में प्रतिनियुक्त (पार्ट टाईम) किया जाएगा।

प्रखंड कोर ग्रुप

प्रखण्ड स्तर पर एक कोर ग्रुप का गठन किया जाना है जिसके सदस्य इस

प्रकार होंगे -

प्रखण्ड स्तरीय जेण्डर कोआर्डिनेटर

पंचायत समिति की दो महिला सदस्य

प्रखण्ड संसाधन केन्द्र की एक साधनसेवी (BRCC द्वारा मनोनित)

स्वंयसेवी संस्था/ महिला सामाख्या / अन्य की एक महिला प्रतिनिधि (प्रखण्ड विकास पदाधिकारी द्वारा मनोनीत)

जिला स्तर पर

जिला जेन्डर कोऑर्डिनेटर

जिला स्तर पर छच्म्ळम्स की क्रियान्वयन की पूर्ण जिम्मेवारी जिला शिक्षा अधीक्षक सह जिला कार्यक्रम समन्वयक की होगी जिसे वह जिला जेंडर कोऑर्डिनेटर के सहयोग से पूरा करेंगे।

जिला साधन समूह

जिला जेंडर कोऑर्डिनेटर को सहयोग करने के लिए प्रत्येक जिले में छच्म्ळम्स से आच्छादित प्रखण्ड के हिसाब से जिला साधन समूह को रखा जाएगा।

शिक्षा के बगैर महिलाओं का सशक्तीकरण नहीं। शिक्षा सिर्फ साक्षरता नहीं है। उनकी जानकारी और जागरूकता के स्तर में वृद्धि कर सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी व हस्तक्षेप बढ़ाया जाये। परिवेश और जीवन से जुड़े मुद्दों पर समझ विकसित होने के साथ ही उनकी विश्लेषणात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए। अपने रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी जल, जंगल, जमीन, पंचायत कानून व आर्थिक पक्षों से जानकारियाँ और जागरूकता के साथ ही वह निर्णायक भूमिका में आये, ताकि एक समानतापूर्ण व स्वस्थ्य समाज के निर्माण की कल्पना साकार रूप ले सकें। स्कूली शिक्षा के साथ व्यावहारिक शिक्षा की बात करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जानकारियों के अभाव में उनकी भागीदारी गौण हो ज़ाती है। उनको निर्णयों में भागीदारी का अवसर नहीं मिल पाता है। भले ही वे घरेलू आर्थिक निर्णय हो। इसी से पंचायतों में भी वे सशक्त भूमिकाओं में नहीं आ पा रही हैं। यह भी सच्चाई है कि घर, परिवार व बच्चों के बाद उनके पास स्वयं के लिये समय नहीं बचता है। अतः उन्हें शिक्षा प्रदान करना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है।

किशोर युवतियों को अगर विकास कार्यक्रमों से बाहर रखा गया तो बच्चों के संपूर्ण विकास की अवधारणा अधूरी ही रहेगी। किशोरावस्था बचपन और मातृत्व के बीच का महत्वपूर्ण चरण है। यह मध्यवर्ती अवस्था मानसिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक कल्याण के लिए बहुत महत्वपूर्ण और घटनाप्रधान है। विभिन्न सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि किशोर लड़कियों का स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा और सामाजिक रुतबा वांछनीय स्तर से नीचे है तथा किशोरावस्था वाली लड़कियों को स्वास्थ्य और पोषण सूचनाओं या सेवाओं तक पर्याप्त पहुंच नहीं है।

समग्र बाल विकास सेवाओं का उद्देश्य (आईसीडीएस) प्रारंभिक बाल विकास के लिए अवसरों के साथ सामाजिक-आर्थिक और लैंगिक भेदभाव को कम करना है। महिलाओं और किशोर बालिकाओं की चिंताओं से बेहतर ढंग से निपटने के लिए, किशोर वय की लड़कियों के वास्ते कार्यक्रम बनाने के लिए यह जरूरी था जिसमें उनके आत्मविकास, पोषण और गणितीय कौशल और व्यावसायिक कुशलताओं आदि की जरूरत को पूरा करती है।

किशोर वय की बालाओं के लिए आईसीडीएस के बुनियादी ढांचे का इस्तेमाल कर विशेष हस्तक्षेप किशोरी शक्ति योजना (केएसवाई) और किशोरियों के लिए पोषण कार्यक्रम कार्यांवित किए जा रहे हैं। ये हस्तक्षेप आत्मविकास, पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, साक्षरता और पुनर्सृजनात्मक कौशल निर्माण की उनकी जरूरत को पूरा करने के लिए 11 से 18 साल की उम्र में स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

किशोरी शक्ति योजना किशोर वय की बालाओं को समर्थ बनाने के लिए है ताकि उनको अपने जीवन को बदलने में समर्थ बनाया जा सके। इसे किशोर अवस्था की लड़कियों के विकास के लिए संपूर्णतावादी पहल के रूप में देखा गया है। इसके हस्तक्षेप के माध्यम से चलाए जा रहे कार्यक्रमों का उद्देश्य किशोर अवस्था की लड़कियों के जीवन में बदलाव लाना है। यह उनको ऐसा अवसर उपलब्ध कराने के लिए है जहां वे अपनी क्षमता को पूरी तरह पहचान सके।

मौजूदा किशोरी स्कीम (एजी) को फिर से डिजाइन करके यह योजना तैयार की गई है जो केंद्र पोषित समग्र बाल विकास सेवाएं (आईसीडीएस) स्कीम के घटक के रूप में कार्यांवित की जा रही है। नई स्कीम ने विषय वस्तु के महत्वपूर्ण रूप से समृद्ध होने के साथ पहले चलाई जा रही स्कीम के दायरे में नाटकीय विस्तार किया है। इसने प्रशिक्षण घटक को मजबूत बनाने, खासतौर से कौशल विकास, सशक्तिकरण और आत्म बोध बढ़ाने के पहलू का भी दायरा बढ़ाया है। यह किशोर

बालिकाओं और महिलाओं की परस्पर संबद्ध जरूरतों को पूरा करने के साथ अन्य खंड स्तर के कार्यक्रमों के अभिसरण को बढ़ावा देती है।

राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के व्यापक उद्देश्यों में इसीलिए बालिकाओं के यसथस-साथ किशोर वय बालिकाओं की पोषण, स्वास्थ्य एवं विकास की दशा को सुधारना और शिक्षा, सफाई, पोषण और परिवार की देखरेख के प्रति जागरूकता को बढ़ावा देना है। जीवन के कौशल सीखने के अवसरों से जोड़ने, फिर से स्कूल जाना शुरू करने, अपने सामाजिक माहौल को बेहतर ढंग से समझने में मदद करने और समाज का उत्पादक सदस्य बनने में किशोरियों की मदद करना भी स्कीम के उद्देश्य हैं।

इन्हीं उद्देश्यों के तहत 2003-04 में सिमडेगा जिले के चार प्रखंडों - कोलेबिरा, बोलबा, जलडेगा और बानों को चयनित कर बालिका शिक्षा में हस्तक्षेप किया गया। ये सभी प्रखंड अत्यंत पिछड़े प्रखंडों में गिने जाते हैं और यहां बालिका शिक्षा सबसे कमजोर अवस्था में थी। शैक्षणिक क्षेत्र में पिछड़े रहने के कारण इन चारों प्रखंडों को चुना गया था और इनमें कुल 25 आदर्श संकुल विद्यालयों की स्थापना की गई।

निष्कर्ष

झारखंड राज्य के दक्षिणी छोर पर घने जंगलों और पहाड़ियों से घिरा सिमडेगा अपने अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य और यहां के मुख्य आदिवासी समुदाय खड़िया, जो कि एक शांतिप्रिय खेतीहर समुदाय है के नैसर्गिक बसाहट के कारण विशिष्ट पहचान रखता है। शंख नदी के किनारे बसा यह जिला राज्य बनने के बाद 30 अप्रैल 2001 को गठित हुआ है। पहले यह गुमला जिले का हिस्सा था। इस नये जिले का गठन कुल 7 प्रखंडों को लेकर किया था था, परंतु बाद में 3 और नये प्रखंड सृजित होने से अब इसके कुल प्रखंडों की संख्या 10 हो गई है। ये प्रखंड हैं - सिमडेगा, कुरडेग, बोलबा, ठेठई टांगर, कोईलबेड़ा, बानो, जलडेगा, पाकरटांड़, बांसजोर एवं केरसई।

2011 की जनगणना के अनुसार सिमडेगा जिले की कुल जनसंख्या 599,813 है जो राज्य की कुल आबादी में 1.82 प्रतिशत का योगदान करता है। इसके अनुसार सिमडेगा जिला में पुरुषों की जनसंख्या 299,905 है जबकि महिलाओं की कुल आबादी 299,908 है। 2001 की जनसंख्या (514,320) के मुकाबले 2011 में यहां की जनसंख्या में 16.62 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। वर्तमान में यहां जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किमी 160 है जो कि 2001 में 137 थी। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले में महिला और पुरुषों का अनुपात बराबर है। 2001 में यह अनुपात प्रति हजार पुरुष पर 1001 महिला का था। 0-6 आयु वर्ग में प्रति 1000 लड़कों पर 975 लड़कियां हैं, जो पुरुषों के मुकाबले घटते अनुपात को दर्शाता है। वैसे जिले में 0-6 आयु के बच्चों की कुल जनसंख्या 91,297 है जो कुल जनसंख्या का 15.22 प्रतिशत होता है। इसमें लड़कों की 46230 और लड़कियों की कुल जनसंख्या 45067 है। 1

यहाँ 72.45 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जनजातियों अर्थात् आदिवासियों की है जो झारखंड में किसी भी जिले से ज्यादा है। जिले में दलित आबादी 7.99 प्रतिशत है। 0-6 आयु को छोड़कर जिले में साक्षरता दर 67.59 प्रतिशत (343737) है। इसमें पुरुष साक्षरता दर 75.84 प्रतिशत (192394) और महिला साक्षरता दर 59.38 प्रतिशत (151333) है। साक्षरता के तमाम प्रयासों के बाद भी अभी तक जिले में 343,706 लोग निरक्षर हैं।

खड़िया आदिवासी समुदाय के साथ-साथ उरांव व मुंडा आदिवासियों के अतिरिक्त कुछ दूसरी सदान जातियाँ तुरी, चीक बड़ाईक, लोहरा, कुम्हार, घाँसी,

गोंड, भोगता आदि भी यहां बसी हुई हैं। जिले में निवास करने वाले सभी समुदायों का सामाजिक-आर्थिक जीवन पूरी तरह से कृषि एवं जंगल पर आधारित है। सिमडेगा की संस्कृति झारखंड राज्य के अन्य इलाके की तरह ही आदिवासी-सदान संस्कृति है। खड़िया, उरांव, मुंडा जहां परंपरागत आदिवासी संस्कृति के साथ-साथ ईसाई धर्मावलंबी हैं, वहीं सदान जातियां हिंदू संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। बहुत कम संख्या में वर्तमान में मुस्लिम समुदाय हैं जो इस्लाम संस्कृति एवं धर्म को मानते हैं। भाषा की दृष्टि से यहां खड़िया लोग खड़िया, मुंडा लोग मुंडारी और उरांव लोग कुड़ुख बोलते हैं। सदान वर्ग के सदस्यों के बीच नागपुरी या सादरी का प्रचलन है।

सिमडेगा इलाके में सन 1902 ई. के आस-पास मिशनरी लुकीश ने शंख नदी के किनारे कोरोंजो गांव में लुथेरान मिशन स्टेशन खड़ा किया। इसी के साथ यहां एक माध्यमिक विद्यालय की भी स्थापना मिशनरियों ने की। आगे चलकर कोंडरा, टकरमा, किंकेल और खूंटीटोली में चर्च के साथ स्कूलों की स्थापना हुई। 1909 में रेंगारी में भी मिशनरियों ने विद्यालय खोला।

शैक्षणिक विकास के संदर्भ में सिमडेगा-गुमला-खूंटी क्षेत्र में खड़िया समुदाय के प्यारा केरकेट्टा का योगदान उल्लेखनीय है। 1929 ई. में उन्होंने एक अध्यापक के रूप में अपनी शैक्षिक यात्रा शुरू की जो गांधी, ठक्कर बापा और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सम्पर्क में आने के बाद निरंतर परवान चढ़ती चली गइ। 1947 ई. में उन्होंने मिशन स्कूल की सेवा छोड़ दी और आदिम जाति सेवक संघ के सदस्य बन कर सिमडेगा आ गए। इसके बाद तो उन्होंने सिमडेगा में प्राइमरी स्कूलों का जाल-सा बिछा दिया। आदिम जाति सेवा मंडल के अंतर्गत सिमडेगा-गुमला इलाके में उन्होंने इतने स्कूल खोले, जितने शायद सरकारी प्रयास से अभी भी नहीं खुले हैं।

वर्तमान में सिमडेगा में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 540 एवं वित्त रहित पोषित विद्यालयों की संख्या 159 है। जबकि सरकारी माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 313 और वित्त रहित अल्पसंख्यक माध्यमिक स्कूलों की संख्या 51 है। 2011 की जनगणना के अनुसार सिमडेगा जिला में महिला साक्षरता दर 59. 38 प्रतिशत है। 6 वर्ष तक के आयु के बच्चों की कुल संख्या 91297 है जो कि जिले की कुल आबादी का 15.22 प्रतिशत होता है। इसमें बालिकाओं की संख्या 45067 है।

सिमडेगा जिला में अभी तक सिर्फ एक ही राजकीयकृत बालिका उच्च

विद्यालय है। इसके अलावा सिमडेगा, ठेठईटांगर, कुरडेग, बोलबा, कोलेबिरा, बानो और जलडेगा प्रखंडों में एक-एक सरकारी प्राथमिक या मध्य विद्यालय हैं। जबकि संपूर्ण जिले में सभी स्तरों पर संचालित अल्पसंख्यक बालिका विद्यालयों की कुल संख्या 12 है।

जिले में बालिका शिक्षा की स्थिति कितनी खराब है, यह इसी बात से पता चलता है कि प्राथमिक से ले कर उच्च शिक्षा तक में वर्ष 2008-09 तक मात्र 49.32 बालिकाएं ही अध्ययनरत थीं। इस चिंताजनक हालात से निपटने के लिए सन् 2003 में संपूर्ण झारखंड में राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत हुई और सिमडेगा जिले में बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए हस्तक्षेप किया गया।

संदर्भ एवं स्रोत :

1. सिमडेगा जिले की सरकारी वेबसाइट http://simdega.nic.in से
2. 2011 की जनसंख्या का प्रोविजनल आंकड़ा, जनसंख्या निदेशालय, झारखंड
3. वंदना टेटे का साक्षात्कार
4. डॉ. विसेश्वर प्रसाद केशरी, छोटानागपुर का इतिहासः कुछ सूत्र कुछ संदर्भ, पृष्ठ-1
5. मजुमदार, डी. एन., रेसेज एंड कल्चर्स ऑफ इंडिया (एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1963), पृष्ठ 158
6. डाल्टन, ई. टी., डिस्क्रीपटिव इथनोलौजी ऑफ बंगाल, पृष्ठ 163
7. द खड़ियाज-एस. सी. राय, भाग-1, पृष्ठ-1, कथोलिक प्रेस, राँची-1937
8. केरकेट्टा रोज, खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 129
9. केशरी, विसेश्वर प्रसाद, छोटानागपुर का इतिहासः कुछ सूत्र, कुछ संदर्भ, पृष्ठ 117
10. हेमंत, झारखंड, पृष्ठ 238
11. सिमडेगा डॉट निक डॉट इन
12. झारखंड शिक्षा परियोजना से प्राप्त
13. 2011 की जनसंख्या का प्रोविजनल आंकड़ा, जनसंख्या निदेशालय, झारखंड
14. जिला शिक्षा अधीक्षक कार्यालय, सिमडेगा से प्राप्त
15. झारखंड शिक्षा परियोजना से प्राप्त
16. 'जोहार सहिया' मासिक पत्रिका में प्रकाशित वंदना टेटे के आलेख से

सप्तम अध्याय

मातृभाषा और सर्वशिक्षा अभियान

सप्तम अध्याय

मातृभाषा और सर्वशिक्षा अभियान

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति और मातृभाषाएं

आजादी के बाद मातृभाषा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के उत्थान का जो सपना देखा गया था अब वह सपना दस्तावेजों, कार्यक्रमों तथा संस्थाओं में दबकर रह गया है। देश में लाखों ऐसे स्कूल हैं जहां केवल एक मानदेय प्राप्त अध्यापक कक्षा एक से पांच तक के सारे विषय पढ़ाता है। क्या ये बच्चे कभी उनके साथ प्रतिस्पर्धा में बराबरी से खड़े हो पाएंगे जो देश के प्रतिष्ठित स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई कर रहे हैं? आज उपलब्धियों के बड़े आंकड़े सामने आते हैं कि 21 करोड़ बच्चे स्कूल जा रहे हैं, 15 करोड़ मध्याह्न भोजन व्यवस्था से लाभान्वित हो रहे हैं, स्कूलों की उपलब्धता लगभग 98 प्रतिशत के लिए एक किलोमीटर के दायरे में उपलब्ध है आदि। यही नहीं, अधिकांश राज्य सरकारें अंग्रेजी पढ़ाने की व्यवस्था कक्षा एक या दो से कर चुकी हैं और इसे बड़ी उपलब्धि के रूप में गिनाती भी है। आज अगर भारत के युवाओं से पूछें तो वे भी यही कहेंगे- अगर उनकी अंग्रेजी अच्छी होती या फिर वे किसी कान्वेंट या पब्लिक स्कूल में पढ़े होते तो जीवन सफल हो जाता। आजादी के बाद के पहले दो दशकों में पूरी आशा थी कि अंग्रेजी का वर्चस्व कम होगा। हिंदी के विरोध के कारण सरकारें सशंकित हुई जिसका खामियाजा दूसरी भारतीय भाषाओं को भुगतना पड़ रहा है। तीन-चार दशक तो इसी में बीते कि अंग्रेजी में प्रति वर्ष करोड़ों बच्चे हाईस्कूल परीक्षा में फेल होते रहे।

भारत के साथ ही बीसवीं शताब्दी के उत्तारार्ध में अनेक देश स्वतंत्र हुए थे तथा इनमें से अनेक ने अभूतपूर्व प्रगति की है। उसके पहले के सोवियत संघ, चीन और जापान के उदाहरण हैं। जिस भी देश ने अपनी भाषा को महत्व दिया वह अंग्रेजी के कारण पीछे नहीं रहा। रूस ने जब अपना पहला अंतरिक्ष यान स्पुतनिक अंतरिक्ष में भेजा था तब अमेरिका में तहलका मच गया था। उस समय रूस में विज्ञान और तकनीक के जर्नल केवल रूसी भाषा में प्रकाशित होते थे। पश्चिमी देशों को स्वयं उनके अनुवाद तथा प्रकाशन का उत्तरदायित्व लेना पड़ा। चीन की वैज्ञानिक प्रगति अंग्रेजी भाषा पर निर्भर नहीं रही।

हमारे देश में मातृभाषाओं में शिक्षा के सवाल पर शुरू से ही सर्वसम्मति रही है। गणतंत्र भारत की शिक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाने की चुनौतियों के संदर्भ में अब तक गठित सभी शिक्षा आयोगों ने एक स्वर से मातृभाषा में अध्ययन-अध्यापन के महत्व को स्वीकार करते हुए इसके पक्ष में अपनी अनुशंसाएं दी हैं। परंतु आज तक उन अनुशंसाओं को लागू नहीं किया गया।

1. स्वतंत्र भारत की शिक्षा संबंधी समस्याओं के निराकरण के लिए सबसे पहले 4 नवंबर, 1948 को राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' का गठन किया गया था। इसके बाद 23 सितंबर 1952 में 'मुदालियर शिक्षा आयोग' का गठन किया हुआ। मुदालियर आयोग का काम था गणतंत्र भारत की तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करना और उस पर राय देना। जिससे कि राष्ट्र की एक ठोस एवं प्रभावी शिक्षा नीति बनाई जा सके। मुदालियर आयोग ने कई महत्वपूर्ण सुझावों के साथ यह प्रस्तावित किया था कि माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिए। मातृभाषा के संबंध में आयोग का दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव था कि हायर सेकेंडरी स्तर पर कम से कम दो भाषाओं की शिक्षा दी जाए। इनमें से एक मातृभाषा और दूसरी अनिवार्यतः क्षेत्रीय भाषा हो।

2. 14 जुलाई 1964 को डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में 'शिक्षा आयोग' की नियुक्ति की गई। इसे शिक्षा के क्षेत्र में 'कोठारी कमीशन' के नाम से जाना जाता है। कोठारी कमीशन ने भी अपनी सिफारिशों में प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक मातृभाषाओं में अध्ययन का सुझाव दिया। कोठारी कमीशन ने स्पष्ट कहा कि विद्यालय, कॉलेज और उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। इसी के साथ आयोग ने विद्यालयों में हिंदी के अलावे अन्य भारतीय भाषाओं की पढ़ाई पर भी जोर दिया। पूर्ववर्ती मुदालियर आयोग द्वारा सुझाए गए त्रिभाषी फार्मुले में भी संशोधन का सुझाव दिया। इसके अनुसार **1. मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, 2. राजभाषा या संघीय भाषा और 3. कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा अथवा यूरोपीय भाषा** को शिक्षण के सभी स्तरों पर पढ़ाई होनी चाहिए।

कोठारी कमीशन के सुझावों पर अमल करते हुए 24 जुलाई 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। इसके सामान्य सिद्धांतों में शैक्षिक और सांस्कृतिक विकास के लिए क्षेत्रीय भाषाओं को उच्च स्तर तक की शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया। नीति में इसी के साथ संशोधित त्रिभाषी फार्मुले को भी अंगीकार किया गया।

इसके 18 साल बाद मई 1986 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी के शासन काल में नई शिक्षा नीति लागू की गई। सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा-नीति (एनपीई) के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक कार्यवाही कार्यक्रम (पीओए) भी बना, जिसे सन् 1992 में अद्यतन किया गया। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बुनियादी (प्राथमिक) शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार की जानकारी देने और अंतर अनुशासनिक अनुसंधान करने, राज्यों में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करने, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषदको सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल हैं। इसके अलावा शिक्षा में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु एक विकेंद्रीकृत प्रबंधन ढांचे का भी सुझाव दिया गया है। इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में लगी एजेंसियों के लिए विभिन्न नीतिगत मानकों को तैयार करने हेतु एक विस्तृत रणनीति का भी पीओए में प्रावधान किया गया है।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा के सभी स्तरों पर मातृभाषाओं को माध्यम बनाने का संकल्प दोहराते हुए उसे और भी सख्ती से लागू करने की बात कही गई। साथ ही विशेष रूप से आदिवासी भाषाओं के विकास पर भी फोकस रखा गया।

स्पष्ट है कि अब तक गठित लगभग सभी आयोगों, समितियों और परिषदों ने त्रिभाषा-सूत्र का समर्थन किया है और क्षेत्रीय अथवा मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम घोषित किया है। परंतु 1854, 1881, 1902, 1915, 1917, 1919, 1927, 1948-49, 1956, 1964, 1986 और 1992 तक लगातार दोहराने बावजूद मातृभाषाओं में शिक्षा का सपना जमीन पर साकार नहीं हो सका है। आज भी

शिक्षा आयोग, शिक्षाधिकारी निष्काम भाव से यही माला फेर रहे हैं।

अब एक बार पुनः चौबीस साल बाद सरकार को फिर नई शिक्षा नीति की जरूरत महसूस हुई है। वजह यह है कि राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल 1986 में बनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति मौजूदा वैश्विक चुनौतियों व इस समय रोजगार की जरूरतों पर खरी नहीं उतर रही है। लिहाजा सरकार नई शिक्षा नीति बनाने के मामले में अब और देरी नहीं चाहती। मानव संसाधन विकास मंत्रलय ने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अब अपने जरूरी एजेंडे में शामिल कर लिया है। बताते हैं कि खुद सरकार का भी मानना है कि 1986 में बनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति मौजूदा शैक्षिक परिदृश्य व रोजगार की जरूरतों के लिहाज से लगभग अप्रासंगिक हो गई है। क्योंकि बीते लगभग दो दशक में वैश्विक स्तर पर शिक्षा की दुनिया बहुत शिक्षा नीति में 1992 में मामूली बदलाव किया गया था, फिर भी उससे आज की चुनौतियों से नहीं निपटा जा सकता। ऐसे में हमें एक ऐसी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की दरकार है, जो न सिर्फ हमारी जरूरतों को पूरा कर सके, बल्कि वैश्विक शैक्षिक चुनौतियों से भी निपटने में सक्षम हो। यूजीसी ने मार्च में केंद्रीय व राज्यस्तरीय विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को सम्मेलन कराया था। उस सम्मेलन में कुलपतियों ने भी यथाशीघ्र नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने का सुझाव दिया था। सरकार अब इस पर गंभीर है और इसे अपने एजेंडे में शामिल कर लिया है।

भारत की आधुनिक शिक्षा पद्धति निःसंदेह अंग्रेजी राज की देन है। अंग्रेजी राज की शिक्षा का उद्देश्य भारत की सभ्यता को अंग्रेजी सभ्यता में ढालना था। भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के प्रति आत्महीन भाव पैदा करना था। अंग्रेजी राज को जायज ठहराने वाले विद्वान पुरुष पैदा करना था। लार्ड मैकाले ने इसी बड़े लक्ष्य को लेकर भारतीय शिक्षा प्रणाली का ताना-बाना बुना था। अंग्रेजी सत्ताधीशों की भाषा थी, अफसरों और न्यायालयों की भाषा थी। सो अंग्रेजी सम्मान और हनक-ठसक की भाषा भी थी। गांधी जी ने 'हिन्द स्वराज' (पृष्ठ 91) में लिखा, 'यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इन्साफ पाना हो, तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना चाहिए। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा में बोल ही नहीं सकता। यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? इसमे मैं अंग्रेजों का दोष निकालूं या अपना? हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं।' अफसोस की बात है कि नीतिगत रूप से मातृभाषाओं की महत्ता स्वीकार कर लेने के बाद भी आज तक हम अंग्रेजी मानसिकता के कारण लागू नहीं कर पा रहे हैं।

2. साक्षरता एवं सर्वशिक्षा अभियानों में मातृभाषाओं की भूमिका

आज अक्सर यह उदाहरण दिया जाता है कि चीन में हर जगह लोग अंग्रेजी बोलना सीख रहे हैं और इसके लिए विशेष रूप से बजट आवंटित किया गया है, लेकिन यहां पर यह उल्लेख नहीं किया जाता है कि चीन ने समान स्कूल व्यवस्था भी लागू कर ली है। वहां कुछ विशिष्ट स्कूलों में प्रवेश के लिए उठा-पटक नहीं करनी पड़ती। चीन ने यह शैक्षिक अवधारणा भी पूरी तरह मान ली है कि प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए और ऐसा न करना बच्चों के साथ मानसिक क्रूरता है। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते हुए बच्चे अन्य भाषा आनंदपूर्वक सीखें तो यह संर्वथा न्यायसंगत तथा उचित होगा। 65 साल से अधिक के अनुभव के बाद भी हमारी शिक्षा व्यवस्था में अनेक कमियां बनी हुई हैं, जिनका निराकरण केवल दृढ़ इच्छाशक्ति से ही संभव है।

सबसे पहले प्राथमिक शिक्षा की बात करें। शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के तमाम दावे के बाद भी ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल की बाउंड्री तक पहुंचने के बाद ड्राप आउट की दर का हम कम नहीं कर पा रहे हैं। 40 प्रतिशत प्रारंभिक स्कूल की चहारदीवारी से बाहर है. कक्षा पांच तक पहुंचते-पहुंचते यह प्रतिशत 45 और आगे बढ़ने पर यह 60 प्रतिशत तक पहुंच जाती है। प्रांरभिक शिक्षा को लेकर गांव में जो संसाधन, जो जागरूकता और प्रतिबद्धता होनी चाहिए वह अभी तक उपलब्ध नहीं है। राजनीतिक इच्छाशक्ति का भी अभाव है।

80 के दशक में जब केरल ने साक्षरता के लक्ष्य को शत-प्रतिशत हासिल कर लिया, तो उसे मॉडल मानते हुए संपूर्ण देश में साक्षरता अभियान की शुरुआत की गई। इस अभियान को क्रियान्वित करने के लिए भारी-भरकम बजट के साथ एक राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का भी गठन किया गया। परंतु केरल की सफलता को देश के दूसरे हिस्सों में नहीं दोहराया जा सका। इसका एक प्रमुख कारण मातृभाषाओं में अभियान को नहीं संचालित किया जाना था। जबकि केरल के साक्षरता अभियान की सफलता उसके मातृभाषा में निहीत थी। हालांकि नीतिगत रूप से राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने मातृभाषा में अभियान की परिकल्पना को स्वीकार किया था, परंतु व्यावहारिक स्तर पर दृढ़ता से उसका प्रयोग नहीं हुआ और अभियान महज कागजी बन कर रह गया।

पिछले 65 वर्षों में भाषा से संबंधित डेढ़ सौ से ज्यादा अध्ययन हुए हैं, सभी का निष्कर्ष यही आया है कि शिक्षा मातृभाषा में हो। भाषा संस्कृति की वाहक होती है। इसे सही ढंग से अपनाकर व्यवहार में लाकर वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टिकोण से जीवन में समाहित करने की जरूरत है। विश्वभर के शिखर शिक्षाविदों में इस मसले पर आम सहमति है कि बच्चे के बौद्धिक विकास का सबसे प्रभावी माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है। यूनेस्को सरीखे वैश्विक संगठनों के नीतिगत दस्तावेज ही नहीं, हमारी अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी मातृभाषा की अहमियत को स्वीकार करती है। यह तथ्य स्थापित है कि सीखने की प्रवृति मातृभाषा में सर्वाधिक होती है। मातृभाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा चाहे बच्चा हो या प्रौढ़ समाज एवं संस्कृति में अपना स्थान ढूंढने में सक्षम होता है। साथ ही उसकी 'समझ' और 'व्यवहार' अथवा 'आचरण' का आधार भी भाषा ही होती है। केरल के साक्षरता अभियान और मातृभाषा आधारित विभिन्न शैक्षिक नवाचारों ने साक्षरता और सीखने की प्रक्रिया के लिए मातृभाषा में शिक्षा को केन्द्र में ले आया। और यह ऐसे तमाम शैक्षिक अभियानों का एक प्रमुख केन्द्रीय तत्व भी बना। पर जहां तक इस तत्व को प्रयोग में लाने की बात है, तो बहुत आशाजनक परिदृश्य हमारे सामने नहीं है।

शिक्षा के संदर्भ मे देखा जाए तो मातृभाषा सामान्यतः शिक्षा का आधार बनती है। अतः साक्षरता न केवल किसी भाषा पर आधारित होती है वरन उस भाषा पर आधारित होती है जिसमें व्यक्ति सहज और स्वाभाविक रूप से बोलने की योग्यता रखता है। भाषा, व्यक्ति और समाज तीनों आपस में इस तरह से संबद्ध हैं कि इन्हें अलग-अलग कर के नहीं देखा जा सकता। किसी भी बच्चे अथवा प्रौढ़ की सीखने की क्षमता उसकी अपनी मातृभाषा में सबसे तेज होती है। साक्षरता अभियानों के दौरान हमने मातृभाषा की शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

'छह साल का बच्चा - उसकी रहनसहन की स्थितियां चाहे जो हों - दुनिया के बारे में जिज्ञासु होता है, और उसे अपने ढंग से चलाना, और समझना चाहता है। यह सब करने का एक प्रमुख साधन है भाषा, और पहली कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा इस साधन की अद्‌भुत क्षमताओं से पहले ही परिचित हो चुका होता है। ... वह भाषा का इस्तेमाल पहले ही शुरू कर चुका होता है। चलने फिरने, छूने, देखने, सुनने और सूंघने के साथ-साथ छह साल का बच्चा भाषा की रोमांचक संभावनाओं से परिचित होता है। वह सामाजिक स्तर पर जान चुका होता है कि स्कूल ही वह जगह है जहां उसे पढ़ने और लिखने के दो नये सशक्त कौशल तथा और भी बहुत

कुछ सीखने को मिलेगा। ... पर उसे जल्दी ही यह पता चल जाता है कि स्कूल वह जगह नहीं है जहां वह संसार को 'समझ' सकता है।'[1]

'लिविंग टंग्ज इंस्टिट्यूट फार एन्डेन्जर्ड लैन्गवेजैज' इन सैलम, ओरेगान के भाषा वैज्ञानिक डेविड हैरिसन तथा ग्रेग एन्डरसन कहते हैं कि जब लोग अपने समाज की भाषा में बात करना बन्द कर देते हैं, तब हमें मस्तिष्क के विभिन्न विधियों में कार्य कर सकने की अद्वितीय अंतर्दृष्टियों को भी खोना पड़ता है। आगे एन्डरसन कहते हैं कि लोगों को अपनी भाषा में बात करते हुए उन्हें वास्तव में अपने इतिहास से पुनः सम्पर्क करते देखने में जो संतोष होता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह निश्चित ही हमारे मस्तिष्क की कार्य विधि तथा मातृभाषा के बीच गहरे संबन्ध को तथा उसका हमारे जीवन पर पड़ रहे प्रभाव को दर्शाता है।

पिछले कुछ वर्षों हुए अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि जब हम अपनी मातृभाषा सीखते हैं तब एक सोचने की विधि भी सीखते हैं जो हमारे अनुभवों को ढालती है।

मैन्चौस्टर विश्व विद्यालय के भाषा, भाषा विज्ञान तथा संस्कृति स्कूल के अवैतनिक अनुसंधान फ़ैलो गाई डायश्चौर ने एक पुस्तक लिखी है - 'भाषा- चश्में से देखते हुए : अन्य भाषाओं में विश्व अलग क्यों दिखता है?' वे प्रश्न करते हैं, क्या भाषा, सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि, एक सांस्कृतिक निर्मिति है? या कि यह मुख्यतः मानव के जैव विज्ञान द्वारा निर्धारित की जाती है? गाई डायश्चौर ने अपनी पहली पुस्तक 'द अनफ़ोल्डिंग आफ़ लैन्वैजेज' में दावा किया था कि भाषा एक सांस्कृतिक निर्मिति है। अपनी नई पुस्तक में वे जैव विज्ञान पर अधारित भाषा के सिद्धांतों पर और भी अविश्वास पैदा करते हैं। हम सांस्कृतिक प्रभाव के कारण बहुत से व्यवहार सीख जाते हैं जो हमें स्वाभाविक लगते हैं। और यह सब भाषा में दिखता है, उसके द्वारा आता है। भाषा तथा संस्कृति में अटूट तथा गहरा संबन्ध है।

यह सोचना तो गलत ही है कि भिन्न संस्कृतियों के व्यक्ति मूलरूप से एक ही तरह से सोचते हैं। हम दैनंदिन जीवन में सारे निर्णय क्या निगमनात्मक (डिडक्टिव) तर्कों द्वारा लेते हैं? या आंतरिक भावनाओं, अंतर्दृष्टियों, संवेदनाओं, मनोवेगों या व्यावहारिक कौशलों के द्वारा लेते हैं? हमारे मन का व्यवहार, जैसा कि उसे हमारी संस्कृति ने बचपन से ढाला है, हमारी जीवन दृष्टि का, और वस्तुओं तथा परिस्थितियों के प्रति हमारी संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं का निर्माण करता है; उनका हमारे जीवन मूल्यों, विश्वासों तथा आदर्शों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अभी हम ऐसे प्रभावों को सीधी तरह नहीं नाप सकते या उनके द्वारा उत्पन्न सांस्कृतिक

या राजनैतिक भ्रमों का आकलन भी नहीं कर सकते हैं।

इसलिए शिक्षा में केवल पाठ्यपुस्तकें सीखना शामिल नहीं है बल्कि इसमें मूल्यों, कौशलों तथा क्षमताओं में भी वृद्धि की जाती है। इससे व्यक्ति को अपने केरियर और साथ ही प्रगतिशील मूल्यों के साथ एक नए समाज के निर्माण में एक उपयोगी भूमिका निभाने में सहायता मिलती है। समाज को पूर्ण शिक्षित करना इसी वजह से राष्ट्र के समक्ष एक महत्वपूर्ण कार्य बना हुआ है। इस ऐतिहासिक कार्य को पूरा करने के लिए अनेक योजनाओं की शुरुआत की गई। जैसे कि कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना, दोपहर के भोजन की योजना और प्रारंभिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम। इन योजनाओं में से एक सबसे अधिक मूलभूत और आशाजनक योजना है सर्व शिक्षा अभियान। सर्व शिक्षा अभियान का लक्ष्य्य विद्यालयों के प्रबंधन में समुदाय की सक्रिय भागीदारी के साथ सामाजिक, क्षेत्रीय और लिंग संबंधी अंतरालों को पाटना है। आईसीडीएस केन्द्रों या गैर आईसीडीएस क्षेत्रों में विशेष शाला पूर्व केन्द्रों में शाला पूर्व सीखने के प्रयासों को समर्थन देने के सभी संभव प्रयास महिला और बाल विकास मंत्रालय के प्रयासों को पूरकता प्रदान करने हेतु किए जाते हैं। इसके लिए ऐसी कार्यनीतियां बनाई गई है जिनमें ब्लॉक स्तर के संसाधन केन्द्रों की स्थापना हेतु स्थानीय समुदाय समूहों एवं संस्थागत क्षमता निर्माण को सक्रिय रूप से शामिल करना है।

सर्व शिक्षा अभियान की सफलता के लिए तथा इसके उद्देश्यों और लक्ष्य प्राप्ति के लिए मातृभाषाओं को एक प्रमुख तत्व स्वीकार किया गया है।

इसी के साथ उत्तर-पूर्व के राज्यों में प्रारंभिक शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं में दिए जाने का प्रयोग भी हमारे सामने है। इसी अनुभव के आधार पर झारखंड में भी क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है। मुण्डारी, संताली, नगपुरिया तथा हो में पाठ्यक्रम पुस्तकें तैयार करने का काम चल रहा है। शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि क्षेत्रीय भाषाओं में पढ़ाई होने से स्वतः बच्चों में पढ़ाई के प्रति रूचि जागेगी और आदिवासी क्षेत्रों में ड्राप आउट की समस्याओं पर अंकुश लगेगा। झारखंड में देखें तो आदिवासियों और उसमें भी आदिवासी लड़कियों में साक्षरता दर बहुत संतोषजनक नहीं है।

अनुसंधानों से पता चलता है कि पढ़ाई के प्रति बच्चों में अरूचि की एक वजह पाठ्यक्रम का जमीन से, जिन्दगी से जुड़ा नहीं होना तथा कक्षाएं आयोजित करने का ढंग भी बच्चों के स्थानीय अथवा समुदायगत संस्कार और संस्कृति से मेल नहीं खाता है, पठन-पाठन के तरीके को ज्यादा सहभागी तथा छात्रों की सृजनात्मकता

को बढ़ावा देने वाले पाठ्यक्रमों की आवश्यकता लगातार महसूस की जाती रही है, लेकिन मैकाले का भूत उतर ही नहीं पा रहा है। भोपाल की स्वयंसेवी संस्था 'एकलव्य' ने मध्यप्रदेश सरकार के साथ मिलकर शिक्षा के उन्मुखीकरण तथा स्कूलों में विज्ञान पढ़ाई को व्यावहारिक और रूचिकर बनाने की दिशा में काम किया है। इसको मध्यप्रदेश सरकार ने अपने यहां स्कूलों में लागू किया है। परिणाम बेहतर आ रहे हैं। मोटे तौर पर देखें तो प्राथमिक शिक्षा को रूचिकरण, ड्राप आउट की समस्या को दूर करने और सबको शिक्षा प्रदान करने के लिए जिस आमूल-चूल परिवर्तन की जरूरत है, उसमें मातृभाषाओं की भूमिका प्रमुख और निर्णायक भी है।

3. मातृभाषा में पुस्तकों की उपलब्धि

एक लम्बे समय से भारत में शिक्षा व्यवस्था एक ऐसी एकल नीति का अनुकरण कर रही है जो औपनिवेशिक शिक्षानीति के प्रभाव में भारत के भाषाई विविधता की उपेक्षा करती हे। जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से मातृभाषा में शिक्षण पर जोर निरन्तर बढ़ रहा है। जहाँ इस नीति का क्रियान्वयन विद्यालय स्तर पर संभव है, वहीं महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रयुक्त होने वाली निर्धारित पुस्तकों एवं ज्ञानाधारित पाठों की केवल अंग्रेजी भाषा में उपलब्धता भारत में उच्चशिक्षा में शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी भाषा को बना देती है। साहित्यिक, तकनीकी, वैज्ञानिक, व्यावसायिक सभी क्षेत्रों में पाठ्यसामग्री एव अन्य जनोपयोगी अथवा प्रयोजनमूलक साहित्य का अभाव न सिर्फ मातृभाषाओं के विकास में बाधक बना हुआ है बल्कि इस अनुपलब्धता के कारण ज्ञान-विज्ञान की एक पूरी परंपरा से हम परिचित नहीं हैं।

मातृभाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता का सवाल मुख्यतः उन सरकारी नीतियों और भारत सरकार के भेदभावपूर्ण भाषाई व्यवहार से सीधा संबंध रखता है, जिसकी वजह से देश की अधिकांश मातृभाषाएं हाशिए पर हैं और अपने अस्तितव के लिए संघर्ष कर रही हैं। आजादी के बाद जब भाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो उन भाषाओं को तो फूलने-फलने का पूरा अवसर मिला, जो अपने-अपने प्रांत में राजभाषा बन गईं। परंतु देश की अधिकांश जन-भाषाएं जिन्हें न तो संविधान की आठवीं अनुसूची में और न ही गैर-अनुसूचित भाषाओं की सूची में शामिल किया गया। हालांकि सच्चाई यह भी है कि जिन 100 भाषाओं को गैर-अनुसूचि में रखा गया उनके प्रोत्साहन तथा विकास के लिए भी सरकारी स्तर पर कुछ नहीं किया गया। इसके विपरीत सरकारी स्तर पर केन्द्र सरकार ने आठवीं अनुसूची की और राज्य सरकारों ने अपने-अपने राज्य की भाषाओं को भरपूर प्रचारित प्रसारित किया। परिणामस्वरूप देश में जन-भाषाओं के प्रति नकारात्मक भाव का बड़ी तेजी से प्रसार हुआ और समाज का बड़ा हिस्सा अपने भाषाई दायित्व से विमुख होता चला गया। इसलिए भारत की विभिन्न मातृभाषाओं में पुस्तकों का यथेष्ट लेखन-प्रकाशन नहीं हो सका।

अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व और बाजारवाद ने समाज की नई पीढ़ी में जन-भाषाओं के प्रति एक हीन और नकारात्मक छवि गढ़ी है जिससे उनकी

अलोकप्रियता का लगातार विस्तार हुआ है। हालांकि विकसित होती सांस्कृतिक चेतना और अस्मिताओं के आंदोलनों के कारण जन-भाषाओं के प्रति एक सकारात्मक वातावरण का माहौल भी निरंतर उपस्थित रहा है। जन-भाषाओं के आंदोलनात्मक दबावों के कारण सरकार को समय-समय पर आठवीं अनुसूची में और कई भाषाओं को शामिल भी करना पड़ा है। साथ ही उन भाषाओं के लिए भी नीतिगत रूप से कुछ ठोस कदम उठाने पड़े हैं, जो अभी भी आठवीं अनुसूची से बाहर हैं और बड़ी संख्या में बोली जा रही हैं।

यही वजह है कि आठवीं अनुसूची में शामिल बोड़ो और संताली जैसी भाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता के लिए सरकार ने 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' (एनटीएम) के रूप में एक ठोस पहल की है। इस अनुवाद मिशन का उद्देश्य ज्ञान आधारित मूल-पाठों को अनुवाद के माध्यम से भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं में उपलब्ध कराना है। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' के गठन के निम्नांकित प्रमुख उद्देश्य हैं -

अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं में ज्ञान आधारित मूल-पाठों का उच्च कोटि का कॉर्पस तैयार करना

शब्दकोश एवं विश्वकोश जैसे उच्चकोटि के अनुवाद साधनों का निर्माण करना

अनुवाद, मेमोरी, शब्दखोजकर्ता, वर्डनेट इत्यादि सम्बन्धी सॉफ्टवेयर के विकास और अनुसंधान के लिए प्रोत्साहन

अल्पावधि के अभिविन्यास कार्यक्रम और पाठ्यक्रम के माध्यम से अनुवादकों का शिक्षण

अनुवादकों के लिए आधिकारिक मान्यता

अनुसंधान परियोजना के लिए अध्येतावृति और अनुदान

अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के मध्य, एक भारतीय भाषा से अन्य भारतीय भाषा के मध्य एवं भारतीय भाषाओं तथा विश्व की प्रमुख भाषाओं के मध्य मशीनी अनुवाद तथा मशीन संसाधित अनुवाद का प्रोत्साहन।

अनुवाद फौरी तौर पर निश्चय ही एक जरूरी उपाय है, पर हमें ध्यान रखना होगा कि इससे पुस्तकों की उपलब्धता अवश्य बढ़ जाएगी, परंतु मूल सवाल अपनी जगह पर बना ही रहेगा।

वैसे, भारत में अनुवाद का बहुरंगी इतिहास रहा है। प्रारंभिक अनुवाद को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत, प्राकृत, पाली तथा उभरती हुई क्षेत्रीय भाषाओं के मध्य, उन्हीं भाषाओं में परस्पर, उनसे अरबी और फारसी के बीच अनुवाद हुआ। आठवीं से नौवीं शताब्दी के बीच भारतीय कथ्य और ज्ञानाधारित पाठों जैसे पंचतंत्र, अष्टांगहृदय, अर्थशास्त्र, हितोपदेश, योगसूत्र, रामायण, महाभारत और भगवद्गीता का अनुवाद अरबी में हुआ। उन दिनों भारतीय और फारसी साहित्य पाठों के बीच भी व्यापक स्तर पर आदान-प्रदान हुआ। भक्तिकाल के दौरान संस्कृत पाठ विशेषरूप से भगवद्गीता और उपनिषद् अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क में आए जिसके फलस्वरूप महत्वपूर्ण भाष्यों की रचना हुई जैसे मराठी संत कवि ज्ञानेश्वर द्वारा गीता का अनुवाद ज्ञानेश्वरी तथा महाकाव्यों के विभिन्न अनुवाद, विशेष रूप से विभिन्न भाषाओं के संत कवियों द्वारा रामायण और महाभारत के अनुवाद प्रकाश में आए। उदाहरण स्वरूप पम्पा, कंबर, मौला, इजूथाचन, तुलसीदास, प्रेमानन्द, एकनाथ, बलरामदास, माधव कंदली, और कृत्तिवास आदि कृत रामायण के रूपान्तरों को देखा जा सकता है।

औपनिवेशिक काल के दौरान यूरोपीय तथा भारतीय भाषाओं विशेषकर संस्कृत के मध्य अनुवाद की एक लहर सी चल पड़ी। जहाँ यह आदान-प्रदान जर्मन, फ्रेंच, इटैलियन, स्पैनिश तथा भारतीय भाषाओं के बीच था, वहीं अंग्रेजी को उसके आधिपत्यिक अस्तित्व के कारण विशेषाधिकारयुक्त समझा जाता था क्योंकि औपनिवेशिक अधिकारी इसी भाषा का प्रयोग करते थे। अंग्रेजी अनुवाद का ब्रिटिशकाल, विलियम जोन्स द्वारा कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतलम के अनुवाद के साथ चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। एक पाठ के रूप में शाकुंतलम अब भारत की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का प्रतीक और भारतीय चेतना में एक उत्कृष्ट पाठ बन चुका है। यह प्रमाणित करता है कि किन कारणों से 19वीं शताब्दी में इसका अनुवाद दस से अधिक भारतीय भाषाओं में किया गया। अनुवाद के क्षेत्र में (औपनिवेशवादी) /अंग्रजों के प्रयास प्राच्यविद् विचारधारा द्वारा एवं भारत को समझने, परिभाषित करने, श्रेणीबद्ध करने तथा नियन्त्रित करने हेतु नए शासकों की आवश्यकता द्वारा कृत संकल्पित थे। जहाँ उन्होंने भारत का अपना एक पृथक विवरण तैयार किया, वहीं पाठों का अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले भारतीय अनुवादकों ने विस्तार करने, सुधारने, संशोधन करने का प्रयास किया एवं कभी-कभी ब्रिटिश व्याख्या को चुनौती भी दी, हालाँकि पूरा विवाद समकालीन पाठों की बजाय प्राचीन पाठों पर ही आधारित होता था। राजा राममोहन राय द्वारा अनुवादित शंकर का वेदान्त, केन

और ईश्वास्य उपनिषद् अंग्रेजी अनुवाद के क्षेत्र में भारतीय विद्वानों द्वारा भारतीय मूल-पाठों के अंग्रेजी अनुवाद का पहला भारतीय हस्तक्षेप थे। इसके पश्चात् आर. सी.दत्त ने ऋग्वेद, उपनिषदों, रामायण, महाभारत और कुछ शास्त्रीय संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया। इन अनुवादों ने स्वच्छन्दतावादी और उपयोगितावादी विचारधारा से प्रभावित, सुसुप्त मनोदशा वाले व्यक्तियों के रूप में बनी भारतियों की छवि को चुनौती दी। उसके बाद अनुवाद के क्षेत्र में जैसे बाढ़ सी आ गयी, जिनमें प्रमुख अनुवादक दीनबंधु मित्र, अरबिंदो और रवीन्द्र नाथ टैगोर थे। लगभग इसी काल में भारतीय भाषाओं के बीच भी परस्पर अनुवाद सीमित स्तर पर प्रारम्भ हुआ।

मगर सच्चाई यही है कि अभी भी भारत में अंग्रेजी अधिसंख्य शिक्षित लोगों तक की पहुँच से भी बाहर है, तथा इन वर्गों का वास्तविक सशक्तिकरण केवल महत्वपूर्ण साहित्यिक और ज्ञान आधारित पाठों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से ही संभव है। यहाँ अनुवाद के संदर्भ में गाँधीजी के विचार प्रासंगिक हैं 'मैं अंग्रेजी को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य की भाषा समझता हूँ तथा इसलिए यह आवश्यक है कि कुछ लोग इसे सीखें... और (अंग्रेजी भाषा में) दक्षता प्राप्त करने के लिए मैं उनलोगों को प्रोत्साहित करना पसंद करूँगा, तथा उनलोगों से अंग्रेजी की सर्वश्रेष्ठ कृतियों का स्थानीय बोलियों में अनुवाद करने की अपेक्षा करूँगा'। उन्होंने इस बात का भी अनुभव किया कि अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने से भारतीय भाषाओं की संवृद्धि में रुकावट आ सकती है।[2]

मातृभाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता, विशेषकर आदिवासी भाषाओं उपलब्धता की जरूरत को देखते हुए केन्द्र सरकार ने एक विशेष पैनल का गठन किया था। इस पैनल का गठन मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने शिक्षा का अधिकार कानून के संदर्भ में सर्वशिक्षा अभियान में सुधार पर सुझाव देने के लिए किया था। पूर्व शिक्षा सचिव अनिल बोरदिया की अध्यक्षता में गठित इस पैनल का मानना है कि आदिवासी क्षेत्रों में ज्यादातर बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ने की सबसे बड़ी वजह उनकी भाषा में अंतर है। स्कूलों में उन्हें अलग भाषा में पढ़ाया जाता है जबकि उनकी मातृभाषा कुछ और होती है जिससे वे विषय को समझ नहीं पाते हैं। पैनल ने सुझाव दिया है कि स्कूलों में ऐसे बच्चों को बनाए रखने के लिए शिक्षण और विकास संबंधी स्टडी मैटेरियल आदिवासी भाषाओं में ही होने चाहिए। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि मैसूर स्थित हिंदी और भारतीय भाषाओं के केंद्रीय संस्थान में ऐसे छात्रों के लिए आदिवासी भाषाओं में शिक्षण और प्रशिक्षण सामग्री तैयार की जा सकती है।

अप्रैल 2010 में मंत्रालय को सौंपी अपनी रिपोर्ट में पैनल ने कहा है कि आदिवासी बच्चों को सबसे ज्यादा भाषा संबंधी समस्या से जूझना पड़ता है। उन्हें अपने समुदाय, नाम और सांस्कृतिक पहचान के कारण स्कूलों में अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ता है। शिक्षा संबंधी रुझानों के विश्लेषण से जाहिर होता है कि ज्यादातर आदिवासी बच्चे स्कूल और घर में बोलचाल की भाषा में अंतर के कारण ही स्कूल छोड़ देते हैं। इन इलाकों में पाठ्य पुस्तकें सरकारी भाषाओं में प्रकाशित की जाती हैं जो आदिवासी लोगों की बोलचाल की भाषा से काफी भिन्न होती हैं। शुरू में शिक्षा का माध्यम आदिवासी भाषा रखना चुनौतीपूर्ण हो सकता है क्योंकि स्थानीय भाषा की लिपि उपलब्ध नहीं है। और यदि है भी तो फिलहाल वे व्यापक रूप से प्रचलन में नहीं हैं। स्थानीय भाषाओं में अध्ययन सामग्री का अभाव और उपयुक्त शिक्षकों का नहीं मिल पाना भी बड़ी समस्याएं हैं। इसके लिए आदिवासी भाषाएं बोलने वाले शिक्षकों की नियुक्ति की जा सकती है। शिक्षकों को भी आदिवासी, उनकी संस्कृति और व्यवहार को लेकर भी संवेदनशील होना चाहिए। पैनल का मानना है कि बच्चों के स्कूल छोड़ने की दर शिक्षा का अधिकार कानून लागू करने में बड़ी चुनौती बन सकती है जिसे एक अप्रैल से अमल में लाया गया है। फिलहाल छह से 14 साल की आयु के तकरीबन 81 लाख बच्चे पढ़ाई से नाता तोड़ चुके हैं जबकि अन्य क्षेत्रों की तुलना में आदिवासी क्षेत्रों में बच्चों के स्कूल छोड़ने की दर काफी ज्यादा है।[3]

जहां तक झारखंड के आदिवासी भाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता की बात है तो राज्य की लगभग सभी भाषाओं में और विविध भाषाओं में पुस्तकों का प्रकाशन बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से हो रहा है। यहां की आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में लगभग हर विषय पर पुस्तकें छपी हैं और राज्य बनने के बाद इनके प्रकाशन में उत्साहजनक वृद्धि हुई है। आदिवासी एवं क्षेत्रीय समुदायों से कई लोग प्रकाशन जगत में भी आ चुके हैं और प्रतिवर्ष नई पुस्तकें छप रही हैं। यही नहीं लगभग सभी भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हो रहा है।

झारखंड आंदोलन के दौरान अविभाजित बिहार में 1960-65 से ही यहां की भाषाओं में पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन होता रहा है। 1982 में रांची विश्वविद्यालय में जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग की स्थापना ने प्रकाशनों को स्थायित्व देने में बड़ी भूमिका निभायी।[4]

नवगठित झारखंड में भी सरकार के द्वारा राज्य की सभी आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तकों का प्रकाशन हो रहा है। सर्व शिक्षा अभियान के तहत

संकुल विद्यालयों में मातृभाषाओं में शिक्षण-अध्यापन के लिए पुस्तकें तैयार की गई हैं।

वर्ष 2007-08 में झारखंड शिक्षा परियोजना, सिमडेगा द्वारा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में आपूरित एवं वितरित पुस्तकों की संख्या निम्नवत है -

क्षेत्रीय भाषा	**लिपि**	**आपूरित पुस्तकों की संख्या**	**वितरित पुस्तकों की संख्या**
मुण्डारी	देवनागरी	12444	12444
कुड़ुख	देवनागरी	253	253
खड़िया	देवनागरी	2373	2373

स्रोत : सर्व शिक्षा अभियान, सिमडेगा

सिमडेगा जिले में क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकों का प्रखंडवार उपलब्धता (वर्ष 2007-08)

प्रखंड	**प्राप्त पुस्तकों की संख्या**			**लिपि**
	खड़िया	**मुंडारी**	**कुड़ुख**	
बानो	325	2054	34	देवनागरी
बोलबा	460	900	32	उपरोक्त
जलडेगा	469	2000	34	उपरोक्त
कोलेबिरा	325	2000	34	उपरोक्त
कुरडेग	469	2100	34	उपरोक्त
सिमडेगा	423	2160	51	उपरोक्त
ठेठईटांगर	325	1600	34	उपरोक्त
कुल योग	**2805**	**12814**	**253**	**15872**

स्रोत : सर्व शिक्षा अभियान, सिमडेगा

4. सरकारी नीतियां, प्रयास और कार्यक्रम

कोई भी भाषा जब मातृभाषा नहीं रह जाती है तो उसके प्रयोग की अनिवार्यता में कमी और उससे मिलने वाले रोजगारमूलक कार्यों में भी कमी आने लगती है। जिस अत्याधुनिक पाश्चात्य सभ्यता पर गौरवान्वित होते हुए हम व्यावसायिक शिक्षा और प्रौद्योगिक विकास के बहाने अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ाते जा रहे हैं, दरअसल यह छद्‌म भाषाई अंहकार है। क्षेत्रीय भाषाएं और बोलियां हमारी ऐतिहासिक सांस्कृतिक धरोहरें हैं। इन्हें मुख्यधारा में लाने के बहाने इन्हें हम तिल-तिल मारने का काम कर रहे हैं। कोई भी भाषा कितने ही छोटे क्षेत्र में, भले कम से कम लोगों द्वारा बोली जाने के बावजूद उसमें पारंपरिक ज्ञान के असीम खजाने की उम्मीद रहती है। ऐसी भाषाओं का उपयोग जब मातृभाषा के रुप में नहीं रह जाता है तो वे विलुप्त होने लगती हैं। सन् 2100 तक धरती पर बोली जाने वाली ऐसी सात हजार से भी ज्यादा भाषाएं हैं जो विलुप्त हो सकती हैं।[5]

जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने अपने शोध से भारत के भाषा और संस्कृति संबंधी तथ्यों से जिस तरह समाज को परिचित कराया था, उसी तर्ज पर अब नए सिरे से गंभीर प्रयास किए जाने की जरुरत है, क्योंकि हर पखवाड़े एक भाषा मर रही है। इस दायरे में आने वाली खासतौर से आदिवासी व अन्य जनजातीय भाषाएं हैं, जो लगातार उपेक्षा का शिकार होने के कारण विलुप्त हो रही हैं। ये भाषाएं बहुत उन्नत हैं और ये पारंपरिक ज्ञान की कोष हैं। भारत में ऐसे हालात सामने भी आने लगे हैं कि किसी एक इंसान की मौत के साथ उसकी भाषा का भी अंतिम संस्कार हो जाए। स्वाधीनता दिवस 26 जनवरी 2010 के दिन अंडमान द्वीप समूह की 85 वर्षीया बोआ के निधन के साथ एक ग्रेट अंडमानी भाषा 'बो' भी हमेशा के लिए विलुप्त हो गई। इस भाषा को जानने, बोलने और लिखने वाली वे अंतिम इंसान थीं। इसके पूर्व नवंबर 2009 में एक और महिला बोरो की मौत के साथ 'खोर' भाषा का अस्तित्व समाप्त हो गया। किसी भी भाषा की मौत सिर्फ एक भाषा की ही मौत नहीं होती, बल्कि उसके साथ ही उस भाषा का ज्ञान भण्डार, इतिहास, संस्कृति, उस क्षेत्र का भूगोल एवं उससे जुड़े तमाम तथ्य और मनुष्य भी इतिहास का हिस्सा बन जाते हैं। इन भाषाओं और इन लोगों का वजूद खत्म होने का प्रमुख कारण इन्हें जबरन मुख्यधारा से जोड़ने का छलावा है। ऐसे हालातों के चलते ही अनेक आदिम भाषाएं विलुप्ति के कगार पर हैं।

भारत सरकार ने उन भाषाओं के आंकड़ों का संग्रह किया है, जिन्हें 10 हजार से अधिक संख्या में लोग बोलते हैं। 2001 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार ऐसी 122 भाषाएं और 234 मातृभाषाएं हैं। भाषा-गणना की ऐसी बाध्यकारी शर्त के चलते जिन भाषा व बोलियों को बोलने वाले लोगों की संख्या 10 हजार से कम है उन्हें गिनती में शामिल ही नहीं किया गया।

'नेशनल ज्योग्राफिक सोसायटी एंड लिविंग टंग्स इंस्टीट्यूट फॉर एंडेंजर्ड लैंग्वेजज' के अनुसार हरेक पखवाड़े एक भाषा की मौत हो रही है। सन् 2100 तक भू-मण्डल में बोली जाने वाली सात हजार से भी अधिक भाषाओं का लोप हो सकता है। इनमें से पूरी दुनिया में सात्ताईस सौ भाषाएं संकटग्रस्त हैं। इन भाषाओं में असम की 17 भाषाएं शामिल हैं। यूनेस्कों द्वारा जारी एक जानकारी के मुताबिक असम की देवरी, मिसिंग, कछारी, बेइटे, तिवा और कोच राजवंशी सबसे संकटग्रस्त भाषाएं हैं। इन भाषा-बोलियों का प्रचलन लगातार कम हो रहा है। नई पीढ़ी के सरोकार असमिया, हिन्दी और अंग्रेजी तक सिमट गए हैं। इसके बावजूद 28 हजार लोग देवरी भाषी, मिसिंगभाषी साढ़े पांच लाख और बेइटे भाषी करीब 19 हहजार लोग अभी भी हैं। इनके अलावा असम की बोडो, कार्बो, डिमासा, विष्णुप्रिया, मणिपुरी और काकबरक भाषाओं के जानकार भी लगातार सिमटते जा रहे हैं। घरों में, बाजार में व रोजगार में इन भाषाओं का प्रचलन कम होते जाने के कारण नई पीढ़ी इन भाषाओं को सीख-पढ़ नहीं रही है। दरअसल जिस भाषा का प्रयोग लोग मृतभाषा के रुप में करना बंद कर देते हैं, वह भाषा धीरे-धीरे विलुप्ति के निकट आने लगती है।

अंतरराष्ट्रीय भाषा संस्थान 'सिल' के अनुसार भारत में 1600 से अधिक बोलियां हैं। इनमें से 850 रोजाना की जिंदगी में प्रयोग की जा रही हैं और लगभग 415 जीवित भाषाएं हैं। लेकिन भाषाओं के इस विशाल भंडार को सहेजने और समृद्ध बनाए रखने के लिए हमारे देश में मात्र एक संस्थान है - राष्ट्रीय भाषा संस्थान मैसूर। राष्ट्रीय भाषा संस्थान मैसूर की रिपोर्ट में भारत के 12 आदिवासी भाषाओं को विलुप्त होने वाली सूची में रखा गया है। इनमें अंडमान की जारवा, अंडमानी जैसी भाषाएं तो हैं ही जिन्हें बोलने वाले मात्र चार व्यक्ति बचे हैं, झारखंड की कुड़ुख भाषा भी शामिल है जिसे बोलने वालों की संख्या लाखों में है। भारत में एक करोड़ से कम बोलने वाली भाषाओं की संख्या 29 है (इसमें झारखंड की छह भाषाएं-हो, खड़िया, मुंडा, कुड़ुख, किसान और मलतो शामिल हैं), एक लाख से कम 10, दस हजार से कम 118, पांच हजार से कम 92, एक हजार से कम 30, पांच सौ से कम

17 और एक सौ से कम 6 भाषाएं हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार प्रति सप्ताह कम से कम एक भाषा मर रही है। 1991 की तुलना में 2001 में भारत की आदिवासी भाषाओं में झारखंड की हो और किसान में 11.33 और 12.96 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी है, जबकि भाषा छोड़ने की सबसे खतरनाक प्रवृति कुड़ुख भाषा समुदाय में चिन्हित की गयी है।[6]

भारत की तमाम स्थानीय भाषाएं व बोलियां अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव के कारण संकटग्रस्त हैं। व्यावसायिक, प्रशासनिक, चिकित्सा, अभियांत्रिकी व प्रौद्योगिकी की आधिकारिक भाषा बन जाने के कारण अंग्रेजी रोजगारमूलक शिक्षा का प्रमुख आधार बना दी गई है। इन कारणों से उत्तरोत्तर नई पीढ़ी मातृभाषा के मोह से मुक्त होकर अंग्रेजी अपनाने को विवश है। प्रतिस्पर्धा के दौर में मातृभाषा को लेकर युवाओं में हीन भावना भी पनप रही हैं। इसलिए जब तक भाषा संबंधी नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन नहीं होता तब तक भाषाओं की विलुप्ति पर अंकुश लगाना मुश्किल है। भाषाओं को बचाने के लिए समय की मांग है कि क्षेत्र विशेषों में स्थानीय भाषा के जानकारों को ही निगमों, निकायों, पंचायतों, बैंकों और अन्य सरकारी दफ्तरों में रोजगार दिए जाएं। इससे अंग्रेजी के फैलते वर्चस्व को चुनौती मिलेगी और ये लोग अपनी भाषाओं व बोलियों का सरंक्षण तो करेंगे ही उन्हें रोजगार का आधार बनाकर गरिमा भी प्रदान करेंगे। ऐसी सकारात्मक नीतियों से ही युवा पीढ़ी मातृभाषा के प्रति अनायास पनपने वाली हीन भावना से भी मुक्त होगी। अपनी सांस्कृतिक धरोहरों और स्थानीय ज्ञान परंपराओं को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए जरुरी है हम भाषाओं और उनके जानकारों की वंश परंपरा को भी अक्षुण्ण बनाए रखने की चिंता करें।

जब भारत का संविधान बन रहा था, तब 1949 में भाषा संबंधी प्रस्ताव के लिए बनी ड्राफ्टिंग कमेटी के एक सदस्य एम. सत्यनारायण ने 8वीं अनुसूची के मूल प्रस्ताव में सिर्फ 12 भाषाओं को जगह दी थी- हिंदी, बंगला, पंजाबी, तमिल, कन्नड़, तेलगू, मलयालम, उड़िया, असमी, कश्मीरी, मराठी और गुजराती। संविधान सभा के बहसों के दौरान प. जवाहर लाल नेहरू ने आग्रह करके इसमें उर्दू को शामिल करवाया। संविधान सभा के दूसरे सदस्य के.एम. मुंशी के जोर देने से इसमें संस्कृत को भी शामिल कर लिया गया। इस तरह संविधान में 14 भारतीय भाषाएं 8वीं अनुसूची में शामिल हुई। पाकिस्तान से बहुत सारे सिंधी भारत आ गये थे। करीब 18 साल बाद 1967 में इस सूची में सिंधी को भी जोड़ दिया गया। फिर 15 साल बाद 1992 में इसमें तीन और भाषाओं को जोड़ा गया-नेपाली, कोंकणी और

मणिपुरी। इस तरह 8वीं अनुसूची में भाषाओं की संख्या 18 हुई। इसके 11 साल बाद 2003 के अंत में इसमें संताली, बोड़ो, डोंगरी और मैथली को जोड़ दिया गया। 8वीं अनुसूची के इस इतिहास को देखते हुए इसमें किसी भाषा को शामिल करने या न करने के पीछे कौन सा तर्क या सिद्धांत उभरता है? पहली नजर में ऐसा लगता है कि भारत की जो बड़ी भाषाएं हैं जिन्हें काफी बड़ी संख्या में लोग बोलते हैं-जैसे हिंदी, तमिल मराठी बगैरह, उन्हीं को 8वीं अनुसूची में प्रतिनिधित्व दिया गया है लेकिन जरा सा गौर करते ही इस तर्क का झूठ सामने आ जाता है। मसलन तब संस्कृत को इसमें कैसे शामिल किया गया? मातृभाषा के रूप में संस्कृत बोलने वालों की संख्या, जनगणना के मुताबिक सिर्फ ढाई हजार थी। जबकि उससे कहीं अधिक संख्या में बोली जाने वाली भाषाएं इससे बाहर रखी गयी थी। इसी तरह कश्मीरी बोलने वालों की संख्या से कहीं अधिक बड़ी संख्या गोंडी, भीली और संताली बोलने वालों की थी जबकि इन्हें उस समय इस सूची में शामिल नहीं किया गया। संस्कृत के बारे में एक तर्क यह दिया जाता है कि संस्कृत साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध भाषा है, इसलिए इसे शामिल किया गया। अगर किसी भाषा की साहित्यिक समृद्धि, 8वीं अनुसूची में शामिल होने की एक कसौटी हो सकती है तो और कई भाषाएं, जो साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध रही हैं- जैसे डिंगल (प. राजस्थानी), अवधी, ब्रजभाषा -इन्हें क्यों नहीं शामिल किया गया जबकि इनके बोलने वालों की संख्या भी संस्कृत के मुकाबले में कई गुना ज्यादा है? तो फिर क्या यह माना जाये कि 8वीं अनुसूची बनाने का आधार भारत के भाषाई प्रतिनिधित्व को प्रस्तुत कर रहा है? यानी 8वीं अनुसूची का मकसद भाषाओं के रूप में राष्ट्र को प्रतिबिंबित करना है। पं. नेहरू ने कुछ इसी तरह का तर्क दिया भी था। सिर्फ हिंदी को भारत की एकमात्र राष्ट्रभाषा समझने का विरोध करते हुए नेहरू ने 8वीं अनुसूची को गौरव प्रदान करने के लिए कहा था कि सिर्फ हिंदी ही नहीं, 8वीं अनुसूची में शामिल सभी भाषाएं समान रूप से भारत की राष्ट्रीय भाषाएं हैं। इस तर्क से जहां एक ओर 8वीं अनुसूची का रूतबा बढ़ता है वहीं दूसरी ओर यह सवाल भी पैदा होता है कि तब 8वीं अनुसूची से बाहर रह गयी भाषाएं क्या हैं? किस तर्क से उन्हें राष्ट्रीय भाषाओं की सूची से बाहर रखा गया? सवाल है कि अपने राष्ट्र के बारे में हमारी अवधारणा क्या है? हम इस राष्ट्र में किसको-किसको शामिल मान कर चलते हैं? 2002 ईसवी तक 8वीं अनुसूची में देश की एक भी आदिवासी भाषा शामिल नहीं की गयी थी जबकि गोंडी, भीली और संताली ये तीन आदिवासी भाषाएं ऐसी हैं जिनके बोलने वालों की संख्या 50-50 लाख से ऊपर रही है। क्या आदिवासी इस राष्ट्र के अंग नहीं हैं?

क्या आदिवासी जातियों को बेजुबान मान लिया गया, जिनका प्रतिनिधित्व दूसरी भाषाएं बोलने वाले करेंगे?[7]

जाहिर है कि किसी भाषा का भौगोलिक विस्तार या उसके बोलने वालों की संख्या या उसकी साहित्यिक समृद्धि या उसका राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व 8वीं अनुसूची का सैद्धांतिक आधार नहीं रहा है। तो फिर इसका आधार क्या है?

सच्चाई यह है कि 8वीं अनुसूची का आधार भारत राष्ट्र की संकीर्ण परिकल्पना और उसमें अपेक्षाकृत विकसित और शक्तिशाली समुदायों की राजनीतिक ताकत ही प्रतीत होती है। जो समुदाय अपने आप को इस देश की मुख्यधारा समझते हैं उन्होंने खुद को ही राष्ट्र समझ रखा है। उन्हीं समुदायों की भाषाएं राष्ट्रीय भाषाओं के रूप में 8वीं अनुसूची में शामिल कर ली गयी हैं। या फिर जिन भाषाओं के पीछे राजनीतिक रूप से मुखर और शक्तिशाली कोई व्यक्ति कोई व्यक्ति, नेता या समुदाय रहा अथवा कोई विशेष राजनीतिक अभिप्राय रहा, उस भाषा को भी 8वीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया, बाकी को छोड़ दिया गया।

वास्तव में 1967 से पहले तक संविधान में 8वीं अनुसूची की उपयोगिता से संबंधित कोई भी महत्वपूर्ण प्रावधान नहीं मिलता है। पूरे संविधान में सिर्फ दो अनुच्छेद ऐसे हैं जहां 8वीं अनुसूची का नाम भर ले लिया गया था। इसमें भी एक जगह उसका नाम लेना अर्थहीन था। दूसरी जगह अर्थ तो था, पर वह अर्थ उसे कभी दिया नहीं गया। इनमें से एक अनुच्छेद 351 है जहां संविधान ने राजभाषा के रूप में हिंदी का विकास करने के लिए यह निर्देश दिया कि हिंदी के विकास के लिए, उसके अपने ठाठ के साथ छेड़छाड़ किये बिना, 8वीं अनुसूची की दूसरी भाषाओं के रूप, शैली और अभिव्यक्तियों को उसमें आत्मसात करते हुए उसका विकास किया जाये। दरअसल इस निर्देश का न तो कभी पालन किया गया और नही इसका पालन किया जा सकता था। क्योंकि किसी भाषा का विकास इस तरह नहीं किया जा सकता। कोई उदाहरण देकर बताये कि कैसे सिंधी, तमिल, संताली या बोड़ो के रूप, शैली और अभिव्यक्ति को हिंदी में आत्मसात करके इसका विकास किया जा सकता है? बेशक, एक भाषा अपने विकास के क्रम में दूसरी बहुत सारी भाषाओं के साथ आदान-प्रदान करती रहती है। लेकिन यह आदान-प्रदान किसी निर्देश से नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के बीच, अपने आप ऐतिहासिक रूप से होता चलता है। संविधान के निर्देश के बिना भी यह प्रक्रिया अपने स्वभाविक रूप से चलती रहती है। दूसरी बात यह कि यह आदान-प्रदान (न कि एकतरफा आत्मसातीकरण) सिर्फ 8वीं अनुसूची की भाषाओं तक ही क्यों सीमित रहे? उसके

बाहर की भाषाओं से क्यों नहीं? हकीकत यह है कि पिछले डेढ सौ वर्षों के दौरान हिंदी ने अपने विकास के क्रम में जिस एक भाषा के रूप, शैली और अभिव्यक्तियों को सबसे ज्यादा ग्रहण किया है, वह अंग्रेजी है, जो 8वीं अनुसूची में कहीं नहीं है।

जहां तक केन्द्र एवं राज्य स्तर पर प्रयासों एवं कार्यक्रमों की बात है तो अभी सभी स्तरों पर हमारे देश में बहुत कुछ किया जाना शेष है, पर उससे पहले नीतियों में मौजूद उन विरोधाभासों को दूर करना होगा जिनके चलते भी भाषाई विकास में अवरोध बना हुआ है।

झारखंड के सरकारी स्कूलों में और सर्वशिक्षा अभियान तथा अन्य कार्यक्रमों के तहत संचालित विभिन्न स्कूलों में मातृभाषाओं में शिक्षण व्यवस्था बहुत संतोषजनक नहीं है। लेकिन स्थिति निराशाजनक भी नहीं है। आगे के पृष्ठों पर सिमडेगा जिले के सरकारी स्कूलों के आंकड़ें बताते हैं कि मातृभाषाओं में शिक्षा प्राप्त करने की प्रवृति उत्साहजनक है और इस ओर विशेष प्रयास करने की जरूरत है।

सिमडेगा प्रखंड के गर्वमेंट मिडिल स्कूल, बड़ाबरपानी (तालिका-क, 238), अपर प्राइमरी गर्वमेंट हाई स्कूल, जामबहार (तालिका-ख, 160), अपर प्राइमरी गर्वमेंट मिडिल स्कूल, पुरनाडीह (तालिका-ग, 339) और अपर प्राइमरी गर्वमेंट मिडिल स्कूल, सुतराम (तालिका-घ, 78) में कुल मिलाकर 815 छात्र-छात्राएं मातृभाषाओं में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

इसी प्रकार से सिमडेगा जिले के बुनिययादी विद्यालयों में भी मातृभाषाओं में शिक्षा ले रहे छात्र-छात्राओं की अच्छी संख्या है। बुनियादी स्कूल फुलवारटांगर (तालिका-च), बुनियादी स्कूल सिमडेगा (तालिका-छ) और बुनियादी स्कूल कोलेबिरा (तालिका-ज) में मातृभाषाओं में पढ़ाई करने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या क्रमशः 78, 166 और 206 है। अर्थात् इन तीनों बुनियादी स्कूलों में 450 छात्र-छात्राएं मातृभाषाओं में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।[8]

सिमडेगा जिला के सरकारी स्कूलों में मातृभाषाओं की स्थिति [9]

(तालिका - क) गर्वमेंट मिडिल स्कूल, बड़ाबरपानी

मातृभाषा	**कक्षा**	**छात्र छात्राएं**	**मातृभाषा**	**कक्षा**	**छात्र छात्राएं**
खड़िया	I	15	मुंडारी	I	4
	II	9		II	5
	III	17		III	6
	IV	5		IV	4
	V	7		V	5
	VI	4		VI	6
	VII	13		VII	4
	VIII	8		VIII	5
	योग	**78**		**योग**	**37**
कुड़ुख	I	7	नागपुरी	I	10
	II	5		II	6
	III	11		III	4
	IV	3		IV	20
	V	5		V	18
	VI	6		VI	4
	VII	10		VII	7
	VIII	5		VIII	6
	योग	**52**		**योग**	**75**

विद्यालय में कुल छात्र = 111, कुल छात्राएं = 127

छात्र-छात्राओं का कुल योग = 238

तालिका - ख

अपर प्राइमरी गर्वमेंट हाई स्कूल, जामबहार

मातृभाषा	कक्षा	छात्र छात्राएं	मातृभाषा	कक्षा	छात्र छात्राएं
खड़िया	I	13	मुंडारी	I	7
	II	6		II	8
	III	6		III	5
	IV	3		IV	13
	V	6		V	16
	VI	4		VI	5
	VII	1		VII	3
	VIII	7		VIII	8
	योग	**33**		**योग**	**65**
कुडुख	I	5	नागपुरी	I	5
	II	7		II	3
	III	3		III	4
	IV	4		IV	8
	V	0		V	1
	VI	6		VI	2
	VII	7		VII	1
	VIII	5		VIII	1
	योग	**37**		**योग**	**25**

विद्यालय में कुल छात्र = 70, कुल छात्राएं = 90

छात्र-छात्राओं का कुल योग = 160

तालिका - ग

अपर प्राइमरी गर्वमेंट हाई स्कूल, पुरनाडीह

मातृभाषा	कक्षा	छात्र छात्राएं	मातृभाषा	कक्षा	छात्र छात्राएं
खड़िया	I	12	मुंडारी	I	6
	II	16		II	13
	III	7		III	15
	IV	9		IV	8
	V	17		V	8
	VI	30		VI	25
	VII	8		VII	20
	VIII	27		VIII	20
	योग	**126**		**योग**	**115**
कुडुख	I	1	नागपुरी	I	13
	II	4		II	15
	III	7		III	7
	IV	3		IV	7
	V	4		V	5
	VI	3		VI	11
	VII	5		VII	5
	VIII	0		VIII	8
	योग	**27**		**योग**	**71**

विद्यालय में कुल छात्र = 204, कुल छात्राएं = 135

छात्र-छात्राओं का कुल योग = 339

तालिका - घ

अपर प्राइमरी गर्वमेंट हाई स्कूल, सुतराम

मातृभाषा	**कक्षा**	**छात्र छात्राएं**	**मातृभाषा**	**कक्षा**	**छात्र छात्राएं**
खड़िया	I	5	मुंडारी	I	2
	II	6		II	3
	III	8		III	3
	IV	9		IV	0
	V	4		V	0
	VI	5		VI	0
	VII	3		VII	2
	VIII	2		VIII	4
	योग	**42**		**योग**	**14**
कुडुख	I	0	नागपुरी	I	0
	II	2		II	0
	III	3		III	0
	IV	0		IV	0
	V	2		V	0
	VI	4		VI	0
	VII	8		VII	0
	VIII	3		VIII	0
	योग	**22**		**योग**	**0**

विद्यालय में कुल छात्र = 41, कुल छात्राएं = 37

छात्र-छात्राओं का कुल योग = 78

तालिका - च
बुनियादी स्कूल, फुलवारटांगर

विद्यालय	मातृभाषा	विद्यार्थी	कक्षा								योग
			I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII	
बुनियादी स्कूल फुलवारटांगर वर्ष 2011-2012	खड़िया	छात्र	7	3	5	9	5	2	1	2	34
		छात्राएं	3	0	4	8	10	3	5	5	38
		योग	**10**	**3**	**9**	**17**	**15**	**5**	**6**	**7**	**72**
	मुंडारी	छात्र	0	0	0	0	0	0	0	0	0
		छात्राएं	0	0	0	0	0	0	0	0	0
		योग	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**
	कुड़ुख	छात्र	0	0	0	0	0	0	0	0	0
		छात्राएं	0	0	0	0	0	0	0	0	0
		योग	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**	**0**

तालिका - छ

बुनियादी स्कूल, सिमडेगा

विद्यालय	मातृभाषा	विद्यार्थी	कक्षा								योग
			I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII	
बुनियादी स्कूल फुलवारटांगर वर्ष 2011-2012	खड़िया	छात्र	5	7	0	3	5	7	9	4	40
		छात्राएं	3	4	3	5	7	0	3	7	32
		योग	**8**	**11**	**3**	**8**	**12**	**7**	**12**	**11**	**72**
	मुंडारी	छात्र	7	0	0	3	0	0	5	0	**15**
		छात्राएं	3	2	0	0	0	0	7	9	**21**
		योग	**10**	**2**	**0**	**3**	**0**	**0**	**12**	**9**	**36**
	कुड़ुख	छात्र	1	0	11	0	3	2	3	6	**26**
		छात्राएं	4	3	2	7	9	6	0	3	**32**
		योग	**5**	**3**	**13**	**7**	**12**	**8**	**3**	**9**	**58**

तालिका - ज
बुनियादी स्कूल, कोलेबिरा

विद्यालय	मातृभाषा	विद्यार्थी	कक्षा I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII	योग
बुनियादी स्कूल फुलवारटांगर वर्ष 2011-2012	खड़िया	छात्र	5	0	0	2	0	5	0	0	12
		छात्राएं	3	4	0	2	5	0	3	8	25
		योग	**8**	**4**	**0**	**4**	**5**	**5**	**3**	**8**	**37**
	मुंडारी	छात्र	5	11	0	13	7	7	0	0	**43**
		छात्राएं	0	0	2	0	0	2	4	5	**13**
		योग	**5**	**11**	**2**	**13**	**7**	**9**	**4**	**5**	**56**
	कुड़ुख	छात्र	0	0	0	0	0	8	9	11	**28**
		छात्राएं	0	2	1	3	10	0	0	0	**16**
		योग	**5**	**3**	**13**	**7**	**12**	**8**	**3**	**9**	**44**
	कुड़ुख	छात्र	4	0	0	0	0	15	9	17	**45**
		छात्राएं	7	3	0	5	7	13	25	9	**69**
		योग	**11**	**3**	**0**	**5**	**7**	**28**	**34**	**26**	**114**

5. सिमडेगा जिला में बालिका शिक्षा की उपलब्धियां और अनुभव

खड़िया आदिवासी बहुल सिमडेगा जिला में राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 2003-2004 में की गयी। तब से आज तक इसके अपेक्षित परिणाम हासिल हुए हैं। सभी सुविधावंचित बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ने तथा छीजत दर को रोकने के इस अभिनव प्रयास में हालांकि अभी तक पूर्ण सफलता नहीं मिली है, परंतु सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शुरू किये गये इस कार्यक्रम से अत्यंत उत्साहजनक परिणाम सामने आए हैं।

राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के वर्ष 2008-09 की रिपोर्ट में कहा गया है कि झारखंड राज्य में इस कार्यक्रम के तहत कुल 2975 मॉडल कलस्टर विद्यालयों की स्थापना की गई जिसके द्वारा शत-प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त किया गया। इन सभी विद्यालयों में 3818 छात्राओं ने दाखिला लिया। राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के रेमेडियल शिक्षा और ब्रिज कोर्स में 38189 बालिकाओं को नामाकित करने में सफलता हासिल हुई। 1684 बालिकाओं को ओपन स्कूल के तहत शिक्षा से जोड़ा गया। 2975 मॉडल कलस्टर स्कूलों में स्कूल और स्कूल के बाहर की 24679 बालिकाओं ने व्यावसायिक शिक्षा पाई।[10]

राज्य में 1497 पूर्वबालपन केन्द्र संचालित किये जा रहे हैं जबकि शेष को समेकित बाल विकास परियोजना कार्यक्रम (ICDS) के साथ समाहित कर दिया गया है। इन बाल जगजगी केन्द्रों में कुल 59636 बच्चों को शिक्षा एवं अन्य माध्यमों के द्वारा शिक्षित किया जा रहा है।

वर्ष 2008-09 के दौरान इसी के साथ कुल 5575 शिक्षकों को जेंडर संवेदनशीलता का प्रशिक्षण दिया गया। राज्य भर में 2007 अतिरिक्त नये कक्षाओं का निर्माण किया गया तथा 770 के निर्माण का कार्य जारी है।

राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के तहत वर्ष 2008-09 के दौरान के ये आंकड़ें बताते हैं कि संपूर्ण राज्य के साथ-साथ सिमडेगा में भी इसका असर पड़ा और बालिका शिक्षा में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई पड़ा। क्योंकि जब यह कार्यक्रम झारखंड राज्य में लागू हुआ था, तब यानी वर्ष 2002-03 में इस कार्यक्रम की स्थिति निम्न प्रकार थी -

बाल जगजगी केन्द्र - 325

किशोरी मंच	- 156
जगजगी केन्द्र	- 276
ब्रिज कोर्स	- 56
कैंप विद्यालय	- 23
महिला शिक्षण केन्द्र	- 05 [11]

सिमडेगा में बालिका शिक्षा के प्रसार को अपेक्षित गति देने के लिए राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के तहत वर्ष 2003-04 में जिले के 4 प्रखंडों - जलडेगा, बानो, बोलबा और सिमडेगा में एक-एक संकुल स्थापित किये गये। वर्तमान में सिमडेगा के सभी प्रखंडों में कुल 36 आदर्श संकुल विद्यालय चल रहे हैं। जलडेगा, ठेठईटांगर, कुरडेग और कोलेबिरा में 5-5, बानो में 6, बोलबा में 4 जबकि बांसजोर, पाकरडांड़ और सिमडेगा प्रखंडों में 2-2 संकुल विद्यालय सक्रिय हैं।

सत्र 2004-05 में व्यवसायिक एवं रेमेडियल शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं की कुल संख्या 741 थी। इसका वितरण प्रखण्डवार इस प्रकार है - कुरडेगा 98, बोलबा 79, ठेठईटांगर 89, जलडेगा 240, बानो 97 और कोलेबिरा में 152। इस वर्ष 24 संकुल विद्यालयों से कुल 480 शिक्षकों को जेण्डर प्रशिक्षण दिया गया।

वर्ष 2005-06 के दौरान जिले भर में कुल 1292 बालिकाओं ने व्यवसायिक एवं रेमेडियल शिक्षा प्राप्त की। इनमें आदिवासी बालिकाओं की संख्या 792 थी।

सत्र 2006-07 में व्यवसायिक एवं रेमेडियल शिक्षा प्राप्त करने वाले बालिकाओं की कुल संख्या 779 रही। जबकि 720 शिक्षकों को जेंडर प्रशिक्षण दिया गया। इस सत्र के दौरान 335 बालिकाओं को अवार्ड मिला जबकि पूर्वबालपन केन्द्रों में शामिल बच्चों की संख्या 1225 थी। वहीं 4341 लोगों का सामुदायिक उत्प्रेरण करने में सफलता हासिल हुई।

2007-08 के सत्र में व्यवसायिक एवं रेमेडियल शिक्षा प्राप्त करने वाले बालिकाओं की संख्या मैं अप्रत्याशित वृद्धि दर्ज की गई। इस वर्ष कुल 1252 बालिकाओं को व्यवसायिक शिक्षा से जोड़ा गया जिसमें आदिवासी बालिकाओं की संख्या 792 थी। वहीं रेमेडियल शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं की संख्या 1338 रही। इसमें 840 आदिवासी बालिकाएं थीं। जबकि पूर्वबालपन केन्द्र के बच्चों की कुल संख्या 1158 रही। इसमें भी 822 बच्चे आदिवासी वर्ग से थे।

वर्ष 2008-09 में 1181 बालिकाओं ने सभी कोटियों के अंतर्गत व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त की। इनमें 692 आदिवासी वर्ग की थीं। रेमेडियल शिक्षा हासिल करने

वाली बालिकाओं की संख्या 1198 रही। इनमें भी 719 बालिकाएं आदिवासी थीं। इस वर्ष पूर्वबालपन केन्द्रों से 836 बच्चों को जोड़ने में सफलता मिली जिनमें 360 बच्चे आदिवासी थे।[12]

2009-10 सत्र में 642 बालिकाओं ने व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त की और इसमें 456 आदिवासी बालिकाएं लाभान्वित हुईं। रेमेडियल शिक्षा प्राप्त करने वाली आदिवासी बालिकाओं की संख्या 456 रही जबकि सभी कोटियों के अंतर्गत लाभार्थी बालिकाएं कुल 642 थीं। पूर्वबालपन केन्द्र में इस वर्ष 688 बच्चे नामांकित हुए जिनमें 466 बच्चे आदिवासी समूहों से आते हैं।

जेण्डर प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले शिक्षक-शिक्षिकाओं की सत्रवार संख्या :-

सत्र	*संख्या*
2004 - 05	480
2005 - 06	720
2006 - 07	720
2007 - 08	720
2008 - 09	720
2009 - 10	720
कुल योग संख्या	4320[13]

महिला समूहों एवं सदस्यों की संख्या :-

सत्र	*म.स.*	*सदस्य संख्या*
2007 - 08	318	4071
2008 - 09	330	4251
2009 - 10	330	4251[14]

बालिका शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े सिमडेगा जिले में 7 कस्तुरबा गांधी आवासीय विद्यालय भी खोले गये। राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के तहत खोले गये कस्तुरबा गांधी आवासीय विद्यालय में बालिकाओं के लिए पढ़ाई, भोजन, वस्त्र व आवास की निःशुल्क व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है। इन विद्यालयों में वैसी लड़कियों का नामांकन किया जाता है जो किसी कारण से अन्य विद्यालयों में नियमित कक्षा से वंचित रह गई हो। इन विद्यालयों में पढ़ाई करने वाली छात्रों को

प्रोत्साहित करने के लिए छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है।

जिले भर में माडल कलस्टर विद्यालयों की संख्या 116 है। इन विद्यालयों में बालिकाओं को सिलाई, कटाई, बुनाई आदि व्यवसायिक शिक्षा भी प्रदान की जाती है ताकि पढ़ाई समाप्त करने के बाद ये छात्राएं आत्मनिर्भर बन सके। प्रत्येक बालिका शिक्षित हो यही इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य है। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बाद इस कार्यक्रम को और अधिक बल मिला है। प्रत्येक विद्यालय के माता समिति का यह दायित्व होता है कि वे गांवों में घूम-घूम कर यह सुनिश्चित करे कि एक भी बालिका विद्यालय से बाहर न हो। इसके लिए माता पिता को प्रेरित करने का भी कार्यक्रम है। बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य सरकार के शिक्षा विभाग व कल्याण विभाग द्वारा साइकिल वितरण का भी कार्यक्रम चलाया जाता है। ताकि दूर दराज की बालिका भी आसानी से विद्यालय आकर अपनी पढ़ाई पूरी कर सकें।

राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के हस्तक्षेप के कारण न सिर्फ जिले की अधिकांश बालिकाओं को शिक्षा से जुड़ने के लिए प्रेरित किया गया बल्कि शिक्षा से वंचित रह गई बालिकाओं को भी व्यवसायिक एवं अन्य गतिविधियों से जोड़ने में सफलता मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि नियमित विद्यालयों में छीजन के दर में कमी आई और हजारों बालिकाएं सतत शिक्षा से जुड़ गईं।

कक्षा 1 से 5 एवं 6 से 8 तक नामांकित बालिकाएं[15]

सत्र 2010-2011

कक्षा	अ.जा.	अ.ज.जा.	अल्पसंख्यक	अन्य	योग
1 - 5	4038	7051	7268	2020	40377
1 - 8	824	5436	247	173	8237
कुल	4862	32487	7515	3750	48614

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सत्र 2010-2011 के दौरान सिमडेगा जिला के बालिका शिक्षा परिदृश्य में उल्लेखनीय बदलाव आया है। कक्षा 1 से 8 तक नामांकित कुल संख्या 48614 में से 32487 आदिवासी समूहों से आती हैं, जबकि दूसरे नंबर पर दलित वर्ग से आने वाली बालिकाएं हैं।

सिमडेगा जिले में बालिका शिक्षा की उपलब्धियों में सबसे उल्लेखनीय है मातृभाषाओं की महत्ता को केन्द्र में रखना एवं प्राइमरी स्तर उसे शिक्षण का माध्यम बनाना। यह बताने की जरूरत नहीं है कि मातृभाषाओं के प्रयोग से न सिर्फ बच्चों के सीखने की प्रवृति को प्रोत्साहन मिलता है बल्कि उनकी समझ भी समय, समाज और परिवेश के सापेक्ष होती है। हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा माध्यम की बजाय मातृभाषाओं को माध्यम बनाने से सिमडेगा जिले में बालिकाओं का रूझान शिक्षा के प्रति बढ़ा है और छीजत दर में भी कमी आई है।

अगले पृष्ठ पर दी गई तालिकाओं के द्वारा हम राज्य के प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषाओं के प्रति बच्चों के रूझान को स्पष्टतः देख सकते हैं। तालिका बताती है कि वर्ष 2005 से लेकर 2009 तक प्राइमरी स्तर के नामांकन में भाषाई छात्रों की उपस्थिति लगातार बढ़ी है। वर्ष 2008-09 को छोड़कर लगभग सभी सत्रों में झारखंडी भाषाओं में शिक्षा पाने की प्रवृति साफ दिखई पड़ती है। क्योंकि 2005-2006 में जहां सभी स्तरों पर 0.97 और प्राइमरी स्तर पर 0.94 प्रतिशत बच्चों की शिक्षा का माध्यम उनकी अपनी भाषा थी, वह वर्ष 2007-2008 में बढ़

प्राइमरी स्तर पर भाषाई छात्र[16]

सत्र	विद्यालय	कुल भाषाई योग	अन्य झारखंडी	कुल का प्रतिशत
2005-2006	सभी विद्यालय	3344824	32593	0.97
	प्राइमरी विद्यालय	1756570	16635	0.94
2006-2007	सभी विद्यालय	6290531	88080	1.40
	प्राइमरी विद्यालय	3099323	52566	1.7
2007-2008	सभी विद्यालय	6682338	105198	1.57
	प्राइमरी विद्यालय	2881444	65455	2.27
2008-2009	सभी विद्यालय	6567561	45361	0.69
	प्राइमरी विद्यालय	2578472	26406	1.02

सभी स्तर के विद्यालयों में शिक्षण की भाषा (2008-2009) [17]

विद्यालय	हिंदी	उर्दू	अंग्रेजी	बांग्ला	अन्य/झारखंडी
प्राइमरी	2454213	48132	38606	11115	26406
प्राइमरी व अपर प्राइमरी	3253788	120525	87198	21378	9739
प्राइमरी/अपर प्राइमरी	188290	17650	2147	78126	4355
अपर प्राइमरी	18015	0	838	238	2019
अपर प्राइमरी व सेकेंडरी	167157	2406	7021	5357	2842
सभी विद्यालयों का योग	6081463	188713	135810	116214	45361

कर सभी स्तरों पर 1.57 और प्राइमरी स्तर पर 2.27 प्रतिशत हो गई। सभी भाषा वर्गों में अध्ययन करने वाले बच्चों की तालिका से भी यही स्पष्ट होता है।

इसलिए जरूरत इस बात की है कि मातृभाषा में शिक्षण देने की राह में अभी भी जो बाधाएं हैं, उसके निराकरण का प्रयास तत्काल किया जाना चाहिए। विशेषकर मातृभाषा में पुस्तकों की सर्व सुलभता और उसे पढ़ाने वाले शिक्षकों की अनिवार्य नियुक्ति। पाठ्य पुस्तकों में स्थानीय समाज, जीवन और संस्कृति को प्रतिबिंबित करने वाले विषयों का पूरी तरह से समावेश। अभी हो यह रहा है कि मातृभाषा में पुस्तकों को तैयार करने का अर्थ सिर्फ अब तक काम में ली जा रही पुस्तकों का अनुवाद करना ही रहा है। जबकि चाहे वह एनसीआरटी की पुस्तकें हों या फिर 'एकलव्य' जैसी संस्था की पुस्तकें, ये मुख्यतः मुख्यधारा के समाज के लोगों के द्वारा बनायी गई हैं। इनमें स्थानीय समाज, विशेषकर आदिवासी समुदाय के जन-जीवन, उनके इतिहास, संस्कृति और ज्ञान परंपरा का समावेश इनमें नहीं हो सका है। इसलिए स्थानीय समुदाय की अपेक्षाओं को पूरा करने वाली पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का दायित्व प्रमुख है और इस दायित्व को गंभीरता के साथ संपन्न करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

बीसवीं शताब्दी के उत्तारार्ध में भारत के साथ ही अनेक देश स्वतंत्र हुए थे तथा इनमें से अनेक ने अभूतपूर्व प्रगति की। जिस भी देश ने अपनी भाषा को महत्व दिया वह अंग्रेजी के कारण पीछे नहीं रहा। रूस, चीन और जापान जैसे देशों की वैज्ञानिक प्रगति अंग्रेजी भाषा पर निर्भर नहीं रही। गणतंत्र भारत की शिक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाने की चुनौतियों के संदर्भ में अब तक गठित सभी शिक्षा आयोगों ने एक स्वर से मातृभाषा में अध्ययन-अध्यापन के महत्व को स्वीकार करते हुए इसके पक्ष में अपनी अनुशंसाएं दी, लेकिन हमारा देश अभी भी मातृभाषाओं की शक्ति का उपयोग कर पाने में असमर्थ सिद्ध हुआ है।

शिक्षा के संदर्भ मे साक्षरता न केवल किसी भाषा पर आधारित होती है वरन उस भाषा पर आधारित होती है जिसमें व्यक्ति सहज और स्वाभाविक रूप से बोलने की योग्यता रखता है। भाषा, व्यक्ति और समाज तीनों आपस में इस तरह से संबद्ध हैं कि इन्हें अलग-अलग कर के नहीं देखा जा सकता। किसी भी बच्चे अथवा प्रौढ़ की सीखने की क्षमता उसकी अपनी मातृभाषा में सबसे तेज होती है। पर साक्षरता अभियानों एवं अन्य सभी शैक्षिक कार्यक्रमों में नीतिगत निर्णय के बावजूद और एक प्रमुख कार्यक्रम तत्व या गतिविधि मान लेने के बाद भी मातृभाषाओं को पूर्णरूपेन स्वीकार नहीं किया गया। यही नहीं मातृभाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन पर भी ध्यान नहीं दिया गया। दरअसल, मातृभाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता का सवाल मुख्यतः उन सरकारी नीतियों और भारत सरकार के भेदभावपूर्ण भाषाई व्यवहार से सीधा संबंध रखता है, जिसकी वजह से देश की अधिकांश मातृभाषाएं हाशिए पर हैं और अपने अस्तितव के लिए संघर्ष कर रही हैं। आजादी के बाद जब भाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो उन भाषाओं को तो फूलने-फलने का पूरा अवसर मिला, जो अपने-अपने प्रांत में राजभाषा बन गईं। परंतु देश की अधिकांश जन-भाषाएं जिन्हें न तो संविधान की आठवीं अनुसूची में और न ही गैर-अनुसूचित भाषाओं की सूची में शामिल किया गया, वे लगातार पिछड़ती चली गईं।

जहां तक झारखंड के आदिवासी भाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता की बात है तो राज्य की लगभग सभी भाषाओं में और विविध भाषाओं में पुस्तकों का प्रकाशन बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से हो रहा है। यहां की आदिवासी एवं क्षेत्रीय

भाषाओं में लगभग हर विषय पर पुस्तकें छपी हैं और राज्य बनने के बाद इनके प्रकाशन में उत्साहजनक वृद्धि हुई है। आदिवासी एवं क्षेत्रीय समुदायों से कई लोग प्रकाशन जगत में भी आ चुके हैं और प्रतिवर्ष नित नई पुस्तकें छप रही हैं। यही नहीं लगभग सभी भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन निरंतर किया जा रहा है।

भारत की तमाम स्थानीय भाषाएं व बोलियां अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव के कारण संकटग्रस्त हैं। व्यावसायिक, प्रशासनिक, चिकित्सा, अभियांत्रिकी व प्रौद्योगिकी की आधिकारिक भाषा बन जाने के कारण अंग्रेजी रोजगारमूलक शिक्षा का प्रमुख आधार बना दी गई है। इन कारणों से उतरोत्तर नई पीढ़ी मातृभाषा के मोह से मुक्त होकर अंग्रेजी अपनाने को विवश है। प्रतिस्पर्धा के दौर में मातृभाषा को लेकर युवाओं में हीन भावना भी पनप रही हैं। इसलिए जब तक भाषा संबंधी नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन नहीं होता तब तक भाषाओं की विलुप्ति पर अंकुश लगाना मुश्किल है। भाषाओं को बचाने के लिए समय की मांग है कि क्षेत्र विशेषों में स्थानीय भाषा के जानकारों को ही निगमों, निकायों, पंचायतों, बैंकों और अन्य सरकारी दफ्तरों में रोजगार दिए जाएं। इससे अंग्रेजी के फैलते वर्चस्व को चुनौती मिलेगी और ये लोग अपनी भाषाओं व बोलियों का सरंक्षण तो करेंगे ही उन्हें रोजगार का आधार बनाकर गरिमा भी प्रदान करेंगे।

मातृभाषाओं के प्रयोग और उसकी प्रभावशीलता की दृष्टि से खड़िया आदिवासी बहुल सिमडेगा जिला में राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 2003-2004 में की गयी। तब से आज तक इसके अपेक्षित परिणाम हासिल हुए हैं। सभी सुविधावंचित बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ने तथा छीजत दर को रोकने के इस अभिनव प्रयास में हालांकि अभी तक पूर्ण सफलता नहीं मिली है, परंतु सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शुरू किये गये इस कार्यक्रम से अत्यंत उत्साहजनक परिणाम सामने आए हैं।

राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के वर्ष 2008-09 की रिपोर्ट में कहा गया है कि झारखंड राज्य में इस कार्यक्रम के तहत कुल 2975 मॉडल कलस्टर विद्यालयों की स्थापना की गई जिसके द्वारा शत-प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त किया गया। इन सभी विद्यालयों में 3818 छात्राओं ने दाखिला लिया। राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के रेमेडियल शिक्षा और ब्रिज कोर्स में 38189 बालिकाओं को नामाकित करने में सफलता हासिल हुई। 1684 बालिकाओं को ओपन स्कूल के तहत शिक्षा से जोड़ा गया। 2975 मॉडल कलस्टर स्कूलों में स्कूल और स्कूल के बाहर की

24679 बालिकाओं ने व्यावसायिक शिक्षा पाई।

राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के हस्तक्षेप के कारण न सिर्फ जिले की अधिकांश बालिकाओं को शिक्षा से जुड़ने के लिए प्रेरित किया गया बल्कि शिक्षा से वंचित रह गई बालिकाओं को भी व्यवसायिक एवं अन्य गतिविधियों से जोड़ने में सफलता मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि नियमित विद्यालयों में छीजन के दर में कमी आई और हजारों बालिकाएं सतत शिक्षा से जुड़ी। इस उपलब्धि को प्राप्त करने में मातृभाषाओं के प्रयोग का योगदान असंदिग्ध है।

संदर्भ एवं स्रोत :

1. कुमार कृष्ण, शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, पृष्ठ 106
2. राष्ट्रीय अनुवाद मिशन की वेबसाइट से
3. जॉन डिवी, शिक्षा का लोकतंत्र, पृष्ठ-146
4. झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा, अंक-2, जून 2003
5. वंदना टेटे, मर रही हैं झारखंडी भाषाएं, झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा
6. उपरोक्त
7. तलवार वीरभारत, आदिवासियों के बीच : एक एक्टिविस्ट के नोट्स, पृष्ठ-239
8. सर्व शिक्षा अभियान, सिमडेगा से प्राप्त
9. झारखंड शिक्षा परियोजना से प्राप्त
10. झारखंड शिक्षा परियोजना से प्राप्त
11. उपरोक्त
12. उपरोक्त
13. सर्व शिक्षा अभियान, सिमडेगा से प्राप्त
14. उपरोक्त
15. जिला शिक्षा अधीक्षक, सिमडेगा से प्राप्त
16. झारखंड शिक्षा परियोजना से प्राप्त
17. उपरोक्त

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible]
4. [illegible]
5. [illegible]
6. [illegible]
7. [illegible]
8. [illegible]
9. [illegible]
10. [illegible]
11. [illegible]
12. [illegible]
13. [illegible]
14. [illegible]
15. [illegible]
16. [illegible]
17. [illegible]

अष्टम अध्याय

उपसंहार

अष्टम अध्याय

उपसंहार

साक्षरता की दृष्टि से भारत निरंतर प्रगति कर रहा है और आंकड़े संतोषजनक तस्वीर पेश करते हैं। 2001 की जनगणना में महिला साक्षरता दर में 14.38 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई थी और वह 53.67 प्रतिशत के स्तर पर पंहुच गई थी। देश में स्त्री-पुरुष के बीच जो साक्षरता का अंतर वर्ष 1951 में 24.84 प्रतिशत था वह घटकर वर्ष 2001 में 21.59 प्रतिशत रह गया है। लेकिन अभी भी एक बड़ी आबादी निरक्षर है और करोड़ों बच्चे स्कूल से बाहर हैं।

प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता अभियानों के बाद शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लक्ष्य को पूरा करने के लिए वर्ष 2000 में एक नया कार्यक्रम शुरू किया गया - सर्व शिक्षा अभियान। यह कार्यक्रम केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से कार्यान्वित किया जा रहा है और इसका उद्देश्य उत्तम शिक्षा उपलब्ध कराने पर विशिष्ट बल देते हुए सामुदायिक स्वामित्व के दृष्टिकोण के माध्यम से स्कूल प्रणाली के निष्पादन में सुधार लाना है। यह कार्यक्रम प्रारंभिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लक्ष्य की पूर्ति सुनिश्चित करने तथा 2015 तक लैंगिक और सामाजिक अंतरालों को पाटने के लिए एक समयबृद्ध कार्यक्रम है।

हमारे देश की कुल अशिक्षित आबादी में महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या है। महिलाओं को शिक्षा देने तथा बालिका शिक्षा की दिशा में कई कदम उठाए गए। महिला प्रौढ़ शिक्षा और युवतियों की शिक्षा के लिए भी देश में कई कार्यक्रम चलाये गए। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने महिला साक्षरता पर विशेष जोर दिया है जिसके सकारात्मक नतीजे आए हैं। बालिकाओं के लिए राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम इस समय पूरे देश में चलाया जा रहा है और इसके अन्तर्गत 31 हजार आदर्श विद्यालय विकसित किए गए और दो लाख अध्यापकों को लैंगिक संवेदनशीलता में भी प्रशिक्षित किया गया।

सरकार ने भारत के नागरिकों से यह वायदा किया था कि संविधान के अनुच्छेद 45 के तहत एक घोषणा द्वारा राज्य संविधान के शुरू होने के दस साल की अवधि में सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु पूरी होने तक मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। पर यह घोषणा लंबे समय तक कागजों में दबी रही। अब

जाकर 2009 में भारत सरकार ने 'शिक्षा का अधिकार' विधेयक पारित करते हुए इस वायदे को पूरा किया है, पर इसे जमीन पर उतारने का काम कब तक पूर्णरूपेण साकार होगा कहना मुश्किल है।

6 से 14 आयु वर्ग के 35.1 लाख आदिवासी बच्चों में 54 प्रतिशत अभी भी स्कूलों से बाहर हैं। इस आयु वर्ग में 18.9 लाख बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं और आदिवासी समुदाय में बालिका शिक्षा की स्थिति काफी बुरी है। स्कूलों से बाहर निकलते बच्चों की संख्या के अनुपात में स्कूलों में दर्ज न होने वाले बच्चों से ज्यादा है। इससे यह पता चलता है कि बच्चों के नाम स्कूलों में दर्ज तो हो जा रहे थे पर वे काफी जल्दी उससे बारि भी हो जा रहे हैं। स्कूलों से बाहर हो रहे बच्चों में भी लड़कियों की संख्या 60 प्रतिशत है वहीं लड़कों की दर भी बहुत अधिक हे।

आदिवासी समुदाय में शिक्षा की स्थिति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कुल आबादी का 10 प्रतिशत से भी कम प्राथमिक से आगे की पढ़ाई कर पाए हैं। इसलिए आदिवासी समुदाय की शिक्षा संपूर्ण नागरिक समाज के लिए एक चुनौती का प्रश्नम है। आदिवासी समुदाय में शिक्षा के स्तर को बढ़ाना एवं इसे सुनिश्चित करना एक ऐसी चुनौती है जिसका समाधान हमें समग्रता में ढूंढना होगा, इसके लिए जरूरी है कि पहले हम उन समस्याओं को सुलझाएं जिनके कारण आदिवासी बच्चों का स्कूलों में ठहराव नहीं हो पा रहा है, उनका नामांकन नहीं हो पा रहा, शाला से बाहर होने की दर, खासकर लड़कियों में लगातार बढ़ती जा रही है। बच्चे घरों में, होटलों या ढाबों पर या खेतों के काम कर रहे हैं। कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका हल हमें समस्या की जड़ तक ले जाएगा। इससे निपटने के लिए समाज, राज्य, प्रशासन एवं अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों या संस्थाओं को सघन प्रयास करने होंगे। हमें समस्या का स्वरूप एवं आदिवासी समुदाय जो पहले से ही विकास के इस दौड़ में सीमान्त है, पर इसके असर को समझना होगा। अब, शिक्षा का अधिकार कानून राज्य में क्रियान्वित हो रहा है। आदिवासी समुदाय पर इसके प्रभाव एवं समुदाय में शिक्षा के स्तर में आए बदलाव को देखना होगा। यह कानून आदिवासी बच्चों के शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने में किस प्रकार मदद करता है। यह अपने आप में एक चुनौती भरा प्रश्नं होगा। कानून में 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों का स्कूलों में नामांकन सुनिश्चित कराने की बात करता है। पर क्या यह कानून ऐसा बातावरण पैदा कर सकेगा जिसमें स्कूलों के अंदर छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयाँ दूर हो सकें और सभी परिवार बिना किसी भय व संकोच के अपने घर की लड़कियों को स्कूल भेज सकें। आदिवासी इलाकों में चल रहे स्कूलों में अधोसंरचना एवं

संसाधनों की कमी है। अधिकतर विद्यालययों में मात्र एक पूर्णकालिक योग्य शिक्षक है। अन्य सुविधायें जैसे पृथक शौचालय, चार दीवारी, कक्षा भवन आदि की कमी है। ये तो अधोसंरचनात्मक कमियां हैं लेकिन हम उन कमियों का क्या करें जो आदिवासी शिक्षा के लिए राज्य के खर्चे में आ गई है। इन स्कूलों में जिन शिक्षकों की नियुक्ति की जाती है वे आदिवासी बच्चों के साथ दोहरा व्यवहार करते हैं। वे इन बच्चों से स्कूल की सफाई आदि का काम कराते हैं। चूंकि आदिवासी समुदाय दूर-दराज इलाकों में रहता है, इस वजह से समुदाय की स्कूलों तक पहुंच भी एक बड़ी समस्या है और एक बड़ा तबका स्कूलों से दूर है।

इन स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मानक भाषा है। जबकि आदिवासी समुदाय की अपनी एक अलग बोली है। और बच्चे स्कूलों में जाते हैं जहां उन्हें एक अनजान भाषा में पढ़ाया जाता है। स्कूलों में सारे शिक्षक ऐसे होते हैं जिनका प्रशिक्षण मानक भाषा में हुआ होता है और वे बच्चों को भी उसी भाषा में पढ़ाते हैं जो कि उनके लिए समझने में मुश्किल होता है। स्कूलों में जों पाठयक्रम पढ़ाया जाता है उसमें भी इनकी संस्कृति, रहन-सहन आदि का कोई विवरण नहीं होता है जो कि इन बच्चों के शाला से बाहर होने के कारणों में से एक है।

1771 से लेकर 1947 तक झारखंड के आदिवासी विद्रोहों की एक सुदीर्घ परंपरा है। जल, जंगल और जमीन पर अपने हक को बरकरार रखने तथा स्वतंत्रता के लिए इतिहास में विभिन्न समय में ये विद्रोह हुए और आदिवासियों ने कभी भी गुलामी नहीं स्वीकार की। आजादी के बाद उन्होंने उम्मीद की थी कि लोकतांत्रिक सरकार उन्हें उन औपनिवेशिक अत्याचारों से मुक्त कराते हुए स्वतंत्रता के पूर्ण उपभोग का अवसर प्रदान करेगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जल्द ही आदिवासियों को अनुभव हुआ कि 'गोरे' मालिकों की जगह सिर्फ 'काले' शासक आ गए है और उनकी स्थितियों में कोई परिवर्तन की आशा नहीं है। इस विक्षोभ ने पुनः नये सिरे से संगठित होना शुरू किया जिसकी परिणति झारखंड आंदोलन के रूप में हम देखते हैं।

झारखंड आंदोलन के लंबे कालखंड में जो विद्रोह और आंदोलन हुए, उनके दो सिरे थे। एक सिरा जंगल-जमीन जैसे जीवन यापन के मुद्दों की वजह से परंपरागत संसाधनों पर आदिवासी अधिकार और नेतृत्व से जुड़ा था और दूसरा सिरा सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों की वजह से आजादी के आंदोलन का हिस्सा बना।

हालांकि आजादी के पूर्व ही 1900 के आसपास नीतिगत रूप से झारखंड में शिक्षा की शुरुआत अंग्रेजी राज ने ही की। आजादी के बाद केन्द्र और राज्य

सरकार के द्वारा अनेक शैक्षिक कार्यक्रमों की रचना की गई। झारखंड को अविभाजित बिहार में जनजाति उपयोजना क्षेत्र का विशेष दर्जा देते हुए अनेक शैक्षिक गतिविधियों को संचालित किया गया। पर इन गतिविधियों का शत-प्रतिशत लाभ यहां के आदिवासी समुदायों को कभी नहीं मिल पाया।

आदिवासी मातृभाषाओं- मुण्डारी, हो, संताली, खड़िया और कुड़ुख भाषाओं में पढ़ाई की मांग को बिहार में सर्दव लंबित रखा गया। 1953 से ही बिहार सरकार ने संविधान की 5वीं अनुसूची के अनुसार विभिन्न शासकीय आदेशों के द्वारा मातृभाषाओं में शिक्षा प्रदान करने तथा पाठ्य पुस्तकों के निर्माण, छपाई एवं उनके वितरण का संकल्प दोहराती रही। लेकिन अपने तमाम संकल्पों और आदेशों को उसने कभी नहीं लागू किया। 1996 में सरकारी खर्च से बिहार टेक्सट बुक कॉरपोरेशन की ओर से विभिन्न आदिवासी भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं की पुस्तकें छापी भी गईं, लेकिन उनका वितरण नहीं किया गया। न ही ही भाषाई शिक्षकों की नियुक्ति की गई।

राज्य में सबको शिक्षा देने के लिए सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत 2001-02 में हुई और इस अभियान में झारखंड के सभी जिले शामिल हैं। यह भारत सरकार की योजना है। इस अभियान के तहत 2010 तक सभी को शिक्षा देने का लक्ष्य तय किया गया था। उल्लेखनीय है कि सर्व शिक्षा अभियान राज्य में विलंब से लागू किया गया। इसके लिए राज्य सरकार को केंद्र की चेतावनी भी मिली। सरकार ने झारखंड ग्राम शिक्षा अभियान की शुरुआत की। नामकुम प्रखंड की कोनजारी गांव में इसका ऑनलाइन उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने किया था। बाद में इसे सर्व शिक्षा अभियान में शामिल कर लिया गया। अभियान के पहले वित्तीय वर्ष में प्राप्त 187.46 करोड़ 35 हजार में 111.27 करोड़ 95 हजार 700 रूपये ही खर्च किया जा सका।

राज्य में साक्षरता एवं महिला व बालिका शिक्षा के तमाम कार्यक्रमों और अभियानों के बावजूद स्थिति खराब बनी हुई है और लगभग 60 प्रतिशत बालिकाएं अभी भी शिक्षा से वंचित हैं। इस वंचना के मूल कारणों की पहचान जब तक नहीं की जाएगी और उसके हल की दिशा में ईमानदार प्रयास नहीं होंगे बालिका शिक्षा के लक्ष्य को पाना झारखंड के लिए हमेशा असंभव बना रहेगा। क्योंकि झारखण्ड के आदिवासी समाज में लड़की के पैदा होने पर मातम नहीं छाता, न भ्रूण हत्या की समस्या है। महिलाओं की जन आन्दोलनों में ऐतिहासिक भागीदारी रही है और आज भी ग्रामीण महिलायें जागरूकता के कार्यक्रमों में हिस्सा लेती हैं। मगर आश्चर्य

होता है कि इसी समाज में लड़की को शिक्षित होने से रोकने वाली अनेक शक्तियाँ, प्रवृत्तियाँ व मजबूरियाँ मौजूद हैं। आदिवासी समाज में महिलाओं को जो स्थान प्राप्त है उसे देखते हुए किसी को भी लग सकता है कि यहाँ महिलायें शत-प्रतिशत साक्षर होंगी। मगर सत्य यह है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी झारखंड की महिला आबादी संपूर्ण रूप से साक्षर नहीं है। बड़ी संख्या में आदिवासी बालिकाएं शिक्षा से जुड़ने की बजाय पलायन और अन्य कई तरह के शोषण का शिकार हो रही हैं।

झारखंड राज्य के दक्षिणी छोर पर घने जंगलों और पहाड़ियों से घिरा सिमडेगा अपने अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य और यहां के मुख्य आदिवासी समुदाय खड़िया, जो कि एक शांतिप्रिय खेतीहर समुदाय है के नैसर्गिक बसाहट के कारण विशिष्ट पहचान रखता है। शंख नदी के किनारे बसा यह जिला राज्य बनने के बाद 30 अप्रैल 2001 को गठित हुआ है। पहले यह गुमला जिले का हिस्सा था। इस नये जिले का गठन कुल 7 प्रखंडों को लेकर किया था था, परंतु बाद में 3 और नये प्रखंड सृजित होने से अब इसके कुल प्रखंडों की संख्या 10 हो गई है। ये प्रखंड हैं - सिमडेगा, कुरडेग, बोलबा, ठेठईटांगर, कोलेबिरा, बानो, जलडेगा, पाकरटांड़, बांसजोर एवं केरसई।

2011 की जनगणना के अनुसार सिमडेगा जिले की कुल जनसंख्या 599,813 है जो राज्य की कुल आबादी में 1.82 प्रतिशत का योगदान करता है। इसके अनुसार सिमडेगा जिला में पुरुषों की जनसंख्या 299,905 है जबकि महिलाओं की कुल आबादी 299,908 है। 2001 की जनसंख्या (514,320) के मुकाबले 2011 में यहां की जनसंख्या में 16.62 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। वर्तमान में यहां जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किमी 160 है जो कि 2001 में 137 थी। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले में महिला और पुरुषों का अनुपात बराबर है। 2001 में यह अनुपात प्रति हजार पुरुष पर 1001 महिला का था। 0-6 आयु वर्ग में प्रति 1000 लड़कों पर 975 लड़कियां हैं, जो पुरुषों के मुकाबले घटते अनुपात को दर्शाता है। वैसे जिले में 0-6 आयु के बच्चों की कुल जनसंख्या 91,297 है जो कुल जनसंख्या का 15.22 प्रतिशत होता है। इसमें लड़कों की 46230 और लड़कियों की कुल जनसंख्या 45067 है।

यहाँ 72.45 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जनजातियों अर्थात् आदिवासियों की है जो झारखंड में किसी भी जिले से ज्यादा है। जिले में दलित आबादी 7.99 प्रतिशत है। 0-6 आयु को छोड़कर जिले में साक्षरता दर 67.59 प्रतिशत (343737) है। इसमें पुरुष साक्षरता दर 75.84 प्रतिशत (192394) और महिला साक्षरता दर

59.38 प्रतिशत (151333) है। साक्षरता के तमाम प्रयासों के बाद भी अभी तक जिले में 343,706 लोग निरक्षर हैं।

खड़िया आदिवासी समुदाय के साथ-साथ उरांव व मुंडा आदिवासियों के अतिरिक्त कुछ दूसरी सदान और आदिवासी जातियाँ तुरी, चीक बड़ाईक, लोहरा, कुम्हार, घाँसी, गोंड, भोगता आदि भी यहां बसी हुई हैं। जिले में निवास करने वाले सभी समुदायों का सामाजिक-आर्थिक जीवन पूरी तरह से कृषि एवं जंगल पर आध ाारित है। सिमडेगा की संस्कृति झारखंड राज्य के अन्य इलाके की तरह ही आदिवासी-सदान संस्कृति है। खड़िया, उरांव, मुंडा जहां परंपरागत आदिवासी संस्कृति के साथ-साथ ईसाई धर्मावलंबी हैं, वहीं सदान जातियां हिंदू संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। बहुत कम संख्या में वर्तमान में मुस्लिम समुदाय हैं जो इस्लाम संस्कृति एवं धर्म को मानते हैं। भाषा की दृष्टि से यहां खड़िया लोग खड़िया, मुंडा लोग मुंडारी और उरांव लोग कुड़ुख बोलते हैं। सदान वर्ग के सदस्यों के बीच नागपुरी या सादरी का प्रचलन है।

सिमडेगा इलाके में सन 1902 ई. के आस-पास मिशनरी लुकीश ने शंख नदी के किनारे कोरोंजो गांव में लुथेरान मिशन स्टेशन खड़ा किया। इसी के साथ यहां एक माध्यमिक विद्यालय की भी स्थापना मिशनरियों ने की। आगे चलकर कोंडरा, टकरमा, किंकेल और खूंटीटोली में चर्च के साथ स्कूलों की स्थापना हुई। 1909 में रेंगारी में भी मिशनरियों ने विद्यालय खोला।

शैक्षणिक विकास के संदर्भ में सिमडेगा-गुमला-खूंटी क्षेत्र में खड़िया समुदाय के प्यारा केरकेट्टा का योगदान उल्लेखनीय है। 1929 ई. में उन्होंने एक अध्यापक के रूप में अपनी शैक्षिक यात्रा शुरू की जो गांधी, ठक्कर बापा और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सम्पर्क में आने के बाद निरंतर परवान चढ़ती चली गई। 1947 ई. में उन्होंने मिशन स्कूल की सेवा छोड़ दी और आदिम जाति सेवक संघ के सदस्य बन कर सिमडेगा आ गए। इसके बाद तो उन्होंने सिमडेगा में प्राइमरी स्कूलों का जाल-सा बिछा दिया। आदिम जाति सेवा मंडल के अंतर्गत सिमडेगा-गुमला इलाके में उन्होंने इतने स्कूल खोले, जितने शायद सरकारी प्रयास से अभी भी नहीं खुले हैं।

वर्तमान में सिमडेगा में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 540 एवं वित्त रहित पोषित विद्यालयों की संख्या 159 है। जबकि सरकारी माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 313 और वित्त रहित अल्पसंख्यक माध्यमिक स्कूलों की संख्या 51 है। 2011 की जनगणना के अनुसार सिमडेगा जिला में महिला साक्षरता दर 59.

38 प्रतिशत है। 6 वर्ष तक के आयु के बच्चों की कुल संख्या 91297 है जो कि जिले की कुल आबादी का 15.22 प्रतिशत होता है। इसमें बालिकाओं की संख्या 45067 है।

सिमडेगा जिला में अभी तक सिर्फ एक ही राजकीयकृत बालिका उच्च विद्यालय है। इसके अलावा सिमडेगा, ठेठईटांगर, कुरडेग, बोलबा, कोलेबिरा, बानो और जलडेगा प्रखंडों में एक-एक सरकारी प्राथमिक या मध्य विद्यालय हैं। जबकि संपूर्ण जिले में सभी स्तरों पर संचालित अल्पसंख्यक बालिका विद्यालयों की कुल संख्या 12 है।

जिले में बालिका शिक्षा की स्थिति कितनी खराब है, यह इसी बात से पता चलता है कि प्राथमिक से ले कर उच्च शिक्षा तक में वर्ष 2008-09 तक मात्र 49.32 बालिकाएं ही अध्ययनरत थीं। इस चिंताजनक हालात से निपटने के लिए सन् 2003 में संपूर्ण झारखंड में राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत हुई और सिमडेगा जिले में बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए हस्तक्षेप किया गया।

शिक्षा के संदर्भ मे साक्षरता न केवल किसी भाषा पर आधारित होती है वरन उस भाषा पर आधारित होती है जिसमें व्यक्ति सहज और स्वाभाविक रूप से बोलने की योग्यता रखता है। भाषा, व्यक्ति और समाज तीनों आपस में इस तरह से संबद्ध हैं कि इन्हें अलग-अलग कर के नहीं देखा जा सकता। किसी भी बच्चे अथवा प्रौढ़ की सीखने की क्षमता उसकी अपनी मातृभाषा में सबसे तेज होती है। पर साक्षरता अभियानों एवं अन्य सभी शैक्षिक कार्यक्रमों में नीतिगत निर्णय के बावजूद और एक प्रमुख कार्यक्रम तत्व या गतिविधि मान लेने के बाद भी मातृभाषाओं को पूर्णरूपेन स्वीकार नहीं किया गया। यही नहीं मातृभाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन पर भी ध्यान नहीं दिया गया। दरअसल, मातृभाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता का सवाल मुख्यतः उन सरकारी नीतियों और भारत सरकार के भेदभावपूर्ण भाषाई व्यवहार से सीधा संबंध रखता है, जिसकी वजह से देश की अधिकांश मातृभाषाएं हाशिए पर हैं और अपने अस्तितव के लिए संघर्ष कर रही हैं। आजादी के बाद जब भाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो उन भाषाओं को तो फूलने-फलने का पूरा अवसर मिला, जो अपने-अपने प्रांत में राजभाषा बन गईं। परंतु देश की अधिकांश जन-भाषाएं जिन्हें न तो संविधान की आठवीं अनुसूची में और न ही गैर-अनुसूचित भाषाओं की सूची में शामिल किया गया, वे लगातार पिछड़ती चली गईं।

जहां तक झारखंड की आदिवासी भाषाओं में पुस्तकों की उपलब्धता की बात है तो राज्य की लगभग सभी भाषाओं में और विविध भाषाओं में पुस्तकों का प्रकाशन बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से हो रहा है। यहां की आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में लगभग हर विषय पर पुस्तकें छपी हैं और राज्य बनने के बाद इनके प्रकाशन में उत्साहजनक वृद्धि हुई है। आदिवासी एवं क्षेत्रीय समुदायों से कई लोग प्रकाशन जगत में भी आ चुके हैं और प्रतिवर्ष नित नई पुस्तकें छप रही हैं। यही नहीं लगभग सभी भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन निरंतर किया जा रहा है।

भारत की तमाम स्थानीय भाषाएं व बोलियां अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव के कारण संकटग्रस्त हैं। व्यावसायिक, प्रशासनिक, चिकित्सा, अभियांत्रिकी व प्रौद्योगिकी की आधिकारिक भाषा बन जाने के कारण अंग्रेजी रोजगारमूलक शिक्षा का प्रमुख आधार बना दी गई है। इन कारणों से उत्तरोत्तर नई पीढ़ी मातृभाषा के मोह से मुक्त होकर अंग्रेजी अपनाने को विवश है। प्रतिस्पर्धा के दौर में मातृभाषा को लेकर युवाओं में हीन भावना भी पनप रही हैं। इसलिए जब तक भाषा संबंधी नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन नहीं होता तब तक भाषाओं की विलुप्ति पर अंकुश लगाना मुश्किल है। भाषाओं को बचाने के लिए समय क़ी मांग है कि क्षेत्र विशेषों में स्थानीय भाषा के जानकारों को ही निगमों, निकायों, पंचायतों, बैंकों और अन्य सरकारी दफ्तरों में रोजगार दिए जाएं। इससे अंग्रेजी के फैलते वर्चस्व को चुनौती मिलेगी और ये लोग अपनी भाषाओं व बोलियों का सरंक्षण तो करेंगे ही उन्हें रोजगार का आधार बनाकर गरिमा भी प्रदान करेंगे।

मातृभाषाओं के प्रयोग और उसकी प्रभावशीलता की दृष्टि से खड़िया आदिवासी बहुल सिमडेगा जिला में राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरूआत वर्ष 2003-2004 में की गयी। तब से आज तक इसके अपेक्षित परिणाम हासिल हुए हैं। सभी सुविधावंचित बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ने तथा छीजत दर को रोकने के इस अभिनव प्रयास में हालांकि अभी तक पूर्ण सफलता नहीं मिली है, परंतु सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शुरू किये गये इस कार्यक्रम से अत्यंत उत्साहजनक परिणाम सामने आए हैं।

राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के वर्ष 2008-09 की रिपोर्ट में कहा गया है कि झारखंड राज्य में इस कार्यक्रम के तहत कुल 2975 मॉडल कलस्टर विद्यालयों की स्थापना की गई जिसके द्वारा शत-प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त किया गया। इन सभी विद्यालयों में 3818 छात्राओं ने दाखिला लिया। राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक

शिक्षा कार्यक्रम के रेमेडियल शिक्षा और ब्रिज कोर्स में 38189 बालिकाओं को नामाकित करने में सफलता हासिल हुई। 1684 बालिकाओं को ओपन स्कूल के तहत शिक्षा से जोड़ा गया। 2975 मॉडल कलस्टर स्कूलों में स्कूल और स्कूल के बाहर की 24679 बालिकाओं ने व्यावसायिक शिक्षा पाई।

राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम के हस्तक्षेप के कारण न सिर्फ जिले की अधिकांश बालिकाओं को शिक्षा से जुड़ने के लिए प्रेरित किया गया बल्कि शिक्षा से वंचित रह गई बालिकाओं को भी व्यवसायिक एवं अन्य गतिविधियों से जोड़ने में सफलता मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि नियमित विद्यालयों में छीजन के दर में कमी आई और हजारों बालिकाएं सतत शिक्षा से जुड़ीं। इस उपलब्धि को प्राप्त करने में मातृभाषाओं के प्रयोग का योगदान महत्वपूर्ण है।

फिर भी अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बालिका शिक्षा की दृष्टि से सिमडेगा अभी भी बहुत पिछड़ा हुआ है। इस पिछड़ेपन के कारण जल, जंगल और जमीन से उनका तेजी से टूटता रिश्ता प्रमुख कारण है। आजीविका के परंपरागत संसाधनों से लगतार वंचित किये जाने के चलते पलायन में, विशेषकर बालिका पलायन में बेतहाशा वृद्धि हुइ है। यह वृद्धि लगातार बढ़ रही है।

शिक्षा की कमी के कारण राष्ट्रीय हॉकी के क्षेत्र में यहां से जो भागीदारी होती थी उसमें भी गिरावट देखने को आ रही है। शिक्षा की मौजूदा प्रणाली में खेलों का समावेश नहीं होना इसके लिए एक जिम्मेदार कारण है। खेल आदिवासी समाज का एक प्रमुख अंग रहा है और खेलों के द्वारा शिक्षा देने की परंपराएं भी रही हैं। लेकिन आधुनिक शिक्षा में खेलों को अतिरिक्त गतिविधि के रूप में शामिल किया जाता है जिससे आदिवासी क्षेत्र के बच्चों के लिए शिक्षा एक अरूचिकर सीखने की प्रक्रिया बन जाती है। यदि सिमडेगा जैसे आदिवासी जिले में हॉकी, फुटबॉल आदि खेलों को शिक्षा के जरूरी तत्व के रूप में शामिल किया जाए तो इसके बहुत अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं। शिक्षा के प्रति बच्चों की रूचि तो बढ़ेगी ही हॉकी, फुटबाल जैसे खेलों में अनेक प्रतिभाएं सामने आएंगे और खेल के माध्यम से भी लोग आजीविका पा सकेंगे। इससे पलायन पर रोक लगाने में मदद मिल सकती है।

मातृभाषाएं अपने परिवेश और संस्कृति की वाहक होती है। मातृभाषाओं में शिक्षा का अर्थ सिर्फ साक्षरता को लोकप्रिय बनाना नहीं है। परिवेश और संस्कृति से कटी भाषा लोकप्रिय भी नहीं हो सकती है। इसलिए जरूरी है कि मातृभाषा में शिक्षा की परिकल्पना को आदिवासी परिवेश और संस्कृति के अनुकूल बनाया जाए। ऐसा तभी हो सकेगा जब जल, जंगल, जमीन, कृषि, खेल और दैनिक जीवन

के व्यवहारों से शिक्षा को जोड़ा जाए। मातृभाषा में शिक्षा का यही सही और व्यावहारिक अर्थ है। सिमडेगा और झारखंड के अन्य आदिवासी जिलों में इसी प्रकार की शिक्षा से आदिवासियों के आर्थिक-सामाजिक पिछड़ेपन को दूर करते हुए उन्हें विकास के रास्ते पर ले जाया जा सकता है।

सहायक ग्रंथ सूची

क्रम	लेखक	पुस्तक	प्रकाशक/वर्ष
1.	अनुराग, फैसल/शेखर	शिक्षाः मुक्ति विमर्श	संवाद प्रकाशन, कृष्ण भवन, लालपुर, रांची, 2005
2.	अरीपराम्पिल, मैथ्यू (अनु. होरो वा. का एवं शास्त्री सीताराम)	अबुवः राज, स्वराज के लिए झारखंडियों का संघर्ष	ट्राइबल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग सेंटर, चाईबासा, 2000
3.	इंपीरियल गजैटियर ऑफ इंडिया	वोल्यूम 4	1981
4.	कुमार, डॉ. कृष्ण	राज, समाज और शिक्षा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
5.	तदैव	गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद	ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, दिल्ली
6.	तदैव	शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व	ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, दिल्ली
7.	कंडुलना, जोसेफ	छोटानागपुर के आदिवासी	छोटानागपुर मुंडा संसकिर संगोम समइति, लचड़ागढ़, गुमला, 1994
8.	केरकेट्टा, रोज	खड़िया लोक कथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन	प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन चेशायर होम रोड, बरियातु, रांची-9, द्वि. सं. 2008
9.	तदैव	प्यारा मास्टर	प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन चेशायर होम रोड, रांची-9
10.	केशरी, डॉ. वि. प्र.	छोटानागपुर का इतिहास कुछ सूत्र, कुछ संदर्भ	विलियम केरी स्टडी ऐंड रिसर्च सेंटर, सिरामपुर, कोलकाता, 1979
11.	तदैव	झारखंडी भाषाओं की समस्याएं और संभावनाएं	ज्योति, रांची, 1992
12.	क्लूवेव, बोरिस	स्वतंत्र भारत : जातीय और भाषायी समस्या	प्रगति प्रकाशन, मास्को 1986
43.	गार्डन, डी. एच.	भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि	हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 1992
14.	गांधी, मोहनदास	हिन्द स्वराज	राजपाल एंड संस, दिल्ली,
15.	चाटुर्ज्या, सुनिति कुमार	भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1954

16.	जोशी, रामशरण	आदिवासी समाज और शिक्षा	ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, दिल्ली
17.	झारखंड : प्राथमिक शिक्षा हालात		संवाद प्रकाशन, रांची
18.	टेटे, वंदना	पुरखा लड़ाके	प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन चेशायर होम रोड, रांची-9
19.	तदैव	किसका राज है	प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन चेशायर होम रोड, रांची-9
20.	डाल्टन, ई. टी.,	डिस्क्रीपटिव इथनोलौजी ऑफ बंगाल	आर. के मैत्रा, 1872
21.	डिवी, जॉन	शिक्षा का लोकतंत्र	ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
22.	तलवार, डा. वीर भारत	झारखंड के आदिवासियों के बीच	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2008
23.	थापर, रोमिला.	भारत का इतिहास	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
24.	थ्योंगो, न्गूगी वा	भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता	सारांश प्रकाशन, दिल्ली 1994
25.	तदैव	औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति	ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली 1999
26.	द्विवेदी, हजारीप्रसाद	भाषा, साहित्य और देश	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
27.	नई शिक्षा की बारह खड़ी		जुड़ाव, मधुपुर, देवघर
28.	नव विकास ल सबजन पढ़बो	साक्षरता अभियान पर साझा शोध	बुक्स फॉर चेंज, दिल्ली
29.	पांडेय, केदारनाथ	शिक्षा के सामाजिक सरोकार	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
30.	प्रकाश/श्रीवास्तव विजय/शैलेन्द्र कुमार	अभिवंचितों का शिक्षाधिकार	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2009
31.	फ्रेरे, पाउलो	उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र	ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, दिल्ली
32.	मजुमदार, डी. एन.	रेसेज एंड कल्चर्स ऑफ इंडिया	एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1963
33.	मुंडा, राम दयाल	आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल	प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2002
34.	तदैव	आदि धर्म	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
35.	मुंडा/मल्लिक, डा. रामदयाल/संजय बसु	झारखण्ड मूवमेंट	आईडब्ल्यूजीआईए कोपेनहेगेन एवं बिरसा चाईबासा (झारखंड), 2003

36.	मैफर्सन, टी. एस.	बिहार एण्ड उड़ीसा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर 1917	
37.	रणेन्द्र/सुधीर	झारखंड एन्साइक्लोपीडिया	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
38.	राय, एस. सी.	मुंडाज एंड देयर कंट्री	एशिया पब्लिकेशंस हाउस, लंदन, 1912
39.	तदैव	द खड़ियाज	कथोलिक प्रेस, राँची 1937
40.	विद्याभूषण	झारखंड : समाज संस्कृति और विकास	प्रकाशन संस्थान, दिल्ली 2000
41.	शर्मा, रामविलास	भारत की भाषा समस्या	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
42.	सिंह, डॉ. नागेश्वर	जनजातीय भाषाएँ और ईसाई मिशनरी	क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली, 2002
43.	तदैव	ईसाई मिशनरियों का शैक्षिक एवं साहित्यिक अवदान	क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली, 2004
44.	सिंह, कुमार सुरेश	बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
45.	तदैव	पीपुल्स ऑफ इंडिया एन इंट्रोडक्शन	सीगल बुक्स, 26 सर्कस एवेन्यू, कोलकाता
46.	सिंह, भगवान	भारतीय सभ्यता की निर्मिति	साहित्य उपक्रम, दिल्ली,
47.	सेनापति रामजीत,	छोटानागपुर और बीरू प्रगने की ऐतिहासिक कहानियां	छोटानागपुर बुक डिपो सिमडेगा
48.	हरिवंश	झारखंड दिसुम मुक्तिगाथा और सृजन के सपने	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2002
49.	तरुण, डॉ. हरिवंश	भारतीय शिक्षाः उसकी समस्याएं तथा विश्व की शिक्षा प्रणालियां 2004	प्रकाशन संस्थान, दिल्ली
50.	हेमंत/शेखर	अधूरी शिक्षा का पूरा सच	देशज प्रकाशन, रांची
51.	हेमंत,	झारखंड	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
52.	त्रिगुणायत, जगदीश	मुंडा लोक कथाएँ	अधीक्षक, सचिवालय शाखा, 1968

दस्तावेज :

1. सर्वशिक्षा अभियान गाइडलाइन, शिक्षा विभाग, भारत सरकार
2. राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा, शिक्षा विभाग, भारत सरकार
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, शिक्षा विभाग, भारत सरकार
4. नेशनल क्यूरिकुलम फ्रेमवर्क 2005, भारत सरकार

5. बालिकाओं की प्रारंभिक स्तर परशिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम, गाइडलाइन, बिहार शिक्षा परियोजना, पटना
6. राँची कॉलेज निर्देशिका 2001-02
7. महिला समाख्या की रिपोर्ट, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग भारत सरकार
8. एन.पी.ई.जी.ई.एल. प्रगति प्रतिवेदन, 15 जुलाई 2009
9. National EValuation Final Report of KGBV, State Wise progress of Physical Progress of KGBV Scheme : As on 15th July, 09

पत्र-पत्रिकाएँ :

1. आदिवासी
2. जोहार
3. जोहार दिसुम खबर
4. जोहार सहिया
5. झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा
6. तारदी
7. सोरिनानिङ
8. प्रभात खबर
9. रांची एक्सप्रेस

इंटरनेट :

1. http://upscportal.com/civilservices/mag/vol-4/article/Education-and-Literacy-in-India
2. http://pib.nic.in/newsite/hindifeature.aspx?relid=5637
3. http://edcilindia.co.in/hi/edcil/index.php?option=com_content&task=view&id=30&Itemid=55
4. http://hi.wikipedia.org/wiki/Hkkjr&esa&efgyk,a
5. http://hi.wikipedia.org/wiki/ukjh&f'k{kk
6. http://www.dw.de/dw/article/0,,3963138,00.html
7. http://hi.wikipedia.org/wiki/ vkfnoklh
8. http://bharat.gov.in/sectors/education/edu_scheduled_castes.php
9. http://simdega.nic.in
10. http://ssa.nic.in/
11. http://www.jepc.nic.in
12. http://www.ntm.org.in/
13. http://www.akhra.org.in/
14. http://www.kharia.in/



डॉ. तरकेलेंग कुल्लू

गांव: पुरनापानी, पोस्ट: केउंदडीह, प्रखंड: पाकरटांड़, जिला: सिमडेगा (झारखंड) की रहने वाली डॉ. तरकेलेंग कुल्लू खड़िया आदिवासी समुदाय से आती हैं। दिवंगत मां मर्था कुल्लू और दिवंगत पिता जुसफ कुल्लू की संतान डॉ. तरकेलेंग कुल्लू जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची से खड़िया भाषा एवं साहित्य में एम. ए., नेट और पी-एच. डी. हैं। शिक्षा पाने से लेकर आजीविका हासिल करने तक आप जहां व्यक्तिगत विकास के लिए संघर्षशील रही हैं, वहीं आप खड़िया भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए भी निरंतर सक्रिय रही हैं। आपकी रुचि सदैव से ही शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में है। विशेषकर बालिका शिक्षा के लिए सिमडेगा जिला में चलने वाले सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय बालिका शिक्षा एवं कस्तूरबा गांधी विद्यालय कार्यक्रम में आपने कई वर्ष तक काम किया है। इसके साथ-साथ आप खड़िया भाषा में निबंध एवं सृजनात्मक साहित्य लिखती रही हैं जिनका प्रकाशन अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है। 'प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा की भूमिका' आपकी पहली पुस्तक है। यह मूलत: 'राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम में मातृभाषा की भूमिका : सिमडेगा जिला के संदर्भ में' विषय पर पी-एच. डी. हेतु किए गए शोध का प्रकाशन है। इसमें आपने भारतीय शिक्षा नीति के आलोक में प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा की भूमिका पर सिमडेगा जिला के संदर्भ में गंभीरता से गहन अध्ययन किया है। अध्ययन एवं शोध का फलक अत्यंत व्यापक है। क्योंकि डॉ. कुल्लू ने इसमें आदिवासी परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक दृष्टि के साथ शिक्षा नीति, कार्यक्रम और उसके व्यावहारिक एवं अवधारणात्मक संकल्पनाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली है।

संप्रति आप आदिवासी रिसर्च सेंटर, संत जेवियर्स कॉलेज, रांची (झारखंड) में खड़िया विभाग में कार्यरत और सेंटर द्वारा प्रकाशित खड़िया पत्रिका 'तुञलोङ' की संपादक हैं।

चलभाष संपर्क : 7070131866, ई-मेल : kullutarkeleng@gmail.com

शोध/शिक्षा

₹ 250

9 789381 056752

प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन

चेशायर होम रोड, बरियातु, राँची-834009 झारखण्ड

www.kharia.in | www.akhra.org.in | pkfranchi@gmail.com